पाठ्यक्रम समिति **BASL-102**

प्रो0 दामोदर राम त्रिपाठी,गंगानाथ झॉ शोधपीठ,
संस्कृत विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय

प्रो0पुष्पा अवस्थी, संस्कृत विभाग
एस0एस0जे0परिसर,कुमॉऊ विश्वविद्यालय,
अल्मोड़ा

डॉ0 ब्रजेश पाण्डेय,एसो0प्रो0
महिला डिग्री कालेज, हल्द्वानी

डॉ0 गोपाल दत्त त्रिपाठी,
संस्कृत महाविद्यालय हल्द्वानी

प्रो0 एच0पी0 शुक्ल,
निदेशक, मानविकी
विद्याशाखा उ0मु0वि0वि0, हल्द्वानी

डॉ0 देवेश कुमार मिश्र
सहायक आचार्य,संस्कृत विभाग
उ0मु0वि0वि 0, हल्द्वानी

डॉ0 संगीता बाजपेयी,
अका0 एसोसिएट संस्कृत विभाग
उ0मु0वि0वि0, हल्द्वानी

मुख्य सम्पादक	सह सम्पादक
डॉ0 उमेश शुक्ल , श्रीमती लाडदेवी शर्मा पंचोली संस्कृत महाविद्यालय बरून्दनी , भीलवाड़ा - राजस्थान	**डॉ0 देवेश कुमार मिश्र , सहायक आचार्य - संस्कृत , उततराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय , हल्द्वानी**

इकाई लेखन **इकाई संख्या**

डॉ0 संगीता बाजपेयी, 4,5,15,16,17
अका0 एसोसिएट ,संस्कृत विभाग
उ0 मु 0 वि 0वि0, हल्द्वानी

डॉ0 **उमेश शुक्ल** 10,11,12,13
प्रवक्ता व्याकरण (संस्कृत विभाग)
श्री मती लाडदेवी शर्मा पंचोली संस्कृत महाविद्यालय
बरून्दनी , भीलवाड़ा , राजस्थान

डॉ0 भगवती पंत 1,2,3,14
उ 0 मु 0 वि 0 वि 0, हल्द्वानी

डॉ0 रामनाथ झॉ 6,7 ,8 ,9
एसो0 प्रो 0 विशिष्ट संस्कृत अध्ययन केन्द्र
जे0एन0यू0

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रोफे . सुभाष धूलिया कुलपति , उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय , हल्द्वानी	एल. एस . रावत कुलसचिव , उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय , हल्द्वानी

कापीराइट @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

संस्करण: 2014-15 **ISBN.NO.978-93-84632-31-1**

प्रकाशक: उ0मु0वि0वि0 हल्द्वानी - 263139

मुद्रक: .....

इस सामग्री का उपयोग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना अन्यत्र किसी भी रूप में नहीं किया जा सकता है।

अनुक्रम

प्रथम खण्ड - नीतिशतकम्	पृष्ठ
इकाई 1: संस्कृत नीति साहित्य का परिचय	1-19
इकाई2: भर्तृहरि का जीवन वृ एवं नीति साहित्य को योगदान	20-33
इकाइ3: नीतिशतकम् श्लोक संख्या 1से 20 तक	34-51
इकाइ4: नीतिशतकम् श्लोक संख्या 21से 40 तक	52-67
इकाई 5 : नीतिशतकम् श्लोक संख्या 41से 60 तक	68-81
द्वितीय खण्ड - लघुसिद्धान्त कौमुदी, संज्ञा एवं सन्धि प्रकरण	पृष्ठ 82
इकाई 6 : संज्ञा प्रकरण	83-102
इकाई 7: स्वर सन्धि	103-121
इकाइ 8: प्रकृतिभाव विधायक सूत्र, उदाहरण एवं व्याख्या	122-132
इकाइ 9: सन्धि प्रकरण के अन्तर्गत संज्ञा सूत्रों की व्याख्या	133-143
तृतीय खण्ड - अनुवाद- सामान्य नियम लकार विभक्ति, कारक एवं वाच्य	पृष्ठ 144
इकाई 10: सामान्य नियम - शब्दरूप	145-167
इकाई 11: लकार विभक्ति - धातु रूप	168-191
इकाई 12: कारक एवं वाच्य	192-213
इकाई 13: लघु गद्यांशो के अनुवाद पंचतन्त्र के गद्यांश संस्कृत से हिन्दी व हिन्दी से संस्कृत	214-231
चतुर्थ खण्ड - हितोपदेश	पृष्ठ 232
इकाई 14: नीति कथाओं का विकास एवं महत्व	233-246
इकाई15: हितोपदेश की कथाओं का सारांश	247-258
इकाइ16: चित्रग्रीव हिरण्यकथान्तर्गत वृद्धव्याश्र लुब्ध विप्र कथा मृग श्रृगाल कथा	259-276
इकाइ17: चित्रग्रीव हिरण्यक कथान्तर्गत जरद्गव विडाल कथा एवं मूषक परिव्राजक कथा	277-293

खण्ड एक - नीतिशतकम्

इकाई 1 संस्कृत नीति साहित्य का परिचय

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 नीति का अर्थ
1.4 संस्कृत साहित्य में नीतियाँ
    1.4.1 शुक्र नीति
    1.4.2 चाणक्य नीति
    1.4.3 विदुर नीति
    1.4.4 भर्तृहरि का नीति तत्त्वो पदेश
    1.4.5 पंचतंत्र में नीति
    1.4.6 हितोपदेश में नीति
1.5 सारांश
1.6 शब्दावली
1.7 बोध प्रश्नों के उत्तर
1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.9 उपयोगी पुस्तकें
1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

संस्कृत साहित्य में वैदिक युग से ही नीति परक उपदेशों की परम्परा चली आ रही है, जिसमें विभिन्न मनुष्यों ने अपने अनुसार नीति कथाओं, की विधानों एवं नीति के वचनों के वर्णन किये गये हैं। इस इकाई के अन्तर्गत आप संस्कृत वाङ्मय में वर्णित नीतियों का अध्ययन करेंगे।
वस्तुतः नीति के उद्भावक भगवान् ब्रह्मा और प्रतिष्ठापक विष्णु हैं। कालान्तर में मध्यकाल से लेकर आधुनिक युग तक नीतियों का अत्यधिक प्रसार हुआ है। जिनमें शुक्र नीति, चाणक्य नीति, विदुर नीति, पंचतंत्र, हितोपदेश आदि नीतियां प्रमुख व प्रसिद्ध हैं, सम्प्रति अत्याधुनिक जीवनोपयोगी नीतिकार आचार्य भर्तृहरि का नीति शतक भी एक अनुपम कृति है।

प्रस्तुत इकाई में प्रमुख नीतियों के वर्णन आप के अध्ययनार्थ प्रस्तुत हैं, इनके अध्ययन से आप जीवन के व्यावहारिक पक्षों का ज्ञान करा सकेंगे।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप-

1- शुक्र नीति से परिचित हो सकेंगे।
2- चाणक्य नीति को जान सकेंगे।
3- विदुर नीति का उल्लेख कर सकेंगे।
4- पंचतंत्र में वर्णित नीतियों की व्याख्या कर सकेंगे।
5- नीति शास्त्र के सार्वदेशिक ग्रन्थ हितोपदेश से परिचित हो सकेंगे।
6- भर्तृहरि के अद्वितीय ग्रन्थ नीतिशतक को सूक्ति वचनों के द्वारा समझ सकेंगे।

1.3 नीति का अर्थ

नीति शब्द 'नी' धातु में 'क्तिन' प्रत्यय से जुड़कर बना है,जिसका अर्थ है जिस मार्ग (व्यवहार) से व्यक्ति और समाज का जीवन सरलता के साथ व्यतीत हो उसे नीति कहते हैं। नीति का अर्थ सही मार्ग की ओर ले जाना है, नीति का सही रूप में पालन करने से व्यक्ति एवं समाज दोनों का कल्याण होता है।

नीति के अर्थ को हम कई प्रकार से समझा सकते हैं। मनुष्य जीवन को वास्तविक लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए साधन रूप में जिन बातों की आवश्यकता है वही नीति है। देखा जाय तो वास्तव में नीति का अर्थ है 'कर्माकर्मविवेक'। समाज में रहने वाले व्यक्ति, वर्ग, जाति, राष्ट्र आदि भिन्न-भिन्न घटक हैं यहाँ रहकर परस्पर उनको कैसा व्यवहार करना चाहिये इसके कुछ विशेष नियम होते हैं वही नीति है। चार पुरूषार्थों- धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष इन्हें प्राप्त करने के उपायों का निर्देश जिस के द्वारा होता है वही नीति है। नीति शब्द का अर्थ होता है ले जाना, पहुँचाना, दिग्दर्शन कराना, नेतृत्व करना तथा उपायों को बतलाना है 'नीयन्ते संलभ्यन्ते उपायादय इति वा नीतिः'। नीति वचनों के अनुसार यदि मनुष्य व्यवहार करता है तो वह अभीष्ट फल प्राप्त करता है, इस प्रकार मनुष्य जीवन के लक्ष्य की सिद्धि में नीति के द्वारा ही उचित मार्ग का निर्देश होता है, मनुष्य यदि नीति के विरूद्ध आचरण करता है, तो वह अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में असफल हो जाता है। नीति शास्त्र के ज्ञाता चाणक्य का सर्वप्रथम वाक्य है- 'सुखस्य मूलं धर्मः' सुख का मूल

आधार धर्म है इसलिये सबसे उत्तम नीति धर्माचरण ही है, क्योंकि संसार का प्रत्येक प्राणी सदैव सुख की ही आकांक्षा रखता है और नीति का सहारा भी वह केवल अपने सुख के लिए ही करता है। ऋग्वेद में नीति का प्रयोग अभीष्ट फल की प्राप्ति से है-'ऋजुनीति नो वरूणो मित्रो नयतु विद्वान्' (ऋक 1/90/1) इसमें मित्र और वरूण से प्रार्थना करते हुए कहा है कि हमें ऋजु अर्थात् सरल नीति से अभीष्ट फल की सिद्धि होती है विषय की दृष्टि से नीति को दो भागों में विभाजित किया जाता है पहली राजनीति तथा दूसरी धर्मनीति। नीति के द्वारा फल के अनुरूप बीज का निर्देश प्राप्त होता है, इस तरह यदि देखा जाय तो आदिकाल से ही मानव को सही मार्ग पर चलने के लिए नीति-वचनों का प्रतिपादन होता आ रहा है।

1.4 संस्कृत साहित्य में नीतियां

संस्कृत भाषा में नीति साहित्य का विशाल भण्डार है। इसमें नीति उपदेशों का संग्रह है, नीति शास्त्र के उद्भावक परमपिता ब्रह्मा, प्रतिष्ठापक भगवान् विष्णु और प्रवर्तक शंकर हैं। एक तरफ वैदिक संस्कृत साहित्य में नीति- वचनों का प्रचुर भण्डार पड़ा है वहीं दूसरी ओर लौकिक संस्कृत साहित्य में पुराणों, स्मृतियों, रामायण, महाभारत आदि महाकाव्यों एवं विभिन्न नाटकों में भी भिन्न-भिन्न धाराओं से परिपूर्ण नीति भण्डार दृष्टिगोचर होता है। नीति -वचनों के विशेष संग्रह वाल्मीकीय रामायण के सप्तम काण्ड में भरे पड़े हैं। महाभारत में भी उद्योग पर्व के आठवें अध्याय में महात्मा विदुर द्वारा कथित नीति-वचन विदुर नीति के नाम से सुप्रसिद्ध है। इसी प्रकार महाभारत के ही भीष्म पर्व के 25वें तथा 42वें अध्याय में सम्पूर्ण विश्व में विख्यात श्रीमद्भगवद् गीता तथा योग शास्त्र के साथ-साथ ब्रह्म विद्या से सम्बन्धित एक महत्त्वपूर्ण नीति शास्त्र है। महाभारत के शान्ति पर्व का वर्णित राजधर्म तो राजनीति ही है, इन समस्त नीतियों की चर्चा परवर्ती नीति ग्रन्थों में पदे-पदे उद्धृत की गयी, जैसे- विष्णुशर्मा के पंचतंत्र और हितोपदेश आदि में भी महाभारत के नीतियों की चर्चा है। भारतीय इतिहास के महामनीषी चाणक्य ने अपने ग्रंथ कौटिल्य अर्थशास्त्र के अन्तर्गत नीति-वचनों का वर्णन किया है, इसके अतिरिक्त चाणक्य नीति, चाणक्य नीति दर्पण और चाणक्य नीति सूत्र आदि ग्रंथों में भी उनके नीति वचनों का संग्रह है। दैत्य गुरू शुक्राचार्य ने भी नीति-वचनों का प्रणयन किया है, जिसे शुक्र नीति कहते हैं। कामन्दकीय नीति सार के अतिरिक्त कामदेव सेमेन्द्र द्वारा नीति कल्प तरू और सोमदेव सूरी कृत्य नीति वाक्यामृत आदि नीति ग्रन्थ भी संस्कृत साहित्य के अन्तर्गत आते हैं। इनके पश्चात् वर्तमान में सुप्रसिद्ध एवं प्रशंसा पात्र नीति नियमों के रचयिता भर्तृहरि द्वारा नीति शतक की रचना की गयी जो लोक विश्रुत है,विद्यापति और चंडेश्वर ठाकुर का पुरूष परीक्षा तथा राजनीति रत्नाकर आदि नीति के निर्देशक ग्रन्थों भी उपलब्ध हैं। इन समस्त नीति के भण्डार ग्रंथों के अतिरिक्त परामर्श , शिक्षा, मंत्रणा और व्यावहारिक ज्ञान आदि के अनेक ग्रंथ हैं जो नीति परक उपदेश की कोटि में आते हैं। नीति के उपदेश और काव्यों के बीच में विभाजक रेखा अत्यन्त छोटी है, फिर भी यह निर्धारित होता है कि नीति उपदेशात्मक काव्यों की रचना निम्न शैलियों में की गई होगी - कहीं पर दाम्पत्य जीवन के संवाद में, कहीं युगल पशुओं के आलाप में, कहीं शिव पार्वती के परिसंवाद में तो, कहीं पर वक्रोक्ति-अन्योक्ति और प्रहेलिका आदि के रूप में इन नीति परक काव्यों में कहीं पर प्रभु सम्मित वाक्य के द्वारा तथा कहीं पर कान्ता सम्मित उपदेश

वाक्य के द्वारा तदरूप मार्गों पर चलने का निर्देश दिया गया है। इन्हीं नीति वचनों के अनुपालन से मनुष्य पुरूषार्थों की प्राप्ति में सिद्ध और सफल हो जाता। इनमें कुछ अत्यन्त प्रचलित एवं सुप्रसिद्ध व्यवहारोपयोगी नीतियों के वर्णन आपके अध्ययनार्थ प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

1.4.1 शुक्र नीति

परमपिता ब्रह्माजी के मानस पुत्रों में भृगु का नाम प्रमुख है, इन्हीं भृगु के पुत्र असुरगुरू महर्षि शुक्राचार्य हुए। योगविद्या के प्रकाण्ड आचार्य शुक्राचार्य की शुक्र नीति विश्व प्रसिद्ध है। यद्यपि ये असुरों के गुरू थे किन्तु मन से ये भगवान् के अनन्य भक्त थे। इनमें तपस्या, योगसाधना, अध्यात्मज्ञान तथा नीति का बहुत बल था, इन्होंने अपने योग बल के द्वारा असम्भव कार्य भी सम्भव किये। शुक्राचार्य के नीति सम्बन्धी उपदेश बहुत ही उपयोगी तथा अनुपालनीय हैं,इनके नीतिमय उपदेश महाभारत तथा पुराणों में यत्र-तत्र विद्यमान है। आधुनिक समय में आचार्य शुक्र के नाम से एक शुक्र नीति नामक ग्रंथ उपलब्ध है। सम्पूर्ण शुक्र नीति में पाँच अध्याय तथा 2200 श्लोक हैं, इसमें लोक व्यवहार का ज्ञान, राजा के कर्तव्य, राजधर्म, दण्डविधान, मंत्री परिषद् आदि के लक्ष्यों का समावेश है। इसके साथ ही साथ स्त्री धर्म, प्रतिमाओं का स्वरूप, विवाद, संधि तथा युद्ध नीति आदि का वर्णन है। लघु होने के कारण शुक्रनीति का अत्यधिक महत्त्व है यह प्रामाणिक भी अधिक है शुक्राचार्यजी का कहना है कि समाज के सभी लोगों के लिए उपकारक तथा समाज को सुरक्षित रखने वाला नीतिशास्त्र ही है।**'न कवेः सदृशी नीतिस्त्रिषु लोकेषु विद्यते**' नीति शास्त्र के सम्बन्ध में स्वयं शुक्राचार्य ने कहा है कि कवि शुक्राचार्य की नीति के समान अन्य कोई दूसरी नीति तीनों लोकों में नहीं है-

1- आचार्य शुक्राचार्य ने कहा कि राजा के लिये नीति शास्त्र का ज्ञान आवश्यक है। क्योंकि प्रजा का सम्पूर्ण दायित्व राजा के ऊपर ही रहता है, प्रजा का पालन करना व दुष्ट प्राणियों का दमन करना ये दोनों ही राजा के लिये परम आवश्यक है। कहने का तात्पर्य यह है कि एक राजा को नीतिज्ञानी होना चाहिए नीतिज्ञान से रहित होना ही उसका सबसे बड़ा दोष माना जाता है। नीति और बल ये दोनों जिस राजा को प्राप्त होते हैं उसके पास लक्ष्मी का आगमन होता है अर्थात् वह कभी दरिद्र नहीं होता-

यत्र नीतिबले चोभे तत्र श्रीः सर्वतोमुखी ।। (शुक्रनीति 1/17)

विरत प्रजा का भली प्रकार पालक, शत्रुओं पर विजय प्राप्त, दानवीर, क्षमावान् तथा वैराग्यवान् होता है ऐसा राजा ही मोक्ष को प्राप्त करता है-

'स हि नृपोऽन्ते मोक्षमन्वियात् ' (शुक्रनीति 1/31)

3- शुक्राचार्य जी ने सुन्दर नीति वचनों के माध्यम से राजा के लिए ही नहीं बल्कि एक सामान्य व्यक्ति के लिए भी उपयोगी बातें कहीं हैं। मनुष्य को दूरदर्शी होना चाहिए। अपने प्रत्येक कार्य को विचार कर अविवेक व आलस्य का पूर्ण रूप से त्याग कर देना चाहिए।

4- शुक्र नीति में एक महत्त्व पूर्ण बात बतलायी गयी है कि- आयु, धन,(लक्ष्मी) गृह के दोष, मंत्र, मैथुन, औषधि, दान, मान तथा अपमान इन नौ विषयों को अत्यन्त गुप्त रखना चाहिए, किसी से कुछ भी नहीं कहना चाहिए- दानमानापमानं च नवैतानि सुगोपयेत् ।।

5- शुक्राचार्य जी ने अपने नीति वचनों में बताया कि दुर्जनों की संगति नहीं करनी चाहिए, दुर्जनों

की संगति का परित्याग कर देनचाहिए- **आयुर्वित्तं गृहच्छिद्रं मन्त्रमैथुनभेषजम्। 'त्यजेद् दुर्जनसंगतम्।**

6 - किसी के साथ कभी भी कपटपूर्ण व्यवहार और कभी किसी की धन सम्बन्धी हानि नहीं करनी चाहिए , इसके अतिरिक्त मन से भी कभी किसी का अहित नहीं सोचना चाहिए करने की तो बात बहुत दूर है। राजधर्म और नीति के संदर्भों को बतलाकर अन्त में शुक्राचार्य जी ने श्री राम को ही सर्वोपरि नीतिमान् कहा। उनका कहना था कि भगवान् राम के समान इस पृथ्वी पर कोई नीतिमान् राजा नहीं हुआ।

1.4.2 चाणक्य नीति

चाणक्य का जन्म लगभग चार सौ साल पूर्व भारत के तक्षशिला नामक स्थान में हुआ। चाणक्य के बचपन का नाम विष्णुगुप्त शर्मा था। कुटज गोत्र के होने के कारण ये कौटिल्य कहलाये। चणक के पुत्र होने के कारण चाणक्य कहलाये, अपने चातुर्य के कारण भी इन्हें चाणक्य कहा जाता है। ये विद्वान और नीतिमान् थे। भारतीय राजनीति में कूटनीतिज्ञ के रूप में चाणक्य का स्थान सर्वश्रेष्ठ व सर्वोपरि माना जाता है। चाणक्य ने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा तक्षशिला में प्राप्त की, प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् ये उच्च शिक्षा अध्ययन के लिए पाटलिपुत्र आये। मगध के सिंहासन पर उस समय अत्यन्त लोभी व अत्याचारी राजा घनानन्द अधिष्ठित था। अनोखी प्रतिभा के धनी व महाविद्वान चाणक्य के सानिध्य में आकर घननन्द दानी हो गया। चाणक्य विद्वान तो थे किन्तु उनका रूप अच्छा नहीं था, ये कृष्ण वर्ण के थे।
एक बार राजा घनानन्द ने चाणक्य को दरबार में आमंत्रित किया। वहां राजा ने इनके रूप को लेकर इनका अपमान किया। चाणक्य को राजा की बातों पर अत्यधिक क्रोध आया, तब उन्होंने दरबार में अपनी चोटी खोल दी और राजा से बोले- दरबार में आज जो तुमने मेरा अपमान किया है मैं तुमसे उसका बदला अवश्य लूँगा। जब तक मैं किसी योग्य व्यक्ति को मगध के सिंहासन पर आरूढ़ नहीं करूँगा तब तक अपनी चोटी नहीं बाँधूगा। चाणक्य ने एक साधारण युवक चन्द्रगुप्त को विशाल मगध के साम्राज्य का अधिपति बनाया, इसीलिए इन्हें कूटनीति का सम्राट भी कहते हैं। इससे हमें ज्ञात होता है कि चाणक्य दृढ़ निश्चयी थे।
आचार्य चाणक्य के लघु चाणक्य, वृद्ध चाणक्य, चाणक्य नीतिदर्पण, कौटलीय अर्थशास्त्र तथा चाणक्य सूत्र आदि अनेक ग्रंथ प्रसिद्ध हैं चाणक्य के द्वारा लिखी पुस्तक अर्थशास्त्र में शासन सम्बन्धी जो सिद्धान्त हैं वे आज भी अद्वितीय हैं। चाणक्य के द्वारा लिखी हुई नीतियों को चाणक्य नीति के नाम से जाना जाता है प्रस्तुत इकाई में आप चाणक्य के कुछ नीति वचनों का अध्ययन करेंगे-
1- आचार्य चाणक्य ने अपने चाणक्य नीति में कहा कि यदि किसी राज्य में राजा नहीं है तो अच्छा है, किन्तु बुरे राजा अर्थात् अत्याचारी राजा का होना अच्छा नहीं है। यदि किसी का मित्र नहीं है तो अच्छा है, किन्तु कुमित्र अर्थात् बुरे मित्र का होना अच्छा नहीं है। यदि किसी का कोई शिष्य न हो तो अच्छा है, किन्तु निन्दित शिष्य का होना अच्छा नहीं है। पत्नी न हो तो अच्छा है, किन्तु पत्नी यदि दुःश्चरित्रा हो तो अच्छा नहीं है।

वरं न राज्यं न कुराजराज्यं

वरं न मित्रं न कुमित्रमित्रम्

वरं न शिष्यो न कुशिष्यशिष्या

वरं न दारा न कुदारदारा ।।

2- आचार्य चाणक्य ने मैत्री के सम्बन्ध में बताते हुए अपने नीति ग्रंथ में कहा है कि हमें कैसे मित्रता की कसौटी की पहचान करनी चाहिए-

परोक्षे कार्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम् ।

वर्जयेत् तादृशं मित्रं विषकुम्भं पयोमुखम् ।।

परोक्ष रूप में अर्थात् पीठ पीछे बुराई करके काम बिगाड़ने वाले और प्रत्यक्ष अर्थात् सामने मीठा बोलने वाले मित्र का तो अवश्य ही त्याग कर देना चाहिए। वह मित्र उस विष से भरे हुए घड़े के समान है जिसके अग्रभाग अर्थात् मुख के ऊपर थोडा़ दूध लगा रहता है।

3- आचार्य चाणक्य ने अपने नीति ग्रन्थों में बताया है कि एक पिता को अपने पुत्र के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए-

लालयेत् पंचवर्षाणि दशवर्षाणि ताडयेत् ।

प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत् ।।

पुत्र को पाँच वर्ष तक प्यार करना चाहिए, जब वह दस वर्ष का हो जाय तो उस पर अनुशासन रखना चाहिए, जब वह सोलह वर्ष का हो जाय तो उसके साथ मित्रवत् अर्थात मित्र के समान व्यवहार करना चाहिए।

4- लौकिक सुख के विषय में बताते हुए चाणक्य कहते हैं कि-

यदि रामा यदि च रमा यदि तनयो विनयगुणोपेतः।

तनये तनयोत्पत्तिः सुरवरनगरे किमाधिक्यम् ।।

जिस व्यक्ति के घर में सुन्दर स्त्री हो, लक्ष्मी भी हो अर्थात् धन-धान्य से सम्पन्न हो, पुत्र व पौत्र गुणों से युक्त हो, वह घर तो इस पृथ्वीलोक में इन्द्रलोक से भी अधिक सुन्दर है कहने का तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार इन्द्रलोक में सभी प्रकार के सुख वैभव हैं उसी प्रकार वह घर भी है।

5- चाणक्य ने मूर्ख व्यक्ति के विषय में बताते हुए उससे दूर रहने के विषय में कहा है-

मूर्खस्तु परिहर्तव्यः प्रत्यक्षो द्विपदः पशुः।

भिनत्ति वाक्यशल्येन निर्दृशाः कण्टका यथा ।।

चाणक्य कहते हैं कि मूर्ख व्यक्ति से दूर रहना चाहिए, क्योंकि मूर्ख व्यक्ति दो पैरों वाले पशु के समान है। जिसमें प्रत्यक्ष रूप से काँटे तो दिखलायी नहीं पड़ते हैं , किन्तु वह बार-बार

वाक्यशल्य से काँटे बोता रहता है । वास्तव में देखा जाय तो चाणक्य ने जिन नीतियों का प्रतिपादन किया वह कल्याण के मार्ग पर बढ़ने के लिए प्रेरित करती हैं । आचार्य चाणक्य ने अपनी नीतियों में जीवन के कटु सत्य को उजागर किया है । देखा जाय तो ऐसे नीतिकार बहुत कम होते हैं, आचार्य एक महान कूटनीतिज्ञ हैं, कूटनीतिज्ञों में उनका नाम सर्वोपरि है व सदैव रहेगा । कुरूप कहे जाने वाले आचार्य चाणक्य ने अपने अलौकिक तेज से व्याप्त व्यक्तित्व से विश्व को अनूठी नीतियां प्रदान की, जो विश्व में चाणक्य नीति के नाम से प्रसिद्ध हुई । देखा जाय तो आज के भौतिकवादी युग में जहाँ नैतिकता का पतन हो रहा है वहां महान आचार्य चाणक्य की नीतियां समाज के प्रत्येक मनुष्य को सही मार्ग पर चलने की प्रेरणा देती हैं जिससे प्रत्येक वर्ग व सम्पूर्ण राष्ट्र का कल्याण होगा।

बोध प्रश्नः-

(1) नीचे जो वाक्य दिये गये हैं उनमें से तथ्य की दृष्टि से कुछ सही हैं और कुछ गलत हैं । सही वाक्यों के सामने कोष्ठक में सही तथा गलत वाक्यों के सामने गलत का निशान लगायें ।
चिह्न लगाइये-

(क)नीति शास्त्र के उद्भावक परमपिता ब्रह्मा हैं । ( )
(ख)आचार्य शुक्राचार्य की शुक्र नीति विश्व प्रसिद्ध है । ( )
(ग) चाणक्य के बचपन का नाम विष्णुगुप्त नहीं था । ( )
(घ) चाणक्य को कूटनीति का सम्राट कहते हैं । ( )

(2) निम्न प्रश्नों के उत्तर लिखिए-

(1) 'त्यजेद् दुर्जनसंगतम् में शुक्राचार्य ने किसके विषय में कहा है-

(क) पंडित (ग) दुर्जन
(ख) सज्जन (घ) मूर्ख

(2) 'आयुर्वित्तं गृहच्छिद्रं मंत्रमैथुनभेषजम्' किस पुस्तक की पंक्ति है-

(क) चाणक्य नीति (ग) शुक्र नीति
(ख) विदुर नीति (घ) कामन्दक नीति

(3) 'मूर्खस्तु परिहर्तव्यः प्रत्यक्षो द्विपदः पशुः' में चाणक्य ने किसके विषय में कहा है-

(क) विद्वान (ग) मूर्ख
(ख) पंडित (घ) सज्जन

1.4 . 3 विदुरनीतिः-

पिछले पृष्ठों में आप शुक्र व चाणक्य नीति से परिचित हुए। इस अध्याय में आप विदुर नीति से परिचित होंगे। धर्म के अवतार महात्मा विदुर अत्यन्त बुद्धिमान, धर्मज्ञ, ईश्वर भक्त, नीतिनिपुण व व्यवहार कुशल थे। महात्मा विदुर धृतराष्ट्र और पाण्डु के छोटे भ्राता थे, ये दासी पुत्र थे इस कारण ये राज्य के अधिकारी नहीं हुए । पाण्डु की मृत्यु के पश्चात् जब धृतराष्ट्र राजा बने तब ये उनके मंत्री बने । विदुर नीति के तो पंडित थे ही इनकी बनायी गई विदुर नीति एक प्रामाणिक नीति मानी गई । नीति निपुण विदुर सदा धर्म के पक्ष में रहते अधर्म का खण्डन तो ये सभा के मध्य भी कर देते थे । पाण्डवों को जब बारह वर्ष का वनवास और एक वर्ष का अज्ञातवास हुआ तो ये बड़े दुःखी हुए । विदुर जानते थे कि युद्ध विनाशकारी होगा, क्योंकि महाराज धृतराष्ट्र तो

अपने पुत्र मोह में इस प्रकार बँध चुके थे कि वे कोई समाधान नहीं खोज पा रहे थे। दुर्योधन अपनी जिद पर अड़ा था। द्यूत क्रीडा की शर्त के अनुसार पांडवों ने बारह वर्ष का वनवास और एक वर्ष का अज्ञातवास पूर्ण करने के बाद जब अपना राज्य वापस मांगा तो पुत्र मोह में बँधे धृतराष्ट्र उन्हें कोई निर्णायक उत्तर नहीं दे पाये। द्यूत क्रीडा के समय भी विदुर ने धृतराष्ट्र को चेतावनी दी थी कि यदि यह खेल समाप्त नहीं किया गया तो अनर्थ हो जायेगा और हस्तिनापुर को विनाश की कगार से कोई नहीं बचा सकता। विदुर नीति युद्ध की नीति न होकर जीवन में प्रेम व्यवहार की नीति के रूप में अपना विशेष स्थान रखती है। जिस प्रकार चाणक्य नीति राजनीतिज्ञ सिद्धान्तों से ओत प्रोत है वहीं विदुर नीति सत् असत् की दृष्टि से विशेष महत्त्व रखती है। विदुर सदा सत् विचारों का ही परामर्श देते। देखा जाय तो महाराज धृतराष्ट्र और विदुर के बीच ये कैसा संयोग था धृतराष्ट्र अपने पुत्र मोह में फंसे थे इसके विपरीत विदुर अपनी नीति में बँधे हुए थे। जब महाभारत का युद्ध प्रारम्भ हुआ तो ये किसी तरफ भी नहीं हुए, लेकिन मन से ये सदा पांडवों के पक्ष में थे और समय समय पर उन्होंने पांडवों की सहायता की तथा उन्हें कई विपत्तियों से भी बचाया।

नीति की चर्चा महाभारत में कई स्थलों पर आयी। महाभारत में वर्णन आता है कि धृतराष्ट्र ने पुत्र मोह में कई बार पांडवों के साथ अन्याय किया। इसी वजह से धृतराष्ट्र बहुत दुःखी थे तब उन्होंने अपनी चिन्ता मिटाने के लिए विदुर से उपाय पूछा। विदुर ने जो भी उपदेश धृतराष्ट्र को दिये, वह विदुर नीति के नाम से प्रसिद्ध हुई। महाभारत में उद्योग पर्व के 33वें से 44वें अध्याय तक नीति सम्बन्धी उपदेश संग्रहित हैं इसमें महात्मा विदुर ने राजा धृतराष्ट्र को लोक परलोक की बहुत सी बातें बतायी हैं। प्रस्तुत अध्याय में आप विदुर द्वारा प्रदत्त नीतियों का सूक्ष्म रूप में अध्ययन करेंगे-

1- विदुर ने अपनी नीति में पंडितों के विषय में कहा है-

निश्चित्य यः प्रक्रमते नान्तर्वसति कर्मण।
अबन्ध्यकालो वश्यात्मा स वै पण्डित उच्यते।

जो व्यक्ति पहले निश्चय अर्थात् अच्छी प्रकार सोच समझकर फिर कार्य का आरम्भ करता है, कार्य के प्रारम्भ होने के पश्चात् बीच में रूकता नहीं है। अपने समय का सदुपयोग करता है अर्थात् समय को व्यर्थ नहीं जाने देता और अपने चित्त अर्थात् मन को अपने वश में रखता है वही पण्डित कहलाता है।

2- विदुर ने अपने ज्येष्ठ भ्राता धृतराष्ट्र को नीति सम्मत कई उपदेश दिये। विदुर ने मूर्ख के विषय में बताते हुए कहा है-

अकामान् कामयति यः कामयानान् परित्यजेत्।
बलवन्तं च या द्वेष्टि तमाहुर्मूढचेतसम्॥

जो मनुष्य न चाहने वालों को चाहता है और चाहने योग्य लोगों का परित्याग कर देता है, तथा जो बलवानों के साथ शत्रुवत् बैर बाँधता है, उसे ही के अनुसार मूर्खचित्त वाला मनुष्य कहते हैं।

3- विदुर ने अपनी नीति में कुछ आध्यात्मिक प्रसंगों का वर्णन भी किया है,शरीर रूपी को रूपक मानकर विदुर कहते हैं-

रथः शरीरं पुरूषस्य राज-

न्नात्मा नियन्तेन्द्रियाण्यस्य चाश्वाः।
तैरप्रमत्तः कुशली सदश्वै-
र्दान्तैः सुखं याति रथीव धीरः।।

विदुर कहते हैं कि मनुष्य का शरीर ही रथ है। उस रथ रूपी शरीर में बुद्धिसारथि है, और इंद्रियां अश्व हैं, अश्वों को अपने वश में करके सावधान, चातुर्य एवं धीर पुरूष एक रथी की भाँति आनंद पूर्वक जीवन की यात्रा करता है।

4- नारी के विषय में बताते हुए विदुर कहते हैं

पूजनीया महाभागाः पुण्याश्च गृहदीप्तयः।
स्त्रियः श्रियो गृहस्योक्तास्तस्माद्रक्ष्या विशेषतः।।

विदुर ने अपनी नीति में कहा है कि नारियाँ घर की लक्ष्मी होती हैं, वे सदा पूजनीया हैं, अत्यन्त भाग्य स्वरूपा हैं, पुण्यशीला हैं । नारियों के इन गुणों से घर की शोभा में वृद्धि अर्थात् घर सुशोभित होता है। अतः वे विशेष रूप से योग्य है।

5- दीर्घदर्शी विदुर के अनुसार नीतियुक्त कथन न तो कहना अच्छा है और न सुनना अच्छा है । यही सब बातें धृतराष्ट्र विदुर को बताते हुए कहते हैं-

सुलभाः पुरूषा राजन् सततं प्रियवादिनः।
अप्रियस्य तु पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः।।

विदुर जी कहते हैं कि राजा के समक्ष सदा प्रिय मधुर वचन बोलने वाले पुरूष तो सुलभ हैं अर्थात् बहुत मिल जाते हैं । किन्तु राजा के समक्ष अप्रिय वचन अर्थात् उसको निन्दित लगने वाले हितकारी वचन को कहने वाले तथा उन वचनों को सुनने वाले मनुष्य दुर्लभ हैं ।कहने का तात्पर्य यह है जो अप्रिय लगने वाले हितकारी वचन बोलते हैं ऐसे लोग ना के बराबर मिलते हैं।

6- महात्मा विदुर ने विद्यार्थी के विषय में कहा है-

सुखार्थिनः कुतो विद्या नास्ति विद्यार्थिनः सुखम्।
सुखार्थी वा त्यजेद् विद्यां विद्यार्थी वा त्यजेद् सुखम् ।।

विदुर जी कहते हैं जो विद्यार्थी और सुखार्थी हैं ये अलग -अलग पहलू व एक दूसरे के विपरीत हैं विद्यार्थी के लिए सुख कहाँ अर्थात् विद्यार्थी को सुख की प्राप्ति नहीं होती है। जो विद्यार्थी सुख की कामना करता है वह विद्या को प्राप्त नहीं कर सकता है कहने का तात्पर्य यह है कि सुख की कामना करने वाले विद्यार्थी को विद्या का त्याग कर देना चाहिए। क्योंकि विद्या के साथ-साथ सुखों की प्राप्तिनहीं हो सकती । वास्तव में देखा जाय तो महात्मा विदुर ने जो भी उपदेश राजा धृतराष्ट्र को दिये वे सभी नीति परक व राष्ट्र के कल्याण के लिए हितकारी हैं । राजा धृतराष्ट्र कहते हैं कि मै भी मानता हूँ कि जो धर्म के पक्ष में है विजय उसी की है, मैं भी पाण्डवों के प्रति नीति से पूर्ण बुद्धि रखता हूँ लेकिन पुत्र मोह में फँसकर मैं उसका पालन नहीं कर सका, यही सब बातें महाभारत के उद्योग पर्व में विदुर नीति के नाम से प्रसिद्ध हुई ।

1.4.4 भर्तृहरि का नीति तत्त्वोपदेश

भर्तृहरि का नीति ग्रंथ एक अद्वितीय ग्रन्थ है ।जिसमें योगी भर्तृहरि ने अनेक नीति सम्बन्धी बातों को बड़े ही प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है । भर्तृहरि एक प्रतिभावान कवि तो थे ही साथ ही व्याकरण शास्त्र के अप्रतिम ज्ञाता भी थे । नीति शतक के श्लोकों में जिन नीतिसिद्धान्तों का

प्रतिपादन हुआ है वे समग्र मानव जाति के लिए कल्याणकारी हैं । भर्तृहरि के विषय में एक किंवदन्ती है कि ये प्रारम्भ में अत्यधिक भोग विलास में लिप्त रहते थे,उनका जीवन विषय वासनाओं से घिरा हुआ था ।वे अपनी प्रिय रानी पिंगला के प्रेम में इस प्रकार बँधे हुए थे कि अपने अनुज विक्रमादित्य के बार- बार समझाने पर भी उन पर उनकी बातों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा ।रानी पिंगला व्यभिचारिणी थी वह राजा ने नहीं बल्कि किसी अन्य पुरूष से प्रेम करती थी । जब राजा भर्तृहरि को रानी के इस विश्वासघात के विषय में ज्ञात हुआ तो उन्हें रानी के प्रति ऐसी घृणा हुई कि उन्हें ये सारा संसार मिथ्या लगने लगा। तत्पश्चात् भर्तृहरि ने संसार के भोग विलासों का वैसे ही त्याग कर दिया जिस प्रकार मनुष्य मरने के पश्चात् अपने शरीर का त्याग कर देता है। विरक्ति के पश्चात् वे योगी बन बैठे और संसार को अपनी अमूल्य धरोहर के रूप में त्रय शतक प्रदान किये। भर्तृहरि के तीन शतक वैराग्य, नीति, श्रृंगार विश्व प्रसिद्ध हैं। देखा जाय तो विधि के विधान को कोई बदल नहीं सकता है । यदि राजा भर्तृहरि को अपनी रानी से विश्वासघात न मिलता तो उन्हें इस संसार से विरक्ति न होती और वे महान त्रय शतकों का निर्माण कैसे करते। संस्कृत साहित्य में विद्वानों ने भर्तृहरि को एक राजा, विद्वान, योगी और संन्यासी के रूप में देखा है। भर्तृहरि ने अपने जीवन के अनुभवों का निचोड़ इन शतकों में प्रवाहमयी भाषा में अभिव्यक्त किया। यहाँ संक्षेप में भर्तृहरि के नीति तत्त्व के उपदेशों का वर्णन करेंगे-

1- यहाँ पर कवि भर्तृहरि के कहने का तात्पर्य है कि शरीर के विभिन्न अंगों की शोभा आभूषणों से नहीं होती है इसी का वर्णन करते हुए कहा है-

श्रोत्रं श्रुतेनैव न कुण्डलेन
दानेन पाणिर्न तु कङ्कणेन
विभाति कायः करूणापराणां
परोपकारैर्न तु चन्दनेन ।।

अर्थात् जो सत्पुरूष होते हैं उनके कान की शोभा सोने से जड़ित कुण्डल से नहीं बल्कि शास्त्रों के श्रवण से होती है, अर्थात् सत्पुरूषों के कानों की शोभा अच्छे वचनों के श्रवण से है। हाथ दान देने से सुशोभित होते हैं रत्न जड़ित कंकण पहनने से नहीं, अर्थात् हाथ की शोभा दान देने से होती है। शरीर की शोभा परोपकार करने से है चन्दन से नहीं।

2- भर्तृहरि के अनुसार पुत्र, पत्नी और मित्र का क्या नीति धर्म है। इसी संदर्भ में बताते हुए भर्तृहरि कहते हैं-

यः प्रीणयेत् सुचारितैः पितरं स पुत्रो
यद्भर्तुरेव हितमिच्छति तत् कलत्रम्
तन्मित्रमापदि सुखे च समक्रियं य-
देतत् त्रयं जगति पुण्यकृतो ।।

भर्तृहरि के अनुसार जो आज्ञाकारी पुत्र अपने सुन्दर चरित्र से अपने पिता को प्रसन्न करता है, देखा जाय तो सही मायने में वही पुत्र है। जो स्त्री अपने पति का कल्याण चाहती है अर्थात् नीति की आज्ञा का पालन करती है वही पत्नी है। और जो चाहे विपत्ति आये या सुख दोनों में एक समान व्यवहार करता है वही मित्र है । ये तीनों सत्पुत्र, सत्पत्नी और अच्छा मित्र ये पुण्य आत्माओं को ही प्राप्त होते हैं।

3- जो व्यक्ति अपने अमृतमयी मधुर वचनों से दुष्टों को सही मार्ग पर लाना चाहते हैं उसी विषय में भर्तृहरि कहते हैं-

व्यालं बालमृणालतन्तुभिरसौ रोद्धुं समुज्जृम्भते
छेत्तुं वज्रमणी´च्छिरीषकुसुमप्रान्तेन संनह्यते
माधुर्यं मधुबिन्दुना रचयितुं क्षाराम्बुधेरीहते
नेतुं वा´छति यः खलान् पथि सतां सूक्तैः सुधास्यन्दिभिः।।

जो व्यक्ति कोमल कमल नाल के रेशों से हाथी जैसे बलवान जीव को बाँधने का प्रयत्न करता है, जो असम्भव है। या अत्यधिक कोमल शिरीष पुष्प के अग्रभाग से हीरे को काटने की इच्छा करता है। एकमात्र शहद की बूँद से सम्पूर्ण खारे समुद्र को मीठा करना चाहता है। वह यह नहीं जानता कि ये सारे कार्य असम्भव है ये सारे कार्य यदि सम्भव भी हो जाय लेकिन फिर भी दुष्ट सज्जनता के मार्ग पर नहीं आता।

4- कवि भर्तृहरि ने विद्या के विषय में लिखा है-

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनं
विद्या भोगकरी यशः सुखकरी विद्या गुरूणां गुरूः।
विद्या बन्धुजनो विदेशगमने विद्या परा देवता
विद्या राजसु पूज्यते नहि धनं विद्याविहीनः पशुः।।

कवि भर्तृहरि कहते हैं कि विद्या ही मनुष्य का सर्वश्रेष्ठ गुण है। विद्या ही छिपा हुआ गुप्त धन है। विद्या भोगों को देने वाली और यश और सुखों को देने वाली है तथा विद्या ही गुरूओं की भी गुरू है। विदेश में रहने वाले की विद्या बन्धु के समान सहायता करती है, एवं विद्या ही ईष्ट के तुल्य है। राजाओं के द्वारा विद्या की सदा पूजा की जाती है अर्थात् पूजी जाती है, धन नहीं। जो मनुष्य विद्या से रहित है वह पशु तुल्य है अर्थात् वह पशुकोटि में रहने योग्य है।

5- कवि भर्तृहरि ने अपने नीति शतक में जन्म के विषय में बताते हुए कहा है-

स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम्।
परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते।।

कवि कहते हैं कि युगों-युगों से जन्म-मरण का चक्र तो लगातार चलता ही रहता है। कहने का आशय यह है कि जिसने जन्म लिया उसकी मृत्यु निश्चय है कवि कहते हैं कि उसी का जन्म लेना सफल होता है जिसके जन्म लेने से वंश की उन्नति हो।

6- मूर्ख व्यक्ति पर किसी की कही हुई बात का कोई प्रभाव नहीं होता, क्योंकि मूर्खता को कवि ने सबसे बड़ा अभिशाप माना है। कवि स्पष्ट शब्दों में कहते हैं-

अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः।
ज्ञानलवदुर्विग्धं ब्रह्मापि च तं नरं न र´जयति।।

जो व्यक्ति अज्ञ है अर्थात् अबोध है उसे आसानी से प्रसन्न किया जा सकता है। जो विद्वान है, श्रेष्ठ ज्ञाता है अर्थात् विशेषज्ञ को और भी आसानी प्रसन्न किया जा सकता है। परन्तु जो अल्प मात्र के ज्ञान से अपने को निपुण मानने लगा है उसे तो सृष्टि कर्ता स्वंय परमपिता ब्रह्मा भी सन्तुष्ट नहीं कर सकते साधारण मनुष्य की तो क्या बात। कहने का तात्पर्य यह है कि मूर्ख को समझाना

कठिन ही नहीं अपितु असम्भव भी है। योगीन्द्र भर्तृहरि ने नीतिशतक में नैतिक सिद्धान्तों की शिक्षा दी है, जिनका उद्देश्य मनुष्य को कल्याण के मार्ग की ओर प्रेरित करना है। भर्तृहरि ने जीवन में मानव मूल्यों को विशिष्ट महत्त्व प्रदान किया है।

बोध प्रश्न

(3) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजियेः-

(क) महात्मा विदुर धृतराष्ट्र और पाण्डु के छोटे---थे।

(ख) भर्तृहरि का नीति शतक एक ---- ग्रन्थ है।

(ग) विद्या ही मनुष्य का---- गुण है।

(घ) द्यूतक्रीड़ा के समय भी विदुर ने -----को चेतावनी दी।

(4) निम्न प्रश्नों के उत्तर दीजिये-

(1) 'पूजनीया महाभागाः पुण्याश्च गृहदीप्तयः' में कवि ने किसके विषय में कहा है-

(क) पुरूष (ग) नारी

(ख) पंडित (घ) मूर्ख

(2) 'सुखार्थिनः कुतो विद्या नास्ति विद्यार्थिनःसुखम्' की पंक्ति किस पुस्तक से उद्धृत है

(क) नीतिशतक (ग) विदुर नीति

(ख) चाणक्य नीति (घ) मेघदूत

(3) 'विद्यानाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनं' में किसकी महिमा बतायी है-

(क) विद्या की (ग) मूर्ख की

(ख) धन की (घ) पंडित की

1.4.5 पंचतंत्र में नीति

पंचतंत्र जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, पाँच तन्त्रों में निबद्ध है। आचार्य विष्णुगुप्त शर्मा द्वारा रचित पंचतंत्र सरल होने के साथ-साथ बड़ा महत्व का है। यह नीति ग्रन्थ प्रत्येक वर्ग के लिए प्रेरणादायी होने के साथ इसकी लोकप्रियता भारत में ही नहीं बल्कि विश्वव्यापी है। कई विदेशी भाषाओं में अनका अनुवाद हुआ है। पंचतंत्र की रचना काल के विषय में कई मतभेद हैं लेकिन कई निष्कर्षों के आधार पर इतिहासकारों ने पंचतंत्र का रचनाकाल 300 ईसा पूर्व के लगभग स्वीकार किया है। जैसा कि आपको विदित है कि पंचतंत्र के अर्न्तगत पाँच तंत्र आते हैं। आचार्य विष्णुशर्मा एक धर्मशास्त्री थे। सम्पूर्ण पंचतंत्र की कथाएँ पांच तन्त्रों में विभक्त है। इस

सम्बन्ध में एक कथा प्रचलित है कहते हैं कि भारत की दक्षिण दिशा में महिलारोप्य नामक एक नगर था। वहाँ अमरशक्ति नामक एक राजा राज्य करता था। उसके तीन पुत्र बहुशक्ति, उग्रशक्ति और अनंत शक्ति थे। राजा के तीनों पुत्र महामूर्ख थे, राजा ने इन पुत्रों को विद्वान बनाने के लिए नीतिज्ञ विष्णुशर्मा नामक ब्राह्मण को सौंप दिया। विष्णुशर्मा ने राजा को आश्वासन दिया कि मैं मात्र 6महीने में तीनों राजकुमारों को नीतिशास्त्र का ज्ञाता बना देगा। तब विष्णुशर्मा ने पाँच तंत्रों की रचना की मित्रभेद, मित्रसम्प्राप्ति, काकोलूकीय, लब्धप्रणाश और अपरीक्षित कारक। इन तंत्रों के माध्यम से विष्णुशर्मा ने राजकुमारों को नीतिशास्त्रज्ञ बना दिया। तभी यह पाँच तत्त्वों वाला पंचतंत्र नामक नीति ग्रंथ समस्त भूतल पर नीतिज्ञान के लिए प्रसिद्ध हो गया। पंचतंत्र में पाँचों तंत्रों को मिलाकर 71 कथाएँ हैं। मित्रभेद में 22, मित्रसम्प्राप्ति में 8, काकोलूकीय में 16, लब्ध प्रणाश में 12तथा अपरीक्षित कारक तंत्र में13 कथाएँ हैं। इनमें से 45 कथाओं में विष्णुशर्मा ने पशु पक्षियों को पात्र बनाया गया है। आचार्य विष्णुशर्मा ने कथाओं के बीच-बीच में अनेक स्थलों पर नीतिकारों को स्मरण किया है। हम यहाँ पर केवल उन्हीं अंशों को प्रस्तुत कर रहें हैं जो सदाचरण के लिए प्रेरणादायक हैं -

1- कवि विष्णुशर्मा ने अपनी नीति में बताया है कि कभी किसी व्यक्ति के ऊपर पूर्ण रूप से विश्वास करके उसे अपनी गुप्त बातें नहीं बतानी चाहिए। कभी भी किसी के प्रति असत्य भाषण अर्थात् झूठ नहीं बोलना चाहिए। सदैव एक समान नीति अर्थात् एक समान आचरण करना चाहिए। ईश्वर व राजाओं के समक्ष तो कभी भी असत्य का आचरण नहीं करना चाहिए।

2- कामी नारियों की निन्दा करते हुए विष्णुशर्मा ने कहा है

अन्तर्विषमया ह्येता बहिश्चैव मनोरमाः।

गु´जफलसमाकारा योषितः केन निर्मिताः।।

कथाकार विष्णुशर्मा ने स्त्रियों के आन्तरिक और बाह्य अंग के भावों को स्पष्ट करने के लिए मापने की सबसे छोटी इकाई गुंजा का निर्माण करके कामिनियों से सदा दूर रहने की चेतावनी दी है। कथाकार ने एक ओर तो कामिनियों से दूर रहने को कहा है। वहीं दूसरी ओर स्त्री के रक्षार्थ अर्थात् रक्षा हेतु सदा तत्पर रहने के लिए कहा है। जो ब्राह्मण, स्वामी, स्त्री और गौ की रक्षा हेतु प्राणत्याग करते हैं, उन्हें ही सनातन लोक की प्राप्ति होती है।

3-धर्मबुद्धि अर्थात् धर्म के अनुसार जो अपनी बुद्धि का प्रयोग करते हैं उनके विषय में कथाकार कहते हैं-

मातृवत् परदाराणि परद्रव्याणि लोष्टवत्।

आत्मवत् सर्वभूतानि वीक्षन्ते धर्मबुद्धयः ।।

धर्मबुद्धि वाले व्यक्ति दूसरे की पत्नी को माता के समान, पर धन अर्थात् दूसरे के धन को मिट्टी के समान और समस्त प्राणियों को अपनी आत्मा के समान देखते हैं।

4- कथाकार विष्णुशर्मा ने तीन कार्यों को करने से वर्ज्य किया है-

अयशः प्राप्यते येन येन चापगतिर्भवेत्।

स्वर्गाच्च भ्रंश्यते येन न तत्कर्म समाचरेत्।।

जिस कार्य को करने से मनुष्य का अपयश हो, दुर्गति हो और वह अपने बुरे कर्मों के कारण स्वर्ग

प्राप्ति से वंचित रह जाय ऐसा कर्म मनुष्य को कभी नहीं करना चाहिए कहने का तात्पर्य यह है कि मनुष्य को सत् कर्म करने चाहिए।

5- धन और प्राण रक्षा के सम्बन्ध में कथाकार कहते हैं-

सर्वनाशे च संजाते प्राणानामपि संशये।

अपि शत्रु प्रणम्यापि रक्षेत् प्राणान् धनानि च।।

यदि मनुष्य का सब कुछ नष्ट हो जाता है, यहाँ तक की प्राण भी संकट की स्थिति में हों तो शत्रु को प्रणाम कर लेना चाहिए इससे हमारे प्राण भी संकट मुक्त हो जाते हैं और धन की भी रक्षा हो जाती है।

6- विष्णुशर्मा ने विनाश की स्थिति के विषय में कहा है-

सर्वनाशे च संजाते प्राणानामपि संशये।

अपि शत्रुं प्रणम्यपि रक्षेत् प्राणान् धनानि च ।।

यदि मनुष्य का आलस्य बढ़ता रहे और वह अपने शत्रु और रोग की उपेक्षा कर देता है, तो ये शनै-शनै बड़े प्रभावपूर्ण हो जाते हैं और अंत में वह इनके द्वारा मारा जाता है। कहने का तात्पर्य यह हैकि यदि मनुष्य आलस्य करेगा तो उसके शत्रु उत्पन्न होंगे यदि उसका रोग बढ़ता रहेगा तो अंत में उसकी मृत्यु निश्चय है। कथाकार विष्णुशर्मा ने कथामुख में राजा अमरशक्ति के तीनों पुत्रों को ज्ञानवान बनाने के लिए इस ग्रंथकी रचना की, विष्णुशर्मा के अनुसार संसार में जो लेशमात्र (अल्पमात्र) भी ज्ञान रखते हैं यह ग्रन्थ उन सभी के लिए कल्याणकारी व प्रेरणादायक रहेगाइससे प्रमाणित हो ही जाता है कि कथाकार विष्णुशर्मा ने सामान्य जन के कल्याण की भावना से प्रेरित होकर इसकी रचना की।

1.4.6 हितोपदेश में नीति

हितोपदेश दो शब्दों के योग से बना है- हित और उपदेश। हितोपदेश की व्युत्पत्ति धा(हि)क्त के योग से होती है यहाँ पर'धा' को 'हि' हो गया और क्त प्रत्यय से हित शब्द बना है। हित और उपदेश शब्द में हितस्य उपदेशः षष्ठी तत्पुरूष समास के बाद गुण संधि करने पर हितोपदेश शब्द की व्युत्पत्ति हुई जिसका अर्थ है हितकारी उपदेश। इस प्रकार हितोपदेश का व्यापक अर्थ प्रत्यक्ष है, एक प्रकार से देखा जाय तो ये हितकारक नीतियों का ही उपदेश है। अर्थ गौरव से युक्त महाकाव्य किरातार्जुनीयम् के प्रथम सर्ग में हित शब्द तीन बार प्रयुक्त हुआ है। हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः अर्थात् जो हितकारी हो और वह मधुर भी हो ऐसा वचन अति दुर्लभ है अर्थात् सुलभ नहीं है। नहि प्रियं प्रवक्तुमिच्छन्ति मृषा हितैषिणः कहने का तात्पर्य यह है कि जो लोग दूसरों का हित चाहते हैं वह कटु सत्य भी बोलते हैं। नीति शास्त्र एक ऐसा शास्त्र है जिसे प्रत्येक मनुष्य अपने व्यवहार में लाता है। विष्णुशर्मा द्वारा रचित पंचतंत्र-

श्रुतो हितोपदेशोऽयं पाटतं संस्कृतोक्तिषु।

वचां सर्वत्र वैचित्र्यं नीतिविद्यां ददाति च ।।

यह हितोपदेश नामक ग्रंथ संस्कृत भाषा में वार्तालाप करने में पटुता के साथ ही साथ वाणी की विचित्रता तथा नीति सम्बन्धी विद्या को प्राप्त कराता है। हितोपदेश के सम्बन्ध में एक कथा प्रचलित है-

गंगा नदी के तट पर पाटलिपुत्र नामक नगर में सुदर्शन नामक राजा राज्य करते थे, उनके चार पुत्र

थे। धीरे-धीरे समय बीतता गया और राजा को अपने अनपढ़ पुत्रों के विषय में अत्यधिक चिन्ता होने लगी, क्योंकि वे जानते थे कि शास्त्र के द्वारा अनेक संदेहों को दूर किया जा सकता है, जिसने शास्त्र का अभ्यास नहीं किया देखा जाय तो वह वास्तव में मूर्ख है उसके विषय में कहा गया है-यौवन, धन-सम्पत्ति, प्रभुता और अविवेक। इनमें एक-एक भी सबसे बड़ा अनर्थ करने वाला है, जिसमें ये चारों हों उसके विषय में तो क्या कहना। तत्पश्चात् राजा ने सोचा मेरे पुत्रों में तो ये चारों बातें विद्यमान हैं,इसलिए इस सम्बन्ध में मुझे कुछ उपाय करना चाहिए, चिन्तित राजा ने नीतिशास्त्रज्ञ पं0 विष्णुशर्मा को बुलाकर कहा मेरे इन पुत्रों को नीतिशास्त्र का उपदेश देकर शिक्षित करें। विष्णुशर्मा ने राजा के पुत्रों को जो हितकारी उपदेश दिये वही हितोपदेश कहलाया। हितोपदेश की रचना का समय 11 शती के लगभग माना जा सकता है। सर्वजनहिताय पंचतंत्र तथा अन्य नीति ग्रंथों के आधार पर ही पं0 श्रीनारायणशर्मा ने हितोपदेश नामक ग्रंथ की रचना की। यह ग्रंथ चार भागों में विभक्त है - मित्रलाभ, सुहृद्भेद, विग्रह और संधि। हितोपदेश की कथाओं के प्रमुखपात्र कौआ,मृग,कछुआ,चूहा,धूर्तगीदड़,मुसाफिर,बिलाव, अंधागिद्ध,संन्यासी,चिड़िया आदि हैं। देखा जाय तो इनमें से अधिकतर जंगली प्राणी, पशु पक्षी हैं। इनके अध्ययन से हमें व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त होता है। इन कथाओं में मित्रलाभ में 216, सुहृद्भेद में 184, विग्रह में 149 और संधि में 133 श्लोकों की संख्या है। नारायण पंडित द्वारा रचित हितोपदेश के कुछ नीतिगत उपदेश निम्नलिखित हैं-

1-भाग्य के विषय में यहां पर कथाकार ने कुछ सांकेतिक उपदेश दिया है-

'स हि गगनविहारी कल्मषध्वंसकारी'

जे चन्द्रमा प्रतिदिन आकाश में विहार करता है, अंधकार को दूर करता है, राहु के द्वारा उसे भी ग्रास बना लिया जाता है, अतः देखा जाय तो भाग्य ही बलवान है।

2-मृत्यु के समीप होने का लक्षण बताते हुए कथाकार कहते हैं-

दीपनिर्वाणगन्धं च सुहृद्वक्यमरून्धतीम्।
न जिघ्रन्ति न श्रृण्वन्ति न पश्यन्ति गतायुषः।।

जिनकी आयु समाप्त अर्थात् जो मृत्यु के हैं, उन्हें दीपक के बुझने से गंध का आभास नहीं होता है, मित्र के हितैषी वाक्यों को भी वे नहीं सुनते हैं और वे अरून्धती तारा को नहीं देख पाते।

3-प्रस्तुत श्लोक के माध्यम से कथाकार ने बताया है कि किस प्रकार बुद्धिजावियों की बुद्धि भी मलिन को जाती है-

असम्भवं हेममृगस्य जन्म
तथापि रामो लुलुभे-मृगाय
धियोऽपि पुंसां मलिना भवन्ति।।

कथाकार राम के विषय में बताते हुए कहते हैं कि राम तो मर्यादापुरूषोत्तम थे। फिर भी उनकी बुद्धि भ्रमित हो गयी थी, जिस प्रकार स्वर्णमृग का होना असम्भव है लेकिन फिर भी राम को मृगाके लिए लोभ हो गया, उन्होंने उसका पीछा किया। इसीलिए कहा गया है प्रायः विपत्ति आने पर बुद्धिमानों की बुद्धि भी मलिन हो जाती है।

4- अतिथिर्यस्य भग्नाशो

भारतीय परम्परा के अनुसार अतिथि को देवतुल्य माना जाता है। यदि किसी घर से कोई अतिथि

निराश अर्थात् दुःखी होकर लौट जाता है, वह उस घर के लोगों को अपना पाप दे जाता है।

5- विपदि धैर्यम्

शास्त्रों में भी कहा गया है कि विपत्ति के समय धैर्य धारण करना चाहिए।

6-कथाकार नारायणपंडित राजनीति के विषय में कहते हैं-

वाराङ्नेव नृपनीतिरनेकरूपा

काव्य के अन्त में कथाकार ने अपने व अपने काव्य हितोपदेश के विषय में कहा है-

कथाकार कहते हैं कि इस संसार में जब तक हिमालय सुता पार्वती के प्रणय में चन्द्रमौलि अर्थात् शंकर का प्रेम अनुराग है। जब तक बादलों में बिजली के समान भगवान विष्णु के मन में लक्ष्मी सुशोभित अर्थात् सुदर्शन धारी विष्णु व देवी लक्ष्मी का प्रेम है और जब तक सूर्य के स्फुलिङ्ग के समान स्वर्ण शिखर सुमेरू स्थित है तब तक कथाकार नारायण पंडित द्वारा विरचित यह हितोपदेश नामक कथाओं का ग्रन्थ प्रचलित रहे अर्थात् चलता रहे।

1.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप नीति व नीति साहित्य से परिचित हुए,आपने शुक्र नीति, चाणक्य नीति, विदुर नीति, भर्तृहरि के नीतितत्त्वोपदेशों का अध्ययन किया। इसके साथ ही साथ पंचतंत्र और हितोपदेश की नीतियों से परिचित हुए। इस इकाई में आपने विभिन्न ग्रंथों से संग्रहित कल्याणकारी व जीवनोपयोगी नीतियों का अध्ययन किया।

बोध प्रश्न

(5) नीचे जो प्रश्न दिये गये हैं उनमें से तथ्य की दृष्टि से कुछ सही हैं और कुछ गलत हैं, सही वाक्यों के सामने का चिह्न लगाइये- तथा गलत वाक्यों के सामने गलत का चिह्न कोष्ठक में लगायें -

(क) पंचतंत्र पाँच तन्त्रों में निबद्ध कथाओं का ग्रन्थ है ( )
(ख) पंचतंत्र विष्णुशर्मा द्वारा रचित ग्रंथ नहीं ( )
(ग) हितोपदेश की रचना पंचतंत्र के आधार पर ही की गयी है ( )
(घ) कथाओं के ग्रंथ हितोपदेश के रचनाकार नारायणपंडित हैं ( )

(6) निम्न सूक्तियों के अर्थ लिखिए-

- विपदि धैर्यम्
- वाराङ्गनेव नृपनीतिरनेकरूपा
- स हि गगनविहारी कल्मषध्वंसकारी

1.6 शब्दावली

उद्भावक- उत्पन्न करने वाला
परोक्ष - पीठ पीछे

दीर्घदर्शी - दूर तक दृष्टि रखने वाला
हितकारी- हित करने वाले
द्यूतक्रीड़ा- जुआ
प्रेरणादायक- प्रेरणा देने वाला
सर्वजनहिताय- सभी लोगों के हित में
नीतिशास्त्रज्ञ - नीति शास्त्र में निपुण

1.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1- (क) (ख) (ग) (घ)

2- (1) (ग) दुर्जन

(2) (ग) शुक्रनीति

(3) (ग) मूर्ख

3- (क) - भ्राता

(ख) - अद्वितीय

(ग) - सर्वश्रेष्ठ

(घ) - धृतराष्ट्र

4- (1) (ग)- नारी

(2) (ग) - विदुर

(3) (क)- विद्या

5- (क) (ख) (ग) (घ)

1.8 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1 -बलदेव उपाध्याय- संस्कृत साहित्य का इतिहास शारदा निकेतन5 बी, कस्तूरबा नगर,सिगरा वाराणसी 2210102-

2. डॉ0 बाबूराम त्रिपाठी- श्री भर्तृहरि कृत-नीतिशतकम्महालक्ष्मी प्रकाशनशहीद भगतसिंह मार्गआगरा-2820023-प्रो0 बालशास्त्री - हितोपदेशव्याकरण विभाग संस्कृत चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

1.9 उपयोगी पुस्तकें

1- केशोराम अग्रवाल द्वारा -कल्याण-नीतिसार-अंकगीताप्रेस,गोरखपुर से मुद्रित जनवरी एवं फरवरी 2002ई0तथा प्रकाशित।

1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1- पंचतंत्र के अन्तर्गत नीति का सार लिखिये।

2 हितोपदेश की नीति को विस्तार से समझाइये।

इकाई 2 भर्तृहरि ,जीवन वृत्त एवं नीति-साहित्य में योगदान

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 भर्तृहरि का स्थिति काल
2.4 भर्तृहरि का जीवन वृत्त
2.5 दन्तकथाओं के आधार पर भर्तृहरि के जीवन की घटनाएं
2.6 भर्तृहरि की कृतियां
2.6.1 नीतिशतकम्
2.6.2 श्रृंगारशतकम्
2.6.3 वैराग्यशतकम्
2.6.4 वाक्यपदीय
2.7 भर्तृहरि का नीति साहित्य को योगदान
2.8 सारांश
2.9 शब्दावली
2.10 बोध प्रश्नों के उत्तर
2.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची
2.12 उपयोगी पुस्तकें
2.13 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

संस्कृत जगत में प्रचलित नीति कथाओं को आप जानते हैं। उन्हीं से सम्बन्धित नीति साहित्य की परम्परा वैदिक युग से प्रारम्भ होकर आज तक चली आ रही है। विभिन्न ग्रंथों में नीति परक सम्वादों , कथाओं, सूक्तियों आदि के वर्णन मिलते हैं। इसी क्रम में प्रसिद्ध नीति कथाओं के रचनाकार पंचतंत्र के रचयिता आचार्य विष्णुशर्मा का अभ्युदय हुआ जिन्होंने नीति साहित्य का भरपूर सम्वर्धन किया, इसी परम्परा को आगे बढ़ाने वाले व्याकरण एवं दर्शन प्रिय व्यक्तित्त्व तथा पाण्डित्य के धनी आचार्य भर्तृहरि ने नीतिशतक की रचना करके लौकिक जीवन के विभिन्न पक्षों में नीतियां का उद्घाटन किया। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप भर्तृहरि द्वारा विभिन्न पक्षों से सम्बन्धित घटनाओं व महत्त्वपूर्ण नीति परक बातों का ज्ञान कराने में सक्षम हो सकेंगे।

2.2 उद्देश्य

* इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आपः-

* भर्तृहरि के स्थिति काल से सम्बन्धित लेखों व प्रमाणों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

* भर्तृहरि के जीवन से परिचित हो सकेंगे।

* भर्तृहरि के जीवन से सम्बन्धित घटनाओं के दन्तकथाओं के माध्यम से समझा सकेंगे।

* भर्तृहरि की कृतियों का उल्लेख कर सकेंगे।

* भर्तृहरि के नीति साहित्य में योगदान से सम्बधित तथ्यों से परिचित होंगे।

2.3 भर्तृहरि का स्थिति काल

संस्कृत विश्व की प्राचीनतम व श्रेष्ठ भाषा है। इसका साहित्य अत्यन्त विशाल और समृद्ध है। भर्तृहरि संस्कृत साहित्य में सूर्य के समान चमके, जिस प्रकार सूर्य अपनी किरणों से संसार को प्रकाशित करता है उसी प्रकार भर्तृहरि के शतक अन्नत काल तक समाज को प्रेरणा देते रहेंगे। इन्होंने अपने काव्य में अपने समय का निर्देश नहीं किया। संस्कृत साहित्य की परम्परा में अनेक महान साहित्यकार व कवि हुए, अपनी कृतियों में अपना परिचय न देने के कारण अनेक जनश्रुतियों को ही सत्य माना जाता है। कालिदास ,भास, भारवि, माघ,तथा शद्रक की तरह ही भर्तृहरि के समय के विषय में मतभेद है। दन्तकथाओं व विदेशी यात्रियों के द्वारा लिखे लेखों के अतिरिक्त कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है। इस प्रकार देखा जाय तो भर्तृहरि के स्थिति काल के विषय में निश्चित ज्ञान उपलब्ध नहीं होता है। विभिन्न विद्वानों के अलग-अलग मत हैं।

जनश्रुतियों के आधार पर राजा भर्तृहरि विक्रमादित्य के अग्रज थे, तिथियों के ज्ञान हेतु विक्रम के नाम पर एक संवत्सर की प्रथा चली जो वर्तमान में 'विक्रम संवत' के नाम से जानी जाती है। यदि हम जनश्रुतियों को आधार मानकर राजा भर्तृहरि केा विक्रमादित्य का अग्रज मान लें तो उनका

समय छठी शताब्दी उत्तरार्द्ध माना जाता हैजिन्होंने 644 में कहरूर के युद्ध में हूणों को पराजित किया । नवीं शताब्दी उत्तरार्द्ध होने वाले आचार्य आनन्दवर्धन ने अपने ग्रन्थ ध्वन्यालोक में भर्तृहरि के श्लोंको को उद्धृत किया है,अतः निश्चय ही भर्तृहरि इससे पूर्व का होना चाहिए। चीनी यात्रीं हित्संग के अनुसार बौद्ध भर्तृहरि को त्रय शतकों का निर्माता मानते हैं। इनका समय ईसा की सातवीं शताब्दी पूवार्द्ध का माना जा सकता है, उसी समय अमरूक नामक कवि हुए, अमरूक कवि द्वारा लिखे गये शतक के पद्य भर्तृहरि के श्रृंगार शतक के पद्यों से प्रभावित हैं अर्थात् मिलते हैं। अतः हम भर्तृहरि के समय को 700 ई0 के कुछ पूर्व का मानेंगे, यदि भर्तृहरि को अमरूक कवि के समकालीन मान लें तो तब भी भर्तृहरि का समय छठी शताब्दी उत्तरार्द्ध का निश्चित किया जा सकता है।

2.4 भर्तृहरि का जीवन वृत्त

व्याकरण दर्शन में अभूतपूर्व चिन्तन करने वाले जीवन में प्रीति, दया, करूणा और विद्वता जैसे अक्षुण्ण गुणों को पहचानने वाले प्रसिद्ध कवि भर्तृहरि का आविर्भाव महाकाव्यों और नीति साहित्य के सन्धि काल की उद्भूत प्रेरणाओं के साथ हुआ । दन्तकथाओं व किंवदन्तियों के आधार पर ही आप भर्तृहरि के जीवन के विषय में जान पायेंगे।भर्तृहरि का जीवन विविधताओं से भरा है, अपने काव्य में समय की ही भाँति अपने जीवन के विषय में निर्देश न देने के कारण जनश्रुतियों को ही आधार माना गया है। भर्तृहरि का जन्म मालवा प्रान्त में हुआ था, ये जाति के क्षत्रिय व परमार वंशज थे। इनका सम्बन्ध राजघराने से था। इनके पिता का नाम गन्धर्वसेन था। इनकी दो रानियां थीं। एक से भर्तृहरि का जन्म हुआ व दूसरी से विक्रमादित्य उत्पन्न हुए। राजकुमार विक्रम भर्तृहरि के छोटे भाई थे, राजकुमार विक्रम ही बाद में महाराजाधिराज वीर विक्रमादित्य के नाम से प्रसिद्ध हुए, इन्हीं के नाम पर तिथि का ज्ञान कराने के लिए संवतसर की प्रथा चलाई गई इसके विषय में आप पूर्व जान चुके हैं। भर्तृहरि ने अपनी शिक्षा गुरू के आश्रम में रहकर पूर्ण की, भर्तृहरि आज्ञाकारी थे। उन्होंने वेदों, उपवेदों और छह शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त किया, गुरू के आश्रम में रहकर ही उन्होंने वेदान्ताचार्य से ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त किया । महाराजा भर्तृहरि असाधारण विद्वान और बुद्धिमान होने के साथ-साथ एक महान योद्धा भी थे, एक बार उनके राज्यमें शत्रुओं ने आक्रमण कर दिया उन्होंने शत्रुओं का पूर्ण रूप से दमन किया। राजा भर्तृहरि अपनी वीरता के कारण ही नहीं अपितु विद्वता के कारण भी प्रसिद्धि को प्राप्त हुए।भर्तृहरि के साथ विक्रमादित्य और विक्रमादित्य के साथ भर्तृहरि के नाम को कभी भी अलग नहीं किया जा सकता , अग्रज होने के कारण भर्तृहरि राजा बने विक्रमादित्य अपने अग्रज के प्रधानमंत्री के रूप में कार्यभार चलाने में सहयोग देते थे, जिस प्रकार एक पिता अपने पुत्र को कार्यभार सौंपकर निश्चिन्त हो जाता है उसी प्रकार भर्तृहरि भी विक्रम को सम्पूर्ण दायित्व सौंपकर सुखी थे, दोनों भाईयों में अत्यधिक प्रेम था। कुछ समय उपरान्त मालवा की राजधानी उज्जैन हो गयी, सत्ता पाकर भर्तृहरि विषयासक्त हो गये और उनका अधिकांश समय आमोद-प्रमोद में बितने लगा। महाराजा भर्तृहरि की पिंगला नाम की रानी थी जो अपने समय की परमसुंदरी, मनमोहिनी, रूपलावण्या सम्पन्ना थी। भर्तृहरि व रानी पिंगला में अत्यधिक प्रेम था, असाधारण रूप से सम्पन्न रानी पिंगला पर महाराज इस प्रकार मुग्ध हुए कि अपनी बुद्धि, विवेक, और विचार जैसे

वैभव को उनके ऊपर समर्पित किया वे महारानी पिंगला के हाथों की कठपुतली बन गये, उनका अधिकांश समय रनिवास में बीतने लगा ,विक्रमादित्य के बार-बार समझाने पर भी उन्होंने उनकी बात नही सुनी।यदि प्राचीन काल से आधुनिक काल तक देखा जाय तो रूप लावण्या मोहिनियों के सम्मुख बड़े-बड़े योगी तपस्वी भी धाराशायी हो जाते हैं यहाँ हम भर्तृहरि को दोष नहीं देंगे, विश्वामित्र जैसे महान योगी तपस्वी ने मेनका के रूप लावण्य में फँसकर अपना तप भंग किया था, बड़े-बड़े योद्धा जो अपने बाहुबल से इस संसार को पराजित कर सकते हैं उन्होंने भी इन कोमलांगी मनमोहिनियों के सम्मुख हार मान ली बड़े-बड़े योद्धा जो अपने युद्ध कौशल के बल नहीं कर पाते ये अपने एक ही कटाक्ष से कर लेती हैं। इन मोहिनियों के वशीभूत रहने वाले पुरूष को अंत में दुःख, धोखा और विश्वासघात ही मिलता है।

यदि भर्तृहरि की बुद्धि मारी नहीं जाती तो वे रानी पिंगला के हाथों की कठपुतलीनहीं बनते जिससे रानी पर पुरूष से प्रेम न करती, यदि वह व्यभिचारिणी न होती तो भर्तृहरि को कैसे वैराग्य प्राप्त होता और वे कैसे महान शतक त्रय का निर्माण करते, येसब तो ईश्वर की इच्छा से होता है। यदि उन्हें विरक्ति न होती तो उनका नाम संसारमें अमर न होता, अपनी प्रिया के कुकर्म को जानकर उन्हें ऐसी विरक्ति हुई कि वे राजपाट त्यागकर योगीराज बन गये।

2.5 दन्त कथाओं के आधार पर भर्तृहरि के जीवन की घटनाएं

इससे पूर्व आप भर्तृहरि के जीवन से परिचित हुए, अब आप दन्तकथाओं के आधार पर उनके जीवन की घटनाओं से परिचित होंगे कि किस प्रकार वे महाराजा भर्तृहरि से योगी भर्तृहरि बने। महारानी पिंगला अनुपम सौन्दर्य शालीनी तो थी ही साथ ही साथ मक्कार, चालाक व दुश्चरित्रा भी थी ,महाराज तो रानी से अटूट प्रेम करते थे पर रानी पिंगलाआन्तरिक रूप से राजा से प्रेम नहीं करती थी, उसे तो अपने महल के सेवक दरोगा से प्रेम था, कुछ समय तक महारानी की कलंक कथा छिपी रही आखिर एक दिन राजकुमार विक्रम को महारानी (भाभी) का कुकर्म ज्ञात हुआ तो उन्हें असह्य मनोवेदनाहुई, उन्होंने अपने अग्रज भर्तृहरि को जब सारा वृत्तांत सुनाया तो उन्होंने विक्रम से कहा- तुम्हें कोई भ्रम हो रहा है पंगला तो एक पतिव्रता व आदर्श नारी है, ऐसी पतिव्रता रानी पिंगला के चरित्र में कलंक लगाकर तुमने ठीक नहीं किया, विक्रमादित्य के बार-बार समझाने पर भी भर्तृहरि ने उनकी एक न सुनी। जब रानी पिंगला को इस घटना के बारे में ज्ञात हुआ तो उसने महाराज से विक्रमादित्य को मंत्री पद से हटाने का अनुरोध किया। विक्रम समझ गये कि यह सब पिंगला का षड्यंत्र है। राजा भर्तृहरि ने उन्हें मंत्री पद से हटाकर अपने राज्य से निष्कासित कर दिया, वे सभा भवन से निकल कर वन की ओर चल पड़े। विक्रमादित्य के चले जाने के बाद भर्तृहरि का जीवन अत्यधिक विषयवासना ग्रस्त हो गया, राज्य में अशान्ति व अव्यवस्था फैल गई। इसी समय एक घटना ऐसी घटी जिसका भर्तृहरि के हृदय पर गहरा प्रभाव पडा़-एक दन्तकथा के अनुसार भर्तृहरि के राज्य में एक दरिद्र ब्राह्मण अपने सिद्धि के लिए किसी देवता की घोर अराधना कर रहा था, तप करते -करते उसे कई वर्ष व्यतीत हो गये। उसके तप के प्रभाव से देवता का आसन हिल उठा, उन्होंने उसे एक अमर फलदिया। अमर फल प्राप्त करने के बाद ब्राह्मण ने सोचा इस फल को खाने से अमर होकर मुझे दरिद्रता का कष्ट भोगना पड़ेगा। उसने मन में विचार किया क्यों न ये अमर फल मैं राजा को दे दूँ। ब्राह्मण ने अमर फल का वृत्तान्त राजा को सुनाया और वह फल राजा के हाथ में रख दिया, राजा भर्तृहरि ने प्रसन्नता

पूर्वक उस ब्राह्मण को कई लाख स्वर्ण मुद्राएँ भेंट स्वरूप दी। राजा अपनी रानी पिंगला से बहुत प्रेम करते थे अतः उन्होंने वह फल स्वयं न खाकर अपनी प्राणप्रिया रानी पिंगला को दे दिया। राजा भर्तृहरि ने रानी से कहा कि इस फल को खाने के बाद तुम्हारा सौन्दर्य चिरकाल तक बना रहेगा, उसने वह फल महाराज से लेते हुए कहा यदि आप चाहते हैं कि मैं इस फल को खाऊँ तो मैं इसफल को स्नान के पश्चात् खाऊँगी। राजा भर्तृहरि रानी की बात पर विश्वास करके सभा में लौट आये। एक जनश्रुति है कि रानी अपने राज्य के दरोगा से गुप्त प्रेम करती थी, अमर फल मिलने पर प्रेम के वशीभूत होकर रानी ने उस फल को स्वयं न खाकर अपने प्रेमी दरोगा को दे दिया। दरोगा बोला- प्रियतमे मैं इसे खा लूँगा। वह दरोगा भी रानी से सच्चा प्रेम नहीं करता था, वह उसी नगर की वेश्या से प्रेम करता था अतः वह फल उसने अपनी प्रेमिका वेश्या को दे दिया। दरोगा ने कहा- प्राणप्रिये इस फल को खाने से कभी मृत्यु को प्राप्त नहीं होता और उसका रूप यौवन भी चिर स्थायी रहता है। अतः मैं चाहता हूँ कि तुम इस अमर फल को खाओ। जिससे तुम सदा रूप लावण्या बनी रहोगी। वेश्या दरोगा से बोली स्नान के पश्चात् मैं इस फल को खा लूँगी। अमर फल को प्राप्त करने के बाद वेश्या ने अपने मन में विचार किया- कि इस फल को खाकर यदि मैं अमर हो जाऊँगी तो मेरी सारी आयु तो पाप कमाते बीत जायेगी। मुझे न जाने कितने पापों व कुकर्मों में अपना जीवन बिताना पड़ेगा। और कब तक इन पापों को इकट्ठा करती रहूँगी। वह वेश्या मन ही मन राजा भर्तृहरि से अटूट प्रेम करती थी , उसने सोचा क्यों न मैं इस फल को राजा भर्तृहरि को दे दूँ, जिससे राजा भर्तृहरि चिरकाल तक जीवित रहकर प्रजा को सुखी रख सकें। महाराजा भर्तृहरि की सभा में एक अनुपम सुन्दरी, मनमोहिनी, रूप-लावण्या और वेष-कीमती परिधान से सुसज्जित नवयुवती वेश्या अपने हाथों में विचित्र फल लिए महाराज को देते हुए कहती है- महाराज यह अमर फल है इसे खाने वाला सदा अमर रहता है। फल को वेश्या के हाथों में देखकर राजा भर्तृहरि के होश उड़ गये। राजा किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये। राजा ने उसी क्षण वह फल वेश्या के हाथों से ले लिया और उसी क्षण उसे खा लिया। भर्तृहरि ने जब रहस्य का पता लगाया तो उन्हें पिंगला के विश्वासघात पर बड़ी आत्मग्लानि हुई, रानी के कपटपूर्ण व्यवहार पर घृणा उत्पन्न हो गई। उन्होंने रानी की बड़ी भर्त्सना की। अब उन्हें इस संसार से विरक्ति हो गई। उन्होंने समझ लिया कि इस संसार में कोई किसी का नहीं होता यह संसार मिथ्या है। राजा चाहते तो सबको दण्डित कर सकते थे लेकिन उन्होंने सबको क्षमा कर दिया। राजा ने सोचा कि विषय वासनाओं में फँसकर लोग अपना बहुमूल्य कीमती जीवन गंवा देते हैं उन्होंने अत्यन्त(दुःखी) होकर अपने मन में सोचा-

यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता,
साऽप्यन्यमिच्छति जनं स जनोऽन्यसक्तः।
अस्मत्कृते च परिशुष्यति काचिदन्या

धिक् तां च तं च मदनं च इमां च मां च ।।

अर्थात् जिसके लिए मैं निरन्तर चिन्तन (सोचता) रहता हूँ, वह मेरे प्रति विरक्त है, वह अन्य पुरूष की इच्छा करती है, वह पुरूष अन्य स्त्री पर आसक्त है, वह अन्य स्त्री मुझ पर आसक्त है। अर्थात् ऐसी उस रानी को, रानी के प्रेमी दरोगा पर, वेश्या पर और मुझ पर धिक्कार है और इन सबसे बढ़कर उस कामदेव को धिक्कार है जो सारे कर्म कराता है। राजा भर्तृहरि इस घटना के

बाद बड़े दुःखी हुए और राजभवन त्यागकर वैरागी बन बैठे। उन्होंने अपने मंत्रियों से कहा कि मैंने उस कुटिला रानी के कहने पर अपने सत्यवादी भाई विक्रमादित्य के साथ बड़ा अन्याय किया है। आप लोग विक्रमादित्य की खोज कर उसे राजगद्दी पर आरूढ़ कर देना। भर्तृहरि ने तीन शतकों का निर्माण किया। ये शतक अनन्त काल तक समाज को प्रेरणा देते रहेंगे, योगी गोरखनाथ से उन्होंने योग साधना प्राप्त की अंत में ई0 615 में इनकी मृत्यु हो गयी।

बोध प्रश्न

1-नीचे जो वाक्य दिये गये हैं उनमें से तथ्य की दृष्टि से कुछ सही हैं और कुछ गलत हैं। सही वाक्यों के सामने कोष्ठक में सही तथा गलत वाक्यों के सामने गलत का चिह्न लगाइये-

(क) भर्तृहरि का समय सातवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना जा सकता है ( )
(ख) राजा भर्तृहरि मालवा प्रदेश के निवासी थे। ( )
(ग) भर्तृहरि जाति के ब्राह्मण थे। ( )
(घ) राजसत्ता पाकर भर्तृहरि विषयासक्त हो गये। ( )
(ङ) रानी पिंगला पतिव्रता नारी थी। ( )

2-निम्न प्रश्नों के उत्तर लिखिए-

(1) भर्तृहरि के अनुज कौन थे?

(क) चन्द्रगुप्त (ग) विक्रमादित्य
(ख) अमरूक कवि (घ) गन्धर्वसेन

(2) भर्तृहरि की रानी का नाम क्या था?

(क) सौम्या (ग) पिंगला
(ख) शकुन्तला (घ) पद्माक्षी

(3) आयुवर्द्धक अमर फल राजा भर्तृहरि को किसने दिया था?

(क) महात्मा (ग) राजा
(ख) संन्यासी (घ) ब्राह्मण

(4) महाराजा भर्तृहरि ने वह अमर फल किसे दिया?

(क) वेश्या (ग) दरोगा (ख) रानी (घ) मंत्री

2.6 भर्तृहरि की कृतियां

भारतीय संस्कृत साहित्य में ऐसी अद्वितीय रचनाओं का भण्डार है, जो सम्पूर्ण समाज का मार्गदर्शन करती हैं। चाहे वह प्राचीन कालीन साहित्य हो या आधुनिक काल का साहित्य। संस्कृत साहित्य के इतिहास में महाराजा भर्तृहरि एक नीतिकार के रूप में प्रसिद्ध हुए, भर्तृहरि की कृतियों का विवेचन करने पर यह ज्ञात होता है कि इन्होंने भर्तृहरि शतक नामक एक मौलिक कृति की रचना की, जिसमें तीन शतक हैं- नीति शतक, श्रृंगार शतक तथा वैराग्य शतक, इन तीनों शतकों की उपदेशात्मक कहानियाँ लोगों को विशेष रूप से प्रभावित करती हैं। प्रत्येक शतक में सौ-सौ श्लोक लिखे गये थे, धीरे-धीरे कवियों ने इनकी संख्या में वृद्धि कर दी, इनके तीनों शतक विभिन्न वृत्तों में लिखे गये हैं। वाक्यपदीय का रचयिता भी भर्तृहरि को माना जाता

है, यह तीन खण्डों में विभक्त है । पतंजलि के महाभाष्य के कुछ अंशों पर भर्तृहरि द्वारा टीका लिखने का संकेत मिलता है । भर्तृहरि की कृतियों का हम अगले पृष्ठों पर वर्णन करेंगे ।

2.6.1 नीति शतक

नीति शतक के प्रत्येक श्लोक में कवि भर्तृहरि ने नैतिकता का उल्लेख किया है। कविता के माध्यम से भर्तृहरि ने अपने जीवन के अनुभवों को नीति शतक में चित्रित किया है, इसमें नीति से सम्बन्धित श्लोकों का संग्रह है। यह व्यावहारिक उपदेशों का भंडार है, इसमें वर्णित पद्य तो इतने मार्मिक हैं कि वे तत्क्षण अध्येताओं के हृदय में उतरकर कल्याण के मार्ग पर चलने की प्रेरणा देते हैं । विद्वत प्रशंसा, अर्थ पद्धति, सुजन पद्धति, दुर्जन पद्धति, परोपकार पद्धति आदि। वास्तव इस शतक में वीरता, विद्या,दया, उदारता, परोपकार, और साहस जैसे मानवीय मूल्यों को अपना विषय बनाया गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि भर्तृहरि ने पूरे मानव समाज के लिए नीतिगत बातों को श्लोकों के माध्यम से प्रस्तुत किया।

2.6.2 श्रृंगार शतक

श्रृंगार शतक में भर्तृहरि ने बड़ा ही उल्लास पूर्ण वर्णन किया है। श्रृंगार से ओत-प्रोतश्रृंगार शतक भर्तृहरि के यौवन उल्लास की अभिव्यक्ति है, इसके श्लोकों में काम के विभिन्न प्रसंगों को दर्शाया गया है। कवि ने कामिनियों के सौन्दर्य व कटाक्ष नेत्रों के द्वारा आकृष्ट करने वाले हाव-भावों का चित्रण किया है। प्रेम से प्रभावित कामी स्त्री व पुरूष के चित्त का वर्णन भर्तृहरि ने सुन्दर प्रकार से किया है-

अदर्शने दर्शनमात्रकामादृष्ट्वा परिष्वङ्गरसैकलोलाः।
आलिङ्गतायां पुनरायताक्ष्या आशास्महेविग्रहयोरभेदम् ।।

जब तक प्रेमी अपनी प्रियतमा को देख नही लेता उसे देखने की इच्छा बनी रहती है प्रियतमा का आलिंगन कर लेने के बाद ये इच्छा होती है कि दोनों इसी तरह रहें, हममें कोई विलगाव अर्थात् हम अलग न हों । इसी तरह भर्तृहरि ने युवक-युवतियों की प्रणयक्रीड़ा , स्त्रियों की मन्द-मन्द मुस्कान, भौंहों के फेरने की चतुराई से पूर्ण आंखों का मारना आदि श्रृंगारिक चेष्टाओं का हृदयस्पर्शी वर्णन है।

2.6..3 वैराग्य शतक

वैराग्य शतक में कवि भर्तृहरि का सर्वस्व प्रतीत होता है । यौवन -काल में उन्होंने सभी प्रकार के भोग पदार्थों का सेवन किया । उनका प्रारम्भिक जीवन विषय वासनाओं से ग्रस्त था । अपनी प्रिय रानी के कुकर्म से इन्हें ऐसी घृणा हुई जो कि इन्होंने राजपाट त्याग कर वैराग्य धारण किया । राजा भर्तृहरि ने अपने जीवन के सच्चे अनुभवों को श्लोकों में बॉ ध दिया । वैराग्य शतक को सर्वोत्तम कृति मानने में कोई संशय नहीं है, इसमें सांसारिक सुख भोगों का व मानवीय जीवन के दुःखमयता का बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया गया । वैराग्य के द्वारा ही परम सुख की प्राप्ति होती है । इस चराचर जीवन में मनुष्य को कहॉ से सुख मिल सकता है, वैराग्य शतक के इस श्लोक में कवि भर्तृहरि ने संसार की असारता और वैराग्य के महत्त्व को बताते हुए कहा है-

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्तास्तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः।
कालो न यातो वयमेव याता स्तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः।।

इस संसार में आकर हम भ्रम में थे कि जी भर के भोगों को भोगें लेकिन भोगों ने ही हमें भोग लिया, हम तप नहीं सके पर तप ने ही हमें तपा लिया, काल व्यतीत न हुआ किन्तु हम ही व्यतीत हो गये, हमारी तृष्णा दिनों दिन बढ़ती गई किन्तु हम ही समाप्त हो गये। इस प्रकार भर्तृहरि ने संतोष को परम धन व वैराग्य को इसका साधन माना है।

2.6.4 वाक्यपदीय

वाक्यपदीय के रचयिता भी महाकवि भर्तृहरि माने जाते हैं, वाक्यपदीय भी तीन खण्डों में विभक्त है। इसके तीनों काण्ड वैयाकरण के लिए आदर्श हैं भर्तृहरि की कृतिवाक्यपदीय में व्याकरण दर्शन के सिद्धान्तों का पद्यों में मार्मिक विवेचन किया है।

बोध प्रश्न

3- रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये

(क) भर्तृहरि के -----शतक हैं।

(ख) भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता' यह श्लोक-----से लिया गया है।

(ग) वैराग्य शतक भर्तृहरि की-----कृति है।

(घ) नीति शतक व्यावहारिक-----का भंडार है।

4- नीचे जो वाक्य दिये गये हैं उनमें से तथातथ्य की दृष्टि से कुछ सही हैं और कुछ गलत हैं सही वाक्यों के सामने कोष्ठक में सही का चिह्न लगाइये-गलत वाक्यों के सामने गलत का चिह्न लगाएं।

(क) श्रृंगार शतक के रचयिता विष्णुशर्मा हैं। ( )

(ख) नीति शतक भर्तृहरि की रचना है। ( )

(ग) भर्तृहरि को त्रय शतकों का निर्माता नहीं माना जाता है। ( )

(घ) संस्कृत साहित्य के इतिहास में महाराजा भर्तृहरि एक नीतिकार के रूप में प्रसिद्ध हुए। ( )

2.7 भर्तृहरि का नीति साहित्य को योगदान

संस्कृत नीति साहित्य अत्यन्त विशाल एवं समृद्ध है। संस्कृत के धार्मिक ग्रंथों में नीति सम्बन्धी अनेक उपयोगी बातें बतायी गयी है, इनमें महाराजा भर्तृहरि का नीति शतक भी एक अद्वितीय ग्रंथ है। भर्तृहरि ने नीति सम्बन्धी अनेक बातों को बड़े ही प्रभावपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया है, नीति, श्रृंगार एवं वैराग्य शतकों के प्रणेता भर्तृहरि का रससिद्ध कवियों में अन्यतम स्थान है, ये कवि के रूप में प्रतिष्ठित होने के साथ ही साथ व्याकरण शास्त्र के भी अप्रतिम ज्ञाता थे। इन्होंने अपने नीति परक उपदेशों के माध्यम से मानव जाति को लाभान्वित किया, इनके नीति सम्बन्धी उपदेश अनन्त काल तक मानव जाति को प्रेरणा देते रहेंगे, इस कारण यही नीति साहित्य को इनका सबसे बड़ा योगदान है। भर्तृहरि की नीति जन-जन को बढ़ावा देकर सही दिशा निर्देशित करती है और हर किसी के जीवन को सफल बनाती है। इसमें विद्या, वीरता, उदारता, दया, परोपकार, साहस, कृतज्ञता जैसे उदात्त मानवीय मूल्यों को विषय बनाया गया है। भर्तृहरि के श्लोकों में प्रतिपादित नीति सिद्धान्त बिना किसी भेदभाव के समग्र विश्व की मानव जाति के लिए

कल्याणकारी हैं। भर्तृहरि ने अपने नीति शतक में कुछ विशेष नैतिक सिद्धान्तों की शिक्षा दी है, जिसका वर्णन हम विस्तार से करेंगे-

1- महाराजा भर्तृहरि ने अपने नीति में कर्म महत्त्व की कहीं भी उपेक्षा नहीं की है। उन्होंने कर्म से विरत रहने का समर्थ भी नहीं किया, इसके विपरीत उन्होंने कर्म के महत्त्व को जानते हुए कर्म करने की प्रेरणा देते हुए कहा है-

प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः
प्रारभ्य विघ्नविहता विरमन्ति मध्याः।
विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः
प्रारब्धमुत्तमजना न परित्यजन्ति।

कहने का तात्पर्य यह है कि नीच पुरूष विघ्न के भय से किसी कार्य को आरम्भ ही नहीं करते, मध्यम श्रेणी के लोग कार्य को आरम्भ करने के पश्चात् विघ्नों के डर से कार्य को बीच में ही छोड़ देते हैं, परन्तु जो उत्तम कोटि के मनुष्य हैं वो बार-बार विघ्नों के आने पर भी विचलित नहीं होते उस कार्य को पूर्ण किये बिना नहीं छोड़ते। इस श्लोक के द्वारा भर्तृहरि ने निरन्तर कर्मरत रहने की प्रेरणा दी है तथा मनुष्य को सफलता तक पहुँचाने के लिए प्रोत्साहित किया है-

2- जाड्यं धियो हरति सिंचति वाचि सत्यं
मनोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति।
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्ति
सत्सङ्गति कथय किं न करोति पुंसाम्॥

सत्संगति अर्थात् अच्छी संगति बुद्धि की जड़ता को मिटाती है, उससे वाणी में सत्यता आती है, सत्संगति से मनुष्य की मान प्रतिष्ठा में वृद्धि होती है, उससे पाप नष्ट हो जाते हैं, चित्त सदैव प्रसन्न रहता है, और उसकी कीर्ति सभी दिशाओं में फैलाती है। अतः सत्संगति में वे सभी गुण हैं जिनकी मनुष्य को आवश्यकता होती है। प्रस्तुत श्लोक में भर्तृहरि ने सत्संगति की महत्ता को बड़े ही प्रभावपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया।

3- भर्तृहरि ने अपने नीति शतक के माध्यम से बताया है कि उसी व्यक्ति का जीवन सार्थक है जिससे उसके वंश की उन्नति होती है-

परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते।

स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम्॥

इस नश्वर संसार में जन्म-मरण का चक्र निरन्तर चलता ही रहता है। कहने का तात्पर्य यह है कि मरना और फिर पुनः उत्पन्न होना इस संसार का शाश्वत सच है परजन्म लेना उसी का सार्थक होता है जिसके जन्म लेने से वंश की उन्नति होती है। प्रस्तुत श्लोक के द्वारा भर्तृहरि ने बताया है कि विचारशील सम्पन्न मनुष्य ही ऐसा करता है, और अपने जीवन में सफलता प्राप्त करता है।

4- परोपकार मानव जीवन का गुण ही नहीं अपितु अलंकार भी है, मनुष्य में परोपकार की भावना स्वभावगत होती है, भर्तृहरि ने कहा कि केवल मनुष्य में ही अचेतनों में भी परोपकार की

भावना होती है। अपने श्लोक के द्वारा उन्होंने कितना सार्थक वर्णन किया है-

भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमैर्नवाम्बुभिर्दूरविलम्बिनो घनाः।
अनुद्धताः सत्पुरूषा समृद्धिभिः स्वभाव एवैष परोपकारिणाम्।

जिस प्रकार फलों से लदे वृक्ष नम्र अर्थात् झुक जाते हैं, वर्षा से भरे बादल नीचे झुक जाते हैं, इसी प्रकार सत्पुरूष धन सम्पन्न होने पर भी अपनी उदारता को नहीं छोड़ते क्योंकि परोपकारी लोगों का स्वभाव ही ऐसा है अर्थात् परोपकारी पुरूष अभिमान से रहित होते हैं अभिमान से रहित पुरूष का नम्र होना स्वाभाविक ही है। भर्तृहरि की वृक्षों और मेघों के माध्यम से अचेतनों में भी परोपकार की भावना कितनी स्वाभाविक जान पड़ती है।

5- सच्चे मित्र के विषय में बताते हुए कवि भर्तृहरि ने कहा-

पापान्निवारयति योजयते हिताय
गुह्यं च गूहति गुणान् प्रकटीकरोति।
आपद्गतं च न जहाति ददाति काले
सन्मित्रलक्षणमिदं प्रवदन्ति सन्तः।।

कहने का तात्पर्य यह है कि मित्र वही है जो पाप कर्म करने से रोकता है, भलाई की ओर प्रवृत्त करता है, गुप्त बातों को रहस्य की भाँति छिपाता है और मित्र के गुणों को प्रकट करता है, विपत्ति आने पर उसका साथ देता है छोड़ता नहीं है कहा जाय तो सच्चे अर्थों में वही सच्चा मित्र है। भर्तृहरि ने इस श्लोक के द्वारा समाज को यह प्रेरणा दी है कि सच्चा मित्र वही है जो सर्वस्व निछावर कर अपने मित्र का साथ देता है।

6- भर्तृहरि ने कहा कि धैर्यवान लोग अपने उद्देश्य को पूर्ण किये बिना कभी नहीं रहते , चाहे उनकी निन्दा हो या स्तुति। अपने श्लोक के माध्यम से कवि का उद्देश्य यहाँ पर केवल धैर्यवान लोगों के विषय में अवगत कराना है-

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणवस्तु युगान्तरे वा
न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः।।

नीति से निपुण निन्दा करें या प्रशंसा, लक्ष्मी इच्छानुसार आये या चली जाय, आज ही उनकी मृत्यु हो या युग के बाद , धीर पुरूष अपने मार्ग से विचलित नहीं होते हैं, आज ही उनकी मृत्यु हो या युग के बाद, धीर पुरूष अपने मार्ग से विचलित नहीं होते हैं, उनकी निन्दा हो या प्रशंसा उन्हें कोई प्रयोजन नहीं, वे हर अवस्था चाहे सुख हो या दुःख अपने को सन्तुलित बनाये रखते हैं , इस प्रकार हम देखते हैं कि भर्तृहरि ने अपने युग में सम्पूर्ण समाज, देश ही नहीं बल्कि पूरी मानव जाति के लिए नीतिगत बातों को बहुत ही सरल और रोचक श्लोकों में लिखा है।

7- भर्तृहरि ने केवल समाज या साधारण मनुष्य को ही नहीं बल्कि राजा व प्रजा दोनों को समान रूप से देखा, प्रजा के लिए राजा के क्या कर्तव्य हैं इसका वर्णन भर्तृहरि ने श्लोक के द्वारा कितना सहज रूप में किया है-

राजन्! दुधुक्षसि यदि क्षितिधेनुमेतां
तेनाद्य वत्समिव लोकममुं पुषाण।

तस्मिश्च सम्यगनिशं परिपोष्यमाणे
नानाफलैः फलति कल्पलतेव भूमिः ।।

हे राजन् ! यदि तुम पृथ्वीरूपी गाय को दुहना चाहते हैं तो आप प्रजा जनों का बछड़े की भाँति पालन करें, क्योंकि प्रजा का हमेशा अच्छी तरह से पालन करने से यह पृथ्वी कल्पलता की भाँति विविध फलों को प्रदान करती है, अर्थात् अच्छी तरह प्रजा पालन करने से ही राजा को सवार्थ सिद्धि प्राप्त होती है आज के युग में लोग स्वार्थी हो गये हैं। नीति शतक में ही एक स्थान पर इन्होंने कहा कि मनुष्य को चाहे वह किसी भी स्थल पर धन अर्जित करने चला जाय तब भी उसे उतना ही प्राप्त होता है जितना उसकी नियति में रहता है, अतः इन पक्षों में भर्तृहरि भाग्यवादी प्रतीत होते हैं, इनकी दार्शनिक वर्ण्य विधा भी अन्य कवियों की भाँति श्रेष्ठतम है प्रस्तुत तथ्य इसका ज्वलन्त उदाहरण है-मृग, मीन और सज्जन। तृण, जल, तथा संतोष से जीवन निर्वाह करते हैं किन्तु समाज में इन्हीं तीनों के कारण बैरी मनुष्य हो जाते हैं- बहेलिया मृग के लिए, मछुवारा मीन के लिए और पिशुन (चुगलखोर) सज्जनों के लिए जगत में अकारण बैरी होते हैं। इसके अतिरिक्त अपनी वर्णन कला से भर्तृहरि ने विभिन्न सामाजिक गतिविधियों में अन्तर स्थापित कर नीति शतक को उत्कृष्ट बनाते हुए मार्ग निर्देशित किया है। महान आत्माओं के आदर्श चरित्र का भी निरूपण किया गया है। जिसका अनुकरण करके मनुष्य अपने श्रेष्ठ पथ की ओर अग्रसर हो सकता है, महापुरूषों के स्वभाव में धैर्य, क्षमा, वाक्पटुता, पराक्रम,कीर्ति आदि गुण होते हैं। महायोगीश्वर भर्तृहरि ने जीवन में मूल्यों को विशिष्ट महत्त्व प्रदान किया है। उनका नीति शतक पूर्व में तो मानव समाज के लिए उपयोगी था ही आज के समाज व परिवेश के लिए भी यह उपयोगी है।आपने नीति शतक के द्वारा भर्तृहरि ने नीति साहित्य को जो योगदान अपने नीति सूक्तियों के द्वारा प्रदान किया वह अनन्त काल तक स्मरणीय रहेगा।

2.8 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान चुके हैं कि भर्तृहरि का स्थिति काल 700 ई0 पूर्व लगभग का होगा, क्योंकि विभिन्न मतों के आधार पर ही हम उनके स्थिति काल के बारे में जान सके। जैसा कि पिछले पृष्ठों में आप जान चुके हैं कि भर्तृहरि का जीवन विविधताओं से भरा है। उन्होंने अपने काव्य में समय की ही भाँति अपने जीवन के विषय में निर्देश नहीं दिया, जनश्रुतियों के आधार पर ही आप भर्तृहरि के जीवन से परिचित हुए, और साथ ही साथ दन्तकथाओं के आधार पर उनके जीवन से सम्बन्धित घटनाओं से परिचित हुए, इसके अतिरिक्त आपने भर्तृहरि की कृतियों का सूक्ष्म रूप में अध्ययन किया। संस्कृत साहित्य में भर्तृहरि एक नीतिकार के रूप में विख्यात हुए। साथ ही साथ आप यह भी जान सके कि भर्तृहरि ने नीति साहित्य को क्या योगदान दिया। भर्तृहरि के नीति परक उपदेश समस्त मानव जाति के लिए है इनके नीति गत उपदेश अनन्त काल तक मानव जाति को प्रेरणा देते रहेंगे। इस इकाई में आप भर्तृहरि के जीवन से परिचित हुए।

बोध प्रश्न

5- निम्न प्रश्नों के उत्तर लिखिए

(1) प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः श्लोक किस ग्रन्थ का है?

(क) नीति शतक (ग) अमरूक

(ख) वैराग्य शतक (घ) मेघदूत

(2) जाड्यं धियो हरति सिंचति में किसकी महत्ता बतलायी गई है?

(क) पण्डितों की (ग) सत्संगति की

(ख) मूर्खों की (घ) मित्रों की

(3) निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा---पदं न धीराः किस कवि की रचना है।

(क) कालिदास (ग) भर्तृहरि

(ख) शूद्रक (घ) माघ

(4) पापान्निवारयति योजयते हिताय---प्रविदन्ति सन्तः में किसका लक्षण बतलाया गया है।

(क) सच्चे मित्र का (ग) अज्ञानियों का

(ख) विद्वानों का (घ) पण्डितों का

6- रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजियेः-

(क) भर्तृहरि ने अपने नीति शतक में कुछ ----सिद्धान्तों की शिक्षा दी है।

(ख) सत्संगति बुद्धि की----को मिटाती है।

(ग) ---- मानव जीवन का गुण ही नहीं अपितु अलंकार भी है।

(घ) इस----संसार में जन्म-मरण कहा चक्र निरन्तर चलता ही रहता है।

2.9 शब्दावली

अक्षुण्ण - कभी न मिटने वाले

अग्रज - बड़ा भाई

दायित्व - भार

धाराशायी - घायल

रनिवास - रानियों के रहने का स्थान

दुश्:चरित्रा - बुरा चरित्र

पूर्णरूपेण - पूर्ण रूप से

विद्वता - अत्यधिक विद्वान

कुकर्म - बुरे कर्म

निष्कासित - निकाल देना

उद्भूत - उत्पन्न होना

2.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

1- (क) (ख) (ग) (घ) (ङ)

2- (1) गः- विक्रमादित्य

(2) गः- पिंगला

(3) घः- ब्राह्मण

(4) खः- रानी

3- (क) तीन

(ख) वैराग्य शतक

(ग) सर्वोत्तम

(घ) उपदेशें

4- (क) (ख) (ग) (घ)

5- (1) कः- नीति शतक (2) खः- मूर्खों की (3) गः- भर्तृहरि

(4) घः- सच्चे मित्र के

6- (क) नैतिक (ख जड़ता (ग) परोपकार (घ) नश्वर

2.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

(1) ज्वाला प्रसाद चतुर्वेदी - भर्तृहरि शतक रणधीर बुक सेल्स प्रकाशन182,एस0 एन0 नगर,हरिद्वार

(2) डॉ बाबूराम त्रिपाठी - श्री भर्तृहरि कृत- नीति शतकम् हालक्ष्मी प्रकाशशहीद भगतसिंह मार्गआगरा 282002

2.12 उपयोगी पुस्तकें

(1) डॉ0 चमनलाल गौतम- भर्तृहरि शतक-त्रयसंस्कृति संस्थान वेदनगरबरेली 01(उ0 प्र0)

(2) डॉ0 श्रीकृष्णपति त्रिपाठी- चौखम्बा सुरभारती प्रकाशनके, 37/117 गोपालमंदिर लेनपो0 बा0 नं01129,वाराणसी 221001

2.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1- भर्तृहरि के स्थिति काल को समझाइये।

2- दन्तकथाओं के आधार पर भर्तृहरि के जीवन से सम्बन्धित घटनाओं को समझाइये।

3- भर्तृहरि के नीतिसाहित्य में योगदान को लिखिए ।

इकाई 3: नीतिशतकम्-श्लोक संख्या1 से 20 तक व्याख्या

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 नीतिशतकम् - श्लोक संख्या 1 से 10 तक
मूल पाठ,अनुवाद,व्याख्या,व्याकरणिक टिप्पणी
3.4 नीतिशतकम् - श्लोक संख्या 11 से 20 तक
मूल पाठ,अनुवाद,व्याख्या,व्याकरणिक टिप्पणी
3.5 सारांश
3.6 शब्दावली
3.7 बोध प्रश्नों के उत्तर
3.8 संदर्भ ग्रंथ सूची
3.9 उपयोगी पुस्तकें
3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

नीति साहित्य से सम्बन्धित यह तीसरी इकाई है इससे पूर्व की इकाईयों के अध्ययन से आप बता सकते हैं कि नीति साहित्य की विभिन्न विधाओं का उद्भव एवं विकास किस प्रकार हुआ। इसमें मनुष्य के जीवन की प्रेरणादायी बातों का उल्लेख हुआ है और व्यावहारिक जीवन के महत्त्वपूर्ण पक्षों पर प्रकाश डालने वाले नीतिकार भर्तृहरि ने नीति साहित्य को क्या योगदान दिया।

नीति परक श्लोकों के महत्त्व को जानते हुए इस इकाई में आप जानेंगे कि सामाजिक मनुष्य के जीवन में विविध व्यावहारिक कठिनाईयों से उबरने हेतु श्लोकों के माध्यम से कौन से उपाय निर्दिष्ट हैं, मनुष्य की स्वाभाविक विशेषताएं मूर्ख-विद्वान और सज्जन-दुर्जन में भेद स्थापित कर नीति के माध्यम से सहज उपदेश दिये गये हैं, प्रस्तुत इकाई में इन्हीं तथ्यों पर विस्तार से विचार प्रस्तुत किये गये हैं।

इस इकाई के अध्ययन से आप नीतिपरक बातों को श्लोकों के माध्यम से समझाते हुए उनकी महत्ता को भी बता सकेंगे।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप भर्तृहरि रचित नीति शतक के अनेक महत्त्वपूर्ण एवं प्रेरणापद सुभाषितश्लोकों का अध्ययन करेंगे-

* बुद्धिमानों व मूखों स्वभाव का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
* विद्या के महत्त्व को समझ सकेंगे।
* विद्वानों के महत्त्व का वर्णन कर सकेंगे।
* अज्ञ, विशेषज्ञ और मूर्ख के स्वभाव से परिचित होंगे।
* क्षुद्र जीव के स्वभाव का वर्णन कर सकेंगे।
* सुसंस्कृत वाणी रूपी आभूषण के विषय में उल्लेख कर सकेंगे।
* विवेकहीन पुरूष के पतन के कारणों की व्याख्या कर सकेंगे।

नीति के अध्ययन हेतु नीतिशतकम् नामक ग्रन्थ सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एवं उपयोगी ग्रन्थ है इसके परिशीलन के बाद व्यावहारिक उपयोगिता अवश्य सिद्ध हो जाती है। प्रस्तुत इकाई में श्लोकों के अर्थ सहित व्याख्या दी गयी है।

3. 3 नीतिशतक श्लोक संख्या 1 से 10 तक

प्रस्तुत श्लोक में कवि ने मंगलाचरण के द्वारा अपने ईष्ट की वन्दना की है।

दिक्कालाद्यनवच्छिन्नानन्तचिन्मात्रमूर्तये।

स्वानुभूत्येकमानाय नमः शान्ताय तेजसे ।।1।

अन्वयः- दिक्कालाद्यनवच्छिन्नानन्तचिन्मात्रमूर्तये स्वानुभूत्येकमानाय नमः शान्ताय तेजसे नमः।

अनुवादः- जो दिशा काल आदि से अपरिमेय हैं ऐसे अविनाशी ज्ञान स्वरूप वाले केवल आत्मानुभूति ही जिनकी सत्ता का साक्षी है उस शान्तमूर्ति और तेजस (प्रकाश स्वरूप) परब्रह्म को नमस्कार है।

व्याख्याः- किसी भी काव्य को निर्विघ्नपूर्वक समाप्ति के लिए काव्य के प्रारम्भ में मंगलाचरण के द्वारा कवि अपने ईष्ट की वन्दना करता है. परम्परानुसार भर्तृहरि ने प्रस्तुत श्लोक में मंगलाचरण के माध्यम से परब्रह्म परमात्मा की वन्दना की है वह ब्रह्म देश काल आदि (दसों दिशाओं एवं भूत वर्तमान और भविष्य) से सदैव अपरिच्छिन्न है, अर्थात् किसी पदार्थ की सीमा में उसे आबद्ध नहीं किया जा सकता है इसमें आत्मस्वरूप शान्त एवं तेजस्वरूप निराकार ब्रह्म की प्रार्थना है।

प्रस्तुत श्लोक में बतलाया गया है कि सहृदय जनों के अभाव के कारण कवि को सुन्दर सूक्तियां कहने का अवसर ही नहीं मिलता है-

बोद्धारो मत्सरग्रस्ताः प्रभवः स्मयदूषिता।
अबोधोपहताश्चान्ये जीर्णमङ्गे सुभाषितम् ।।2।।

अन्वयः- बोद्धारः मत्सरग्रस्ताः प्रभवः स्मयदूषिता अन्ये च अबोधोपहताः सुभाषितम् अङ्गे जीर्णम्।

अनुवादः- बुद्धिमान राग द्वेष से ग्रसित होते हैं ऐश्वर्यवान (धनी) घमण्ड से चूर होते हैं अन्य लोग अज्ञान से पीड़ित होते हैं, इस कारण ज्ञान युक्त बहूमूल्य सूक्तियां मन ही मन में रह जाती है उनको कोई समझ नहीं पाता।

व्याख्या :- कवि के नीति सम्बन्धी उपदेश कोई भी व्यक्ति सुनना नहीं चाहते संसार में जो लोग ज्ञानी हैं वे परस्पर राग द्वेष से ग्रसित हैं अर्थात् वे ईर्ष्यावश उनको सुनना नहीं चाहते हैं बुद्धिमान होते हुए भी वे सहृदय नहीं है अतः वे नीति सम्बन्धी सूक्तियों को भी सुनना नहीं चाहते हैं। राजा आदि ऐश्वर्यशाली भी सूक्तियों को सुनना नहीं चाहते क्योंकि वे घमंड से चूर हैं उन्हें प्रिय वचन भी अच्छे नहीं लगते इसके अतिरिक्त जो लोग हैं वे भी नीति सम्बन्धी वचनों को सुनना नहीं चाहते क्योंकि वे अज्ञानी अर्थात् अज्ञान से पीड़ित है। वे तो यह भी नहीं जानते कि किसी नीति सम्बन्धी उपदेश से क्या लाभ हो सकता है यही कारण है कि ज्ञान युक्त सूक्तियां मन ही मन में रह जाती हैं उसे बाहर निकलने का अवसर प्राप्त नहीं होता है।

व्याकरणिक टिप्पणीः- अबोधोपहताश्चान्ये – अबोधउपहता च अन्ये जीर्णमङ्गे –

जीर्णम् अङ्गे यहाँ भी अनुष्टुप छन्द है।

इसमें मूर्ख जन के स्वरूप को बतलाया गया है-

अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः।
ज्ञानलवदुर्विदग्धं ब्रह्मापि तं नरं न र´जयति ।।3।।

अन्वय:- अज्ञः सुखम् आराध्यः विशेषज्ञ सुखतरम् आराध्यते, ज्ञानलवदुर्विदग्धं तं नरं ब्रह्मापि न र´जयति।

अनुवाद- अज्ञ को सरलता से प्रसन्न किया जा सकता है विद्वान (ज्ञानी) को इशारे मात्र से समझाया जा सकता है अल्पज्ञान से जो स्वयं को श्रेष्ठ ज्ञानी समझ बैठा है उस व्यक्ति को ब्रह्मा भी सन्तुष्ट नहीं कर सकते हैं।

व्याख्या:- इस संसार में तीन प्रकार के मनुष्य होते हैं अज्ञ विद्वान और मूर्ख। इसमें अज्ञ अर्थात् बिल्कुल मूर्ख हैं जो कुछ भी नहीं जानते , विद्वान अर्थात् जो विशिष्ट ज्ञान रखते हैं, तथा मूर्ख वे हैं जो थोड़े से ज्ञान से अपने को सर्वज्ञ मानते हैं। इसमें से अज्ञ व्यक्ति को बड़ी आसानी से नीति सूक्तियॉ को समझाया जा सकता है, विद्वान को और भी अधिक आसानी से समझाया जा सकता है। परन्तु जो न तो समझदार है और न ना समझ ऐसे मनुष्य को परमपिता ब्रह्मा भी समझा नहीं सकते मनुष्य की तो क्या कहें।

व्याकरणिक टिप्पणी:- सुखमाराध्यः – सुखम् आराध्यः, ब्रह्मापि – ब्रह्म अपि , सुखतरमाराध्यते – सुखतरम् आराध्यते इस श्लोक में आर्या नामक छन्द है।
प्रस्तुत श्लोक में कवि मूर्ख व्यक्ति के चित्त की दुराराध्यता का वर्णन करता हुआ कहता है-

प्रसह्य मणिमुद्धरेन्मकरवक्त्र दंष्ट्रान्तरात्,
समुद्रमपि सन्तरेत् प्रचलदूर्मिमाला कुलम्।
भुजङ्गमपि कोपितं शिरसि पुष्पवद् धारयेत्,
न तु प्रतिनिविष्टमूर्खजन चित्तमाराधयेत् ।।4।।

अन्वय:- मकर वक्त्र दंष्ट्र अन्तरात् मणिं प्रसह्य उद्धरेत्, प्रचलत् उर्मि माला कुलं समुद्रम् अपि सन्तरेत। कोपितं भुजङ्गमपि शिरसि पुष्पवद् धारयेत्, प्रतिनिविष्ट मूर्खजन चित्तम् न आराधयेत्।

अनुवाद:- यह सम्भव है कि भले ही मनुष्य मगरमच्छ के मुँह के दाढ़ों के बीच से मणि को साहस पूर्वक निकाल ले, तीव्र लहरों से युक्त समुद्र को पार कर ले, क्रुद्ध सर्पराज को भी सिर पर पुष्प के समान धारण कर ले, किन्तु बुरी संगति में फँसे दुराग्रही मूर्ख व्यक्ति के मन को सदुणों की ओर लाना असम्भव है।

व्याख्या:- मगरमच्छ की दाढ़ों के बीच से साहस करके मणि निकाल लाना मनुष्य के लिए अति दुष्कर है, कहने का तात्पर्य है कि असम्भव है यदि कोई साहस करके ऐसा करे तो उसे सफलता भी मिल सकती है। चंचल तीव्र लहरों से युक्त समुद्र को अपनी भुजाओं से तैरकर पार करना असम्भव कार्य है यदि कोई साहस करे तो यह कार्य भी कर सकता है। इसी प्रकार क्रोधित

भयानक सर्पराज को फूलों की माला की तरह सिर पर धारण कर सकता यद्यपि यह कार्य अति दुष्कर है। यदि कोई इतना साहसी हो जो शिव के समान सिर पर धारण कर सकता है। कहने का तात्पर्य केवल इतना है कि मनुष्य चाहे तो साहस करके इन कामों में समर्थ हो जाय किन्तु दुराग्रही मूर्ख के मन को वश में करना असम्भव है। पर मूर्ख का मन जिस वस्तु पर जम जाता है उससे उसको हटाना सम्भव नहीं है।

व्याकरणिक टिप्पणी :-समुद्रमपि = समुद्रम् अपि भुजङ्गमअपि = भुजङ्गम् अपिमूर्खजनचित्तमाराधयेत्= मूर्खजनचित्तम् आराध्येत्। प्रस्तुत श्लोक में पृथ्वीनामक छन्द तथा असम्बन्ध रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

मनुष्य चाहे तो अत्यन्त दुर्लभ वस्तु को प्राप्त कर सकता है। पर दुराग्रही मूर्ख को वश में करना अत्यन्त कठिन है। इसी का वर्णन किया है-

लभेत सिकतासु तैलमपि यत्नतः पीडयन्

पिबेच्च मृगतृष्णिकासु सलिलं पिपासार्दितः।

कदाचिदपि पर्यट´छशविषाणमासादयेत्,

न तु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तमाराधयेत्।।5।।

अन्वयः- यत्नतः पीडयन् सिकतासु अपि तैलं लभेत् च पिपासार्दितः मृगतृष्णिकासु सलिलं पिबेत्, पर्यटन् कदाचित् शशविषाणम् असादयेत, तु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तं न आराधयेत्।

अनुवादः- यदि प्रयत्न किया जाय तो बालू को पेरने से तेल प्राप्त हो जाए और प्यास से व्याकुल मृगतृष्णा से भी पानी पी ले, घूमते-फिरते कभी खरगोश के सींग भी प्राप्त हो जाए, किन्तु दुराग्रही मूर्ख के चित्त को वश में करना असम्भव है।

व्याख्याः-मनुष्य के अत्यधिक प्रयत्न करने पर बालू से तेल निकालना, मृगतृष्णा या मरूस्थल में प्यास बुझाना, खरगोश के सींग प्राप्त करना असम्भव कार्य हो सकते हैं। अर्थात यदि प्रयत्न से इन कामों में उसे सफलता मिल जाए किन्तु मूर्खों के चित्त को सही मार्ग पर लाना कठिन है। कहने का तात्पर्य यह है कि इस संसार में प्रयत्न करने से असम्भव कार्य भी कभी-कभी संभव हो सकता है, किन्तु मूर्ख हठी को मनाना सर्वथा असम्भव है, जिस वस्तु पर डट जाता है उससे वह कभी हटता नहीं।

व्याकरणिक टिप्पणीः- तैलमपि = तैलम् अपि , पिबेच्च = पिबेत् च , कदाचिदपि= कदाचित् अपि। यहाँ भी पृथ्वी नामक छन्द व असम्बन्ध में सम्बन्ध लक्षणा अतिशयोक्ति अलंकार है।

दुर्जनों को सन्मार्ग की ओर प्रेरित करने वाला व्यक्ति भी अविवेकी ही होता है इसी का वर्णन कवि ने किया है-

व्यालं बालमृणालतन्तुभिरसौ रोद्धुं समुज्जृम्भयते,

छेत्तुं वज्रमणिं शिरीषकुसुमप्रान्तेन सन्नह्यति ।

माधुर्यं मधुबिन्दुना रचयितुं क्षाराम्बुधेरीहते,

नेतुं वां´छति यः रवलान्पथि सतां सूक्तैः सुधास्यन्दिभिः ।।6।।

अन्वयः- असौ बालमृणालतन्तुभिः व्यालं रोद्धुं समुज्जृभ्यते, शिरीष कुसुम प्रान्तेन वज्रमणिं रोद्धुं सन्नह्यते, क्षाराम्बुधे मधुबिन्दुना माधुर्यं रचयितुम् ईहते यः खलान् सुधास्यन्दिभिः सूक्तैः सतां पथि नेतुं वा´छति ।

अनुवादः- वह पुरूष कोमल कमल नाल के रेशों से हाथी/गजराज को बाँधने का प्रयत्न करता है शिरीष फूल की कोमल पंखुड़ी से हीरे को बेधने का प्रयत्न करता है खारे समुद्र में शहद की एक बूँद से मिठास घोलने की इच्छा करता है जो दुष्टों को अपने अमृतमय सूक्तियों से सन्मार्ग पर लाने की इच्छा करता है।

व्याख्याः- जो व्यक्ति अत्यधिक कोमल कमल नाल के तन्तुओं से हाथी जैसे विशाल जानवर को बाँधना चाहता है जो कि रस्सियों से भी बांधा नहीं जा सकता, शिरीष के सुकोमल पंखुड़ी से अत्यधिक कठोर हीरे को छेदना चाहता है जो बड़े-बड़े घनों की चोट से भी तोड़ा नहीं जा सकता एवं जो विशाल खारे समुद्र एकमात्र शहद की बूँद से मिठास घोलने की इच्छा करता है जो कि अतिमधुर पदार्थों से भी मीठा नहीं बनाया जा सकता है । वह व्यक्ति अपनी अमृत भरी सूक्तियों से मूर्ख को सही मार्ग पर लाने की इच्छा करता है, फिर भी जो ऐसा प्रयास करता है वह मूढ़जन से भी अतिमूढ़ है । अतः ऐसा प्रयास करने से कोई लाभ नहीं है ।

व्याकरणिक टिप्पणी:- समुज्जृम्भते= सम् उत् जृम्भते , क्षीराम्बुधेरीहते= क्षीर: अम्बुधेःईहते प्रस्तुत श्लोक में निदर्शना अलंकार व शार्दूलविक्रीडित छन्द है ।

मूर्खों की अज्ञानता को छिपाने का केवल एकमात्र उपाय बताते हुए गहा गया है-

स्वायत्तमेकान्तगुणं विधात्रा विनिर्मितं छादनमज्ञतायाः।
विशेषतः सर्वविदां समाजे विभूषणं मौनमपण्डितानाम्।।7।।

अन्वय:- विधाता अज्ञतायाः छादनम् एकान्त हितं विनिर्मितं स्वायत्तं विशेषतः सर्वविदां समाजे अपण्डितानां मौनं विभूषणम्।

अनुवादः- विधाता (ब्रह्मा) ने अज्ञानता को आच्छादित करने का केवल एकमात्र गोपनीय कल्याणकारी उपाय बनाया है मौन रहना । विशेष रूप से सर्वज्ञ विद्वानों की सभा में मूर्खों के लिए मौन रहना उनका आभूषण बन जाता है ।

व्याख्या:- मौन रहना एक महान गुण है, मूर्खता अर्थात् अज्ञानता को छिपाने का एकमात्र उपाय चुप रहना है जिस कार्य के लिए किसी की आवश्यकता नहीं पड़ती जो सदा हितकारी तथा कल्याणकारी साधन है बुद्धिमानों की सभा में मूर्खों के लिए मौन रहना उनकी शोभा बन

जाती है अर्थात् समस्त जनसमूह समझते हैं कि यह प्रकाण्ड विद्वान होने के कारण चुप है। जब तक मनुष्य बोलता नहीं तब तक उसकी मूर्खता छिपी रहती है जिस प्रकार कोयल और कौए की पहचान हम उनके रंग से नहीं कर पाते हैं लेकिन बोलते ही भेद खुल जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि मौनावलम्बन से मूर्खों को ही लाभ होता है।

व्याकरणिकटिप्पणी:-स्वायत्तमेकान्तगुणं = स्वायत्तम् एकान्तहितं आच्छादनमज्ञतायाः= एकान्तहितं छादनम् अज्ञतायाः। इस पद्य में उपजाति नामक छन्द है।

किसी अनुभवी मनुष्य के द्वारा दूसरों के प्रति स्वानुभाव प्रकट करने का निर्देश देते हुए कवि कहता है-

यदाकिंचिज्ज्ञोऽहं द्विप इस मदान्धः समभवं,

तदा सर्वज्ञोऽस्मीत्यभवदवलिप्तं मम मनः।

यदा किंचिद्किंचिद् बुधजनसकाशादवगतं,

तदा मूर्खोऽस्मीति ज्वर इव मदो मे व्यपगतः।।8।।

अन्वय:- यदा अहं किञ्चित् ज्ञः तदा द्विप इव मदान्धः समभवम्, तदा मम मनः अवलिप्तम् अभवत्, सर्वज्ञः अस्मि यदा बुधजन सकाशाद् किञ्चित् -किञ्चित् अवगतम् तदा मूर्खः अस्मि इति मे मदः ज्वरः इव व्यपगतः।

अनुवाद:- जब मैं कुछ जानकार (समझदार) हुआ तब मैं हाथी की तरह मद (घमंड) में चूर रहने लगा तब मेरा मन भ्रमित हो गया कि मैं सर्वश्रेष्ठ ज्ञानी हूँ जब विद्वानों की संगति से कुछ-कुछ ज्ञान प्राप्त हुआ तब मैं मूर्ख हूँ ऐसा जनकर मेरा मद ज्वर की भाँति उतर गया।

व्याख्या:- मनुष्य जब थोड़ा कुछ जान लेता है तब मद मस्त हाथी की तरह मदान्ध हो जाता है ज्ञान से शून्य होकर अपने को सर्वज्ञ मान बैठता है। किन्तु विद्वानों के सम्पर्क में आने से थोड़ा कुछ वास्तविक ज्ञान प्राप्त करता है तब वह अपने को अत्यधिक मूर्ख समझने लगता है। अल्पज्ञ होने से उत्पन्न हुआ उसका वह घमण्ड उसी प्रकार दूर हो जाता है जिस प्रकार ज्वर से पीड़ित व्यक्ति का ज्वर उतर जाता है कहने का तात्पर्य यह है कि मनुष्य जब तक विद्वानों के सम्पर्क में नहीं आता उसे ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती। कुएँ का मेढक जब तक कुएँ के भीतर रहता है तो वह उसे ही संसार समझता है जब तक कि वह कुएँ के बाहर आकर एक विशाल तालाब में पहुँच नहीं जाता और इस अपार संसार को स्वयं की दृष्टि से नहीं देख लेता है। अतः कहने का तात्पर्य यह है कि अल्पज्ञता से मद उत्पन्न होता है और विद्वतजनों के संसर्ग से ज्ञान की प्राप्ति होती है।

व्याकरणिक टिप्पणी:- बुधजनसकाशादवगतम्=बुधजनसकाशाद् अवगतम्। सर्वज्ञोऽस्मीत्य = सर्वज्ञः अस्मीत्य। मूर्खोऽस्मीति = मूर्खःअस्मि । प्रस्तुत श्लोक में शिखरिणी नामक छन्द हैं। स्वार्थपरायण प्राणी जिस तरह वस्तु को स्वीकार कर लेते हैं, चाहे वह कितनी

भी तुच्छ क्यों न हो, लेकिन वह उसकी तुच्छता पर ध्यान नहीं देते इसी के विषय में बताते हुए कवि कहता है-

कृमिकुलचितं लालाक्लिन्नं विगन्धिजुगुप्सितं

निरुपमरसं प्रीत्या खादन्नरास्थि निरामिषम्।

सुरपतिमपि श्वा पार्श्वस्थं विलोक्य न शङ्कते,

न हि गणपति क्षुद्रो जन्तुः परिग्रहफल्गुताम्।।9।।

अन्वयः- कृमिकुलचितम् विगन्धि जुगुप्सितं निरामिषम् नरास्थि लालाक्लिन्नम् निरुपमरसप्रीत्या खादन् श्वा पार्श्वस्थं सुरपतिम् अपि विलोक्य न शङ्कते, क्षुद्रः जन्तुः परिग्रहफल्गुताम् न हि गणपति।

अनुवादः- कीड़ों से भरी हुई, दुर्गन्ध युक्त, घृणित् माँस से रहित, मनुष्य की हड्डी के लिए लार टपकाता हुआ, अद्भुत प्रकार के चटखारे लेकर चबाता हुआ कुत्ता अपने बगल में खड़े इन्द्र (देवाधिपति) को देखकर भी सशंकित नहीं होता, क्योंकि उत्श्रृंखल (नीच) स्वभाव वाले जीव प्रिय वस्तु की व्यर्थता पर ध्यान नहीं देते।

व्याख्या:- जब कीड़ों से भरी हुई, दुर्गन्ध युक्त घृणित, मांस से रहित मनुष्य की हड्डी के लिए लार टपकाता हुआ कुत्ता आनन्दपूर्वक उसे चबाता है अर्थात् उसके स्वाद का अनुभव करता है। उस समय यदि देवराज इन्द्र भी उसके सम्मुख खड़े हो जाय तो भी वह नीच (कुत्ता) उस घृणित हड्डी चबाने के आनन्द को नहीं छोड़ता और न लज्जा का अनुभव करता है।कहने का तात्पर्य यह है कि नीच प्राणी किसी भी तुच्छ व घृणित वस्तु को अपना लेता है। उसी में वह परम आनन्द का अनुभव करता है, उसे किसी की परवाह नहीं है।

व्याकरणिक टिप्पणी:- सुरपतिमपि = सुरपतिम् अपि। प्रस्तुत श्लोक में हरिणी नामक छन्द है।

अविवेकी पुरूष के बारे में बताते हुए कवि कहता है-

शिरः शार्वं स्वर्गात् पशुपतिशिरस्तः क्षितिधरं,
महीध्रादुत्तुङ्गादवनिमवनेश्चापि जलधिम्।
अधोऽधो गङ्गेयं पदमुपगता स्तोकमथवा,
विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः।।10।।

अन्वयः- इयं गङ्गा स्वर्गात् शार्वं सिरः पशुपतिशिरस्तः क्षितिधरम् उत्तुङ्गात् महीध्रात अवनिम् च अवनेः अपि जलधिम् अधः अधः स्तोकं पदम् उपगता अथवा विवेकभ्रष्टानां शतमुखः विनिपातः भवति।

अनुवादः- यह गंगा स्वर्ग से शिव के मस्तक पर , शिव के मस्तक से पर्वत पर, ऊँचे पर्वत से पृथ्वी और पृथ्वी से भी समुद्र में जा गिरी। इसी प्रकार वह गंगा नीचे-नीचे ही गिरती गई। ठीक उसी प्रकार विवेक से भ्रष्ट पुरूष का सैकड़ों प्रकार से पतन होता है।

व्याख्या:- पतित पावनी गंगा अर्थात् भागीरथी विवेकहीन होने के कारण लक्ष्मीपति विष्णु के चरणों में विलुप्त होकर शिव के मस्तक पर गिरती है। शिव के मस्तक से हिमालय पर्वत पर और फिर ऊँचे पर्वत (हिमालय) से इस पृथ्वी पर तत्पश्चात् यह गंगा समुद्र में पहुँचकर अस्तित्व हो गयी अर्थात् कहने का तात्पर्य यह है कि गंगा का अपना कोई अस्तित्व नहीं रहता। इसी प्रकार विवेक से भ्रष्ट अर्थात् विवेक से रहित पुरूष सैकड़ों तरह से गिरता रहता है। इसलिए जब कोई एक बार गिरता है तो वह निरन्तर गिरता ही जाता है। अतः मनुष्य को विवेकशील होना चाहिए अन्यथा वह गंगा की तरह ही अस्तित्व हीन हो जाते हैं।

व्याकरणिक टिप्पणी:-अधोऽधो = अधःअधः । गङ्गेयं = गङ्गा इयं । स्र्वगात् में पंचमी विभक्ति है (अलग होने के अर्थ में)। इस श्लोक में शिखरिणी नामक छन्द है ।

बोध प्रश्नः-

(1) नीचे जो वाक्य दिये गये हैं उनमें से) तथ्य की दृष्टि से कुछ सही हैं और कुछ गलत हैं। सही वाक्यों के सामने कोष्ठक में सही (तथा गलत वाक्यों के सामने **(×)** चिह्न लगाइये:-

क . दिक्कालाद्यनवच्छिन्नानन्तचिन्मात्रमूर्तये' श्लोक में कवि ने ब्रह्मा की वन्दना की है । ( )

ख . मूर्ख व्यक्ति को आसानी से समझाया जा सकता है । ( )

ग .विवेक से भ्रष्ट पुरूष का सैकड़ों प्रकार से पतन होता है । ( )

घ . 'यदा किंचि ज्ज्ञोऽहं द्विप इव मदान्धः समभवं' नीति शतकम् का श्लोक नहीं है । ( )

(2) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए-

1.नीति शतक किस कवि की रचना है-

(क) अमरूक (ग) कालिदास

(ख) भर्तृहरि (घ) माघ

2.'लभेत सिकतासु तैलमपि यत्नतः पीडयन्' श्लोक में किसका लक्षण बताया गया है-

(क) विद्वान (ग) मूर्ख

(ख) मित्र (घ) पण्डित

3.'शिरः शार्व स्वर्गात् पशुपतिशिरस्तः क्षितिधरं' किस पुस्तक की पंक्ति है-

(क) नीतिशतक (ग) वैराग्यशतक

(ख) श्रृङ्गारशतक (घ) मेघदूत

4. नीतिशतक' में पद्यों की संख्या कितनी है?

(1) 100 (3) 105

(2) 108 (4) 112

3.4 नीतिशतकम् श्लोक संख्या 11 से 20 तक

अज्ञानता को दूर करने के लिए कोई भी औषधि प्राप्त नहीं है इसी का वर्णन करता हुआ कवि कहता है-

शक्यो वारयितुं जलेन हुतभुक् छत्रेण सूर्यातपो,

नागेन्द्रो निशिताङ्कुशेन समदो दण्डेन गोगर्दभौ ।

व्याधिर्भेषजसङ्ग्रहैश्च विविधैर्मन्त्रप्रयोगैर्विषं,

सर्वस्यौषधमस्ति शास्त्रविहितं मूर्खस्य नास्त्यौषधम् ।।11।।

अन्वयः- हुतभुक् जलेन, सूर्य आतपः छत्रेण,समदः नागेन्द्रः निशित अङ्कुशेन, गो गर्दभौ दण्डेन,व्याधिर्भेषज संग्रहैः च विषम् विविधैः मन्त्रप्रयोगः वारयितुं शक्यः शास्त्रविहितं सर्वस्यौषधमस्ति मूर्खस्य नास्त्यौषधम्।

अनुवादः- आग को जल से, सूर्य की धूप को छाते से, उन्मत हाथी को तीक्ष्ण अंकुश से, गौ एवं गधे को डण्डे से रोग को अनेक प्रकार की औषधियों के संग्रह से तथा विष को विविध प्रकार के मन्त्र प्रयोगों से रोका जा सकता है। शास्त्रों में सभी प्रकार की औषधि का निवारण है किन्तु मूर्ख मनुष्य के लिए कोई औषधि नहीं है।

व्याख्या:- अपने को अत्यधिक बुद्धिमान समझने वाले मूर्ख की अज्ञानता को दूर करने के लिए स्वयं परमब्रह्म परमात्मा भी असमर्थ है। कहने का तात्पर्य यह है कि भयानक रोगों को औषधि के द्वारा दूर किया जा सकता है । सर्प आदि के विषय को उतारने के लिए अनेक प्रकार के मन्त्रों का प्रयोग किया जा सकता है । पर मूर्ख की अज्ञानता को दूर करने के लिए कोई उपाय नहीं है । सब कार्य करने में मनुष्य समर्थ है । किन्तु मूर्ख को को समझाने में असमर्थ है।

व्याकरणिक टिप्पणी:- नागेन्द्रो = नाग इन्द्रो । निशिताङ्कुशेन = निशित् अङ्कुशेन । सर्वस्यौषधमस्ति = सर्वस्य औषधम् अस्ति । नास्त्यौषधम् = नास्ति औषधम् । प्रस्तुत श्लोक में शार्दूलविक्रीडित नामक छन्द है । सूर्याश्वैर्यदि नः सजौ सततगा शार्दूलविक्रीडितम् ।

साहित्य, संगीत, कला से रहित मनुष्य का वर्णन करते हुए कवि कहता है-

साहित्यसङ्गीतकला विहीनः साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः
तृणं न खादन्नपि जीवमानस्तद्भागधेयं परमं पशूनाम् ।।12।।

अन्वयः- साहित्यसंङ्गीत कलाविहीनः पुच्छविषाणहीनः साक्षात् पशुः तृणं न खादन् अपि जीवमान तद् अयं पशूनां परमं भागधेयं ।

अनुवादः- साहित्य, संगीत और कला से विहीन मनुष्य बिना सींग और पूँछ के साक्षात् पशु हैं। घास न खाते हुए भी वह जीवित रहता है यह पशुओं का परम सौभाग्य है।

व्याख्याः- जो मनुष्य साहित्य, संगीत और कला को नहीं जानता उसकी गणना पशुओं में की जाती है। पशु तो घास खाकर जीवित रहता है पर ऐसा मनुष्य तो घास न खाकर जीवित रहता है इसमें तो पशुओं का बड़ा सौभाग्य है। यदि वे घास खाते तो जो वास्तविक में पशुओं का जीवन कठिन हो जाता। कहने का तात्पर्य यह है कि मनुष्य के रूप में जो पशु हैं उनका घास न खाना, प्राकृतिक पशुओं के लिए परम सौभाग्य है।

व्याकरणिक टिप्पणी:- साक्षात्पशुः = साक्षात् पशुः। खादन्नपि = खादन् अपि। यहाँ उपजाति छन्द है।

मूर्ख मनुष्यों को पशु तुल्य बताते हुए कवि कहता है-

येषां न विद्या न तपो न दानं ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मर्त्यलोके भुविभारभूता, मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति ।।13।।

अन्वयः- येषां न विद्या, न तपो, न दानं, ज्ञानं न, शील न गुणो न धर्मः, ते मर्त्यलोके भुवि भारभूता मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति।

अनुवादः- जिन मनुष्यों के पास न विद्या, न तप, न दान, न ज्ञान, न शील, न गुण और न धर्म ही है, वे मृत्युलोक पृथ्वी पर भार बनकर मनुष्य रूप में पशु की तरह विचरण करते हैं।

व्याख्याः- मनुष्य जैसा अमूल्य जीवन पाकर जिसने न विद्या का अध्ययन किया, न तप किया, न कभी किसी सत्पात्र को ही दिया, न ज्ञान रूपी संसार में आकर ज्ञान का ही उपार्जन किया, न कभी सदाचार का पालन किया, न अच्छे गुण ही प्राप्त किया और न अपने धर्म का ही पालन किया। कहने का तात्पर्य यह है कि वे मनुष्यों की आकृति में पशु के तुल्य हैं, उनका जीवन व्यर्थ है।

व्याकरणिक टिप्पणीः- मृगाश्चरन्ति = मृगाः चरन्ति। भुवि में सप्तमी विभक्ति है। भूता में भू धातु से क्त प्रत्यय स्त्रीलिंग है। यहाँ पर भी उपजाति नामक छन्द है। मूर्ख लोगों का संसर्ग त्याग देना चाहिए इसी का वर्णन करते हुए कवि कहता है-

वरं पर्वतदुर्गेषु भ्रान्तं वनचरैः सह।
न मूर्खजनसम्पर्कः सुरेन्द्रभवनेष्वपि ।।14।।

अन्वयः- पर्वतदुर्गेषु वनचरैः सह भ्रान्तं वरं मूर्खजनसम्पर्कः सुरेन्द्रभवनेषु अपि न।

अनुवादः- पर्वत की गुफाओं में वनचरों (जंगली आदमियों) के साथ विचरण करना श्रेष्ठ है। किन्तु मूर्ख लोगों का सम्पर्क देवराज इन्द्र के भवन में भी अच्छा नहीं।

व्याख्याः- मूर्खों का साथ कभी भी हितकारी नहीं होता, क्योंकि उनसे सदैव अनिष्ट की ही आशंका रहती है। कहने का तात्पर्य यह है आज्ञानी का संसर्ग किसी को अच्छा नहीं लगता।

बीहड़ पहाड़ों पर जंगली आदमियों के साथ विचरण करने में जो आनन्द मिलता है वह आनन्द तो देवताओं के राजा इन्द्र के महल में मूर्ख के साथ रहने पर नहीं मिलता क्योंकि मूर्ख अज्ञानता पूर्ण बातें ही करते हैं।

व्याकरणिक टिप्पणी:- सुरेन्द्रभवनेष्वपि = सुरेन्द्रभवनेषु अपि। यहॉ सह के योग में तृतीया विभक्ति है। प्रस्तुत श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है।

विद्वत् जनों के विषय में बताते हुए कवि कहता है-

शास्त्रोपस्कृतशब्दसुन्दरगिरः शिष्यप्रदेयागमा,

विख्याताः कवयो वसन्ति विषये यस्य प्रभोनिर्धनाः।

ताज्जाड्यं वसुधाधिपस्य सुधियस्त्वर्थं विनापीश्वराः,

कुत्स्याः स्युः कुपरीक्षका हि मणयो यैरर्घतः पातिताः।।15।।

अन्वयः- शास्त्रोपस्कृतशब्दसुन्दरगिरः शिष्यप्रदेयागमाः,विख्याताः कवयः यस्य प्रभो विषये निर्धनाः वसन्ति,तत् वसुधाधिपस्य जाड्यम्, सुधियः तु अर्थं विना अपि ईश्वराः कुपरीक्षकाः हि कुत्स्याः स्युः यैः मणयः अर्घतः पातिताः।

अनुवादः- शास्त्रों के ज्ञान से अलंकृत सुन्दर वाणी वाले और शिष्यों को वेद शास्त्रों के उपदेश देने वाले प्रसिद्ध कवि जिस राजा के राज्य में निर्धनता में वास करते हैं यह उस राजा की मूर्खता ही है, किन्तु विद्वान तो धन के बिना भी श्रेष्ठ होते हैं, क्योंकि निन्दा के योग्य तो वे कुपरीक्षक होते हैं जो मणियों के मूल्य का अवमूलन करते हैं रत्न नहीं।

व्याख्याः- जिनको शास्त्रों का पूर्ण ज्ञान है जो अलंकृत सुन्दर वाणी बोलने वाले हैं और अपने शिष्यों, जिज्ञासुओं को सदुपदेश देते हैं इसलिए वे सर्वत्र प्रसिद्धि प्राप्त करते हैं। ऐसे सुप्रसिद्ध विद्वान जिस राजा के राज्य में निर्धन होकर रहते हैं इससे उस राजा की अयोग्या ही पता चलती है कि ऐसे विद्वानों का वहाँ आदर सत्कार नहीं है, विद्वान (ज्ञानी) तो धन के बिना भी स्वामी होते हैं क्योंकि उनके पास तो विद्या रूपी धन है और वे सर्वत्र ही पूजे जाते हैं, निन्दा तो राजा की होती है विद्वान की नहीं जैसे रत्नों का मूल्य गिराने वाला रत्नपारखी ही निन्दा का पात्र होता है, रत्न नहीं। इसलिए राजा को विद्वानों का आदर करना चाहिए।

व्याकरणिक टिप्पणी:- शिष्यप्रदेयागमाः = शिष्य प्रदेय आगमाः। प्रस्तुत श्लोक में शार्दूलविक्रीडित छन्द है। राजा को चाहिए कि वह ईर्ष्या से रहित होकर विद्वतजनों का आदर करे इसी का वर्णन करते हुए कवि कहता है-

हर्तुर्याति न गोचरं किमपि शं पुष्णाति यत्सर्वदा-,

ऽप्यर्थिभ्यः प्रतिपाद्यमानमनिशं प्राप्नोति वृद्धिं पराम्।

कल्पान्तेष्वपि न प्रयाति निधनं विद्याख्यमन्तर्धनं,

येषां तान्प्रति मानमुज्झत नृपाः! कस्तैः सह स्पर्धते ।।16।।

अन्वयः- येषां विद्याख्यमन्तर्धनम्, हर्तुर्याति न गोचरं, किमपि यत् सर्वदा शं पुष्णाति हि अर्थिभ्यः प्रतिपाद्यमानम् अनिशं परां वृद्धिं प्राप्नोति, कल्पान्तेषु अपि निधनं न प्रयाति तान्प्रति नृपाः मानुमुज्झत कः तैः सहस्पर्धते।

अनुवादः- जिनके पास विद्यारूपी गुप्त धन है, जिसे चोर देख नहीं सकता और सदैव कल्याण को बढ़ाता है, शिष्यों या जिज्ञासुओं को देते रहने पर भी अधिकाधिक बढ़ता रहता है, महाप्रलय होने पर भी जिसका नाश नहीं होता है। हे राजा उन विद्वानों के प्रति अभिमान करना छोड़ दो कौन उनके साथ स्पर्धा कर सकता है। अर्थात् केाई नहीं।

व्याख्याः- जो राजा अपने धन ऐश्वर्य के कारण इन विद्वानों के सम्मुख घमंड करते हैं उनका आदर सत्कार नहीं करते, इन विद्वानों के पास तो विद्या रूपी ऐसा गुप्त धन है जिसे चोर देख नहीं सकता और जो सदा कल्याण होता है। यह विद्यारूपी धन विद्यार्थियों को उन्नति की ओर प्रेरित करती है। अतः इनके प्रति घमंड न करके आदर सम्मान करना चाहिए। क्योंकि इनसे कोई भी स्पर्धा नहीं कर सकता है।

व्याकरणिक टिप्पणीः- किमपि = किम् अपि।यत्सर्वदा = त्सर्वदा। ह्यर्थिभ्यः = हि अर्थिभ्यः। कल्पान्तेष्वपि = कल्पान्तेषु अपि । विद्याख्यमन्तर्धनम् = विद्या अख्यम् अन्तः धनम् । मानमुज्झत = मान उज्झत । तान्प्रति = तान्प्रति । प्रस्तुत श्लोक में भी शार्दूलविक्रीडितं नामक छन्द है।

कवि राजा को उद्बोधित करते हुए कहता है कि तुच्छ लक्ष्मी भी विद्वानों को रोक नहीं सकती अतः उनका अपमान मत कर इसी का वर्णन किया गया है-

अधिगतपरमार्थान् पण्डितान् माऽवमंस्था-
स्तृणमिव लघु लक्ष्मीर्नैव तान् संरुणद्धि।
अभिनवमदलेखाश्यागण्डस्थलानां

न भवति बिसतन्तुर्वारणं वारणानाम्।।17।।

अन्वयः- अधिगतपरमार्थान् पण्डितान् या अवसंस्थाः तृणम् इव लघु लक्ष्मीः तान् न एव संरुणाद्धि अभिनवमदलेखाश्याम गण्डस्थलानां वारणानां बिस तन्तुः वारणं न भवति।

अनुवादः- हे राजन! आध्यात्म-तत्त्व को जानने वाले विद्वानों का अपमान मत करो, क्योंकि तिनके के समान तुच्छ लक्ष्मी उन्हें उसी प्रकार बांध नहीं सकती जिस प्रकार नवीन मदलेखा से युक्त श्याम गण्डस्थल वाले हाथियों को कमल नाल के तन्तुओं से बाँधना सम्भव नहीं होता है।

व्याख्याः- जिस प्रकार से कमलनाल के रेशों से मदमस्त हाथी को बाँधा नहीं जा सकता उसी प्रकार तिनके के समान तुच्छ लक्ष्मी भी विद्वानों को अपनी वशीभूत नहीं कर सकती। अतः हे राजा तत्त्वज्ञानियों का अपमान मत करो। क्योंकि वे धन वैभव को तुच्छ समझते हैं संसार का कोई भी वैभव कदापि उन्हें अपनी ओर आकृष्ट नहीं कर सकता।

व्याकरणिक टिप्पणीः- पण्डितान्मावमंस्था = पण्डितान् मा अवमंस्था। तृणमिव = तृणम् इव प्रस्तुत श्लोक में दृष्टान्त अलंकार व मालिनी नामक छन्द है।

विद्वानों की विद्वता को विधाता भी अपहृत नहीं कर सकता इसी का वर्णन करते हुए कवि कहता है-

अम्भोजिनीवनविहारविलास मेव,
हंसस्य हन्ति नितरां कुपितो विधाता।
न त्वस्य दुग्धजलभेदविधौ प्रसिद्धां,
वैदग्ध्यकीर्तिमपहर्तुमसौ समर्थः ।।18।।

अन्वयः- कुपितः विधाता हंसस्य अम्भोजिनीवनविहारविलासम् एव नितरां हन्ति, तु असौ अस्य दुग्धजलभेदविधौ प्रसिद्धां वैदग्ध।

अनुवादः- क्रुद्ध हुआ विधाता हंस का केवल कमलिनी के वन में विचरण करने के सुख को नष्ट कर सकता है। किन्तु दूध और पानी को पृथक करने वाला चातुर्यपूर्ण कला को मिटा नहीं सकता।

व्याख्याः- यदि किसी कारणवश ब्रह्मा हंस से क्रोधित हो जाय वह अधिक से अधिक कमलिनी वन में क्रीड़ा करने से रोक सकता है। इससे अधिक कुछ नहीं कर सकता परन्तु हंस में जो जल और दूध को अलग करने की चातुर्यपूर्ण कला है उसका अपहरण कदापि समर्थ नहीं है, हंस मिश्रित दूध और जल में से दूध पी लेता है और जल छोड़ देता है।

व्याकरणिक टिप्पणी:-विलासमेव = विलासम् एव। त्वस्य = तु अस्य। प्रस्तुत श्लोक में प्रशंसालंकार व बसन्ततिलका नामक छन्द है।

विद्वानों का आभूषण विद्या ही है इसी का वर्णन करते हुए कवि कहता है-

केयूराणि न भूषयन्ति पुरूषं हारा न चन्द्रोज्ज्वला
न स्नानं न विलेपनं न कुसुमं नालङ्कृता मूर्धजाः।
वाण्येका समलङ्ककरोति पुरुषं या संस्कृता धार्यते,
क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं वाग्भूषणं भूषणम्।।19।।

अन्वयः- पुरूषं न केयूराणि भूषयन्ति, न चन्द्रोजज्ज्वलाः हाराः, न स्नानं न विलेपनम्, न कुसुमं न अलङ्कृता मूर्द्धजा, पुरुषम् एका समलङ्करोति या संस्कृता धार्यते, भूषणानि खलु सततं क्षीयन्ते वाग्भूषणम् भूषणम्।

अनुवादः- पुरुष को न बाजूबंद सजाते हैं न चन्द्रमा के समान उज्ज्वल कांति वाले हार, न स्नान न चन्दन आदि का लेप न सुगन्धित फूल और न ही सजे सँवरे केश 'पुरुष की शोभा को नहीं' बढ़ाते हैं। पुरूष को एकमात्र वाणी ही अलंकृत करती है जो व्याकरणादि (सुसंस्कृत) रूप से धारण की गई है। अन्य आभूषण तो निश्चित रूप से नष्ट हो जाते हैं किन्तु वाणी रूपी आभूषण कभी नष्ट नहीं होता।

व्याख्याः- इस संसार सब आभूषण नाशवान् है धन, ऐश्वर्य के समाप्त होते ही ये सभी नष्ट हो जाते हैं कहने का तात्पर्य यह है सुसंस्कृत वाणी रूपी आभूषण सदा ही श्रेष्ठ आभूषण हैं क्योंकि वे कभी नष्ट नहीं होता जो सदैव बना रहता है जैसे-जैसे हम इसका उपयोग करेंगे वैसे-वैसे ये

बढ़ता ही रहता है घटता नहीं है। लौकिक स्वर्ण आदि से बने आभूषण तो धीरे-धीरे नष्ट हो जाते हैं।

व्याकरणिक टिप्पणी:-चन्द्रोज्ज्वलाः = चन्द्र उज्ज्वलाः। नालङ्कृता = न अलङ्कृता । वाग्भूषणं = वाक् भूषणं। प्रस्तुत श्लोक में व्यतिरेक अलंकार व शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

विद्या के गुणों की प्रशंसा करते हुए कवि कहता है-

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनं,

विद्याभोगकरी यशः सुखकरी विद्या गुरूणां गुरूः।

विद्या बन्धुजनो विदेशगमने विद्या परा देवता,

विद्या राजसु पूज्यते न तु धनं विद्याविहीनः पशुः।।20।।

अन्वयः- विद्या नाम नरस्य रूपम् अधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनं, विद्या भोगकरी यशः सुखकरी, विद्या गुरूणां गुरूः विदेशगमने विद्या बन्धुजनः विद्या परां देवता विद्या राजसु पूज्यते न हि धनम्, विद्या विहीनः पशुः।

अनुवादः- विद्या ही मनुष्य का श्रेष्ठ सौन्दर्य और अत्यन्त गुप्तधन है। विद्या भोगपदार्थों को देने वाली है तथा यश और सुख देने वाली है। विद्या गुरुओं की भी गुरु है, विदेश में विद्या बन्धु की भाँति होती है विद्या उत्कृष्ट देवता है, विद्या राजाओं के द्वारा पूजी जाती है धन नहीं। अतः विद्या से विहीन मनुष्य पशु के तुल्य ही है।

व्याख्याः- विद्या ही मनुष्य का श्रेष्ठ रूप है अर्थात् विद्या से ही मनुष्य की शोभा होती है, मनुष्य के हृदय में विद्या रूपी गुप्त धन सदा रहने वाला है विद्या गुरूजनों से भी सर्वोच्च है क्योंकि गुरूजन भी तो विद्या के सहारे ही अपने उपदेशों को लोगों को देते हैं। यश आदि भी विद्या से ही प्राप्त होता है केवल इतना ही नहीं विदेश में विद्या से सम्बन्धी की भाँति साथ देती है अर्थात् आदर प्राप्त होता है। राजसभाओं में विद्या का ही आदर होता है धन का नहीं कहने का तात्पर्य यह है कि विद्या से रहित मनुष्य पशु ही है।

व्याकरणिक टिप्पणी:-रूपमधिकं = रूपम् अधिकम्। प्रस्तुत श्लोक में निरवयव माला रूपम अलंकार व शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

3.5 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान चुके हैं कि मूर्खों का स्वभाव किस प्रकार का होता है व मूर्ख की मूर्खता का प्रतिकार अशक्य है साथ ही साथ आप अज्ञानी,ज्ञानी और अल्पज्ञानी के स्वभाव में अन्तर कर सकते हैं। इसके साथ ही साथ क्षुद्र जन्तु के स्वभाव से परिचित हुए, विवेकहीन व्यक्ति के पतन के कारणों को भी आपने जाना कि किस प्रकार से विवके से भ्रष्ट व्यक्ति का पतन होता है साथ ही आप विद्या के महत्त्व से परिचित हुए, आपने जाना कि विद्या ही ऐसा धन है जो कभी समाप्त नहीं होता है विद्या से युक्त अर्थात् विद्वानों का सभी जगह सम्मान

होता है इसके विपरीत मूर्खों का कहीं भी सम्मान नहीं होता है । इस इकाई में आपने भर्तृहरि रचित नीतिशतकम् से संग्रहित अनेक जीवनोपयोगी सदुपदेशों का परिचय प्राप्त किया ।

बोध प्रश्नः-

(3). नीचे जो वाक्य दिये गये हैं उनमें से) तथ्य की दृष्टि से कुछ सही है और कुछ गलत हैं। सही वाक्यों के सामने कोष्ठक में (तथा गलत वाक्यों के सामने (ग) चिह्न लगाइये-

कः- मूर्ख की अज्ञानता को दूर करने की औषधि है। ( )

खः- साहित्य, संगीत तथा कला से विहीन मनुष्य पशु ही है। ( )

गः- 'हर्तुर्याति न गोचरं" श्लोक में विद्या रूपी गुप्त धन के विषय में बताया गया है ( )

घः- मूर्ख का सम्पर्क इन्द्र के भवन में भी अच्छा नहीं है ( )

(4) निम्ननलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए-

1. अग्नि को किससे रोका जा सकता है-

(क) वायु (ग) जल

(ख) आकाश (घ) पाताल

'येषां न विद्या न तपो न दानं" श्लोक में किसकी महत्ता बतलायी गयी है?

(क) मनुष्य (ग) विद्या

(ख) पशु (घ) धन

2. 'विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं' सूक्ति किस पुस्तक से ली गई है-

(क) रघुवंश (ग) अमरुकशतक

(ख) मेघदूत (घ) नीतिशतक

3. 'अम्भोजिनीवन विहार विलासमेव' श्लोक में किसके विषय में बताया गया है-

(क) मूर्खता (ग) विद्वता

(ख) वीरता (घ) दरिद्रता

3.6 शब्दावली

अबोधोपहताश्चान्ये	-	अन्य लोग अज्ञानता से पीड़ित है।
न रञ्जयति	-	सन्तुष्ट नहीं कर सकता ।

प्रसह्य	-	साहस करके
सिकतासु	-	बालू के कणों में
समुज्जम्ज्रृ म् भते	-	प्रयत्न करता है
छादनमज्ञतायाः	-	अज्ञानता को ढकने का
किञ्चिचज्ज्ञोऽहं	-	थोड़ा कुछ जानने वाला
कृमिकुलचितं	-	कीड़ों के समूह से भरी हुई
विवेकभ्रष्टानां	-	विवेक भ्रष्ट लोगों का
निशिताङ्कुशेन	-	तीक्ष्ण अंकुश से
शास्त्रोपस्कृतशब्दसुन्दरगिरः	-	शास्त्रों के ज्ञान से अलंकृत सुन्दर वाणी वाले
हर्तु	-	चोर (डाकू)
वारणानां	-	मदमस्त गजराजों को
वैदग्धकीर्तिम्	-	कुशलता के यश को
केयूराणि	-	बाजूबन्द
प्रच्छन्नगुप्तधनम्	-	अदृश्यगुप्त धन
पर्वतदुर्गेषु	-	पर्वत की गुफाओं में
पुच्छविषाणहीनः	-	बिना सींग और पूँछ के
मृगाश्चरन्ति	-	मृग के समान विचरण

3.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

(1¬) क. ख. ग; घ.

(2) (1) ख. भर्तृहरि

(2) ग. मूर्ख

(3) क. नीतिशतक

(4) क. 100

(3) क ख. ग. घ.

(4) (1) ग. जल (2) ग. विद्या (3) घ. नीतिशतक (4) ग. विद्वता

3.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

(1) श्री कृष्णमणि त्रिपाठी - नीतिशतकम् (भर्तृहरिरचित)चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन,37/117 गोपालमन्दिर लेन,पो0बा0न0-1129, वाराणसी-221001

(2) पं0 ज्वाला प्रसाद चतुर्वेदी- भर्तृहरि शतकरणधीर बुक सेल्स प्रकाशन,182, एस0एन0 नगर, हरिद्वार।

(3) डॉ0 बाबूराम त्रिपाठी- महालक्ष्मी प्रकाशन,शहीद भगत सिंह मार्ग,आगरा-28200

3.9 उपयोगी पुस्तकें

सुनील शर्मा- भर्तृहरि शतकमनोज पब्लिकेशन,761, मेन रोड बुराड़ी,दिल्ली-110084

3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1- मूर्खों के स्वभाव के विषय में विस्तार से समझाइये।

2- विद्या के महत्त्व को बताइये।

इकाई 4 . नीतिशतक श्लोक सं0 21 से 40 तक व्याख्या

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 नीति शतक श्लोक संख्या 21 से 30 तक
(मूल पाठ, अनुवाद, व्याख्या,व्याकरणिक टिप्पणी)
4. 4 नीति शतक श्लोक संख्या 31 से 40 तक
. (मूल पाठ, अनुवाद,व्याख्या,व्याकरणिक टिप्पणी)
4. 5 सारांश
4. 7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4•8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4. 9 सहायक पाठय सामग्री
4. 10 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना -

नीतिशतक से सम्बन्धित यह चौथी इकाई है। इससे पूर्व की तीन इकाईयों के अध्ययन के बाद आप यह बता सकते हैं कि भर्तृहरि कौन थे तथा नीति साहित्य में उनका क्या योगदान रहा | शतकत्रय क्या है ? मूर्ख होना एक अभिशाप है तथा विद्या का क्या महत्त्व है ।

नीतिशतक में सामाजिक जीवन में उपयोगी अनेक शिक्षाओं का वर्णन किया गया है जैसे सत्संगति के महत्त्व को बताया गया है स्वाभिमानी तथा मनस्वी पुरूषों का आचरण कैसा होता है। मान और शौर्य भी अर्थमूलक ही होते हैं अत: अर्थपद्धति का भी वर्णन प्रस्तुत इकाई में किया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप दया क्षमा उदारता आदि गुणों के महत्त्व को समझा सकेगें। सत्संगति से क्या लाभ है यह बता सकेगें क्षुद्र व्यक्ति और स्वाभिमानी व्यक्ति में क्या अन्तर है तथा धन का क्या महत्त्व है इसकी व्याख्या कर सकेगें।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

* यह समझा सकेगें कि धन की अपेक्षा विद्या का क्या महत्त्व है।
* सत्संगति से मनुष्य को क्या लाभ होता है इसकी व्याख्या कर सकेगें
* स्वाभिमानी व्यक्ति के स्वभाव का वर्णन कर सकेगें ।
* क्षुद्र और मनस्वी जनों के अन्तर को श्रेणीबद्ध कर सकेगें
* विश्लेषित कर सकेगें कि धन की महत्ता सर्वोपरि है।

4.3 नीतिशतक श्लोक संख्या 21 से 30 तक व्याख्या

इस श्लोक के अध्ययन से आप यह जान सकेगें कि धन की अपेक्षा विद्या की क्या प्रधानता है

क्षान्तिश्चेत् कवचेन किम् किमरिभि: क्रोधोअस्तिचेद् देहिनां

ज्ञातिश्चेदनलेन किं यदिसुहृद्दिव्यौषधै: किं फलम्।

किं सर्पैर्यदि दुर्जना: किमु धनैर्विद्याऽनवद्या यदि

व्रीडाचेत्किमु भूषणै: सुकवितायद्यस्ति राज्येन किम् ।। 21 ।।

अन्वय— देहिना क्षान्ति: चेत् कवचेन किम् क्रोध: चेद् अस्ति अरिभि: किम्ज्ञाति: चेत् अनलेन किम् यदि सुहृद् दिव्यौषधे: किम् फलं यदि दुर्जना: सर्पै: किम् यदि अनवद्या विद्या धनै: किमु व्रीडा चेत् भूषणै: किमु यदि सुकविता अस्ति राज्येन किम्।

अनुवाद — मनुष्यों में यदि क्षमा है तो कवच से क्या (प्रयोजन) यदि ,क्रोध है तो शत्रुओं से क्या प्रयोजन यदि कुटुम्बी लोग है तो अग्नि से क्या प्रयोजन यदि दुष्ट लोग है तो सांपो से क्या प्रयोजन यदि निर्दोष अर्थात् प्रशंसनीय विद्या है तो धन से क्या प्रयोजन यदि लज्जा है तो आभूषणों से क्या प्रयोजन यदि सुन्दर कविता करने की शक्ति है तो राज्य से क्या प्रयोजन।

व्याख्या — भावार्थ यह है कि यदि किसी व्यक्ति के पास क्षमा रूपी श्रेष्ठ गुण है तो उसे अपनी रक्षा की चिन्ता ही नहीं करना चाहिए और यदि वह क्रोधी है तो उसे शत्रु का अभाव नहीं क्योकि क्रोध से बढ कर कोई शत्रु नहीं होता। दायाद सभी सम्पत्ति के विनाशक होते हैं यदि किसी व्यक्ति के पास ऐसे कुटुम्बी जन है तो उसे सम्पत्ति विनाश के लिए अग्नि की आवश्यकता न होगी। और यदि मनुष्य के पास अच्छा मित्र है तो उसे औषधियों की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि सन्मित्र सभी विपत्तियों को दूर करने वाला होता है। दुष्ट व्यक्ति सर्पों से अधिक घातक होते हैं अत: जहां दुष्ट व्यक्ति हो वहां सर्पों की आवश्यकता नहीं होती है। विद्या ही सबसे बडा धन है यदि किसी व्यक्ति के पास निर्दोष विद्या हे तो उसे अन्य धन की कोई आवश्यकता नहीं ,इसी प्रकार लज्जा रूपी आभूषण के रहते अन्यभूषणों की आवश्यकता नहीं रहती।

व्याकरणिक टिप्पणी — सुहृत् — शोभनं हृदयं यस्य स: (बहुब्रीहि) प्रकृति प्रत्यय — क्षान्ति: —क्षम् +क्तिन (भावे)। शार्दूलविक्रीडत छन्द है।

समभाव - कबीरदास जी का कथन है-

जहां दया तहँ धर्म है लोभ जहाँ तहँ पाप

जहाँ क्रोध तहँ काल है जहाँ क्षमा तहँ आप ।।

लोक व्यवहार में साफल्य प्राप्ति के लिए कुछ गुणों की आवश्यकता होती है इन्हीं का निर्देश करते हुए भर्तृहरि कहते हैं कि —

दाक्षिण्यं स्वजने दया परिजने शाठयं सदा दुर्जने

प्रीति: साधुजने नयो नृपजने विद्वज्जने चार्जवम्।

शौर्यं शत्रुजने क्षमा गुरूजने कान्ताजने धृष्टता

ये चैवं पुरूषा: कलासु कुशलास्तेष्वेव लोकस्थिति: ।। 22।।

अन्वय - स्वजने दाक्षिण्यं ,परिजने दया ,दुर्जने सदा शाठयं ,साधुजने प्रीति: ,नृपजने नय:, विद्वज्जने च आर्जवम् ,शत्रुजने शौर्यं ,गुरूजने क्षमा , कान्ताजने धृष्टता , एवं ये च पुरूषा: कलासु कुशला: तेषु एव लोकस्थिति: (वर्तते)।

अनुवाद - अपने लोगों पर उदारता ,सेवकों पर दया ,दुष्टों के साथ शठता ,सज्जनों के साथ प्रीति ,राजाओं के प्रति नीति,विद्वानोप्रति सरलता ,शत्रुओं के प्रति पराक्रम ,गुरूजनों के प्रति सहनशीलता ,स्त्रियों के प्रति प्रगल्भता दिखाते हुए जो पुरूष कलाओं में कुशल है, उन्हीं पर लोक की स्थिति अर्थात् संसार टिका हुआ है।

व्याख्या — लोक व्यवहार में कुशलता प्राप्त करने के लिए तथा जीवन को सफल बनाने के लिए मनुष्य को इन निर्दिष्ट कलाओं में कुशल होना चाहिए। इस कुशलता से ही लोक मर्यादा स्थिर रह सकती है। समाज में अनेक प्रकार की चित्तवृत्ति वाले लोग होते हैं अत: सबके साथ एक जैसा व्यवहार नहीं किया जा सकता । जिन पुरूषों में ये गुण पाये जाते हैं उन्हीं से लोकमर्यादा की रक्षा हो सकती है अन्य लोगो से नहीं। विद्वान व्यक्ति में ही ये गुण प्राप्त होते हैं इसलिए वे ही लोक मर्यादा रक्षक होते हैं।

व्याकरिणक टिप्पणी - प्रकृति प्रत्यय - प्रीति: - प्री + क्तिन्। समास - लोकस्थिति: - लोकस्य स्थिति:(ष0 त0)। शार्दूलविक्रीडत छन्द हैं।

सत्संगति के महत्त्व का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि —

जाड्यं धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्यं

मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति।

चेत: प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिं

सत्संगति: कथय किं न करोति पुंसाम ।। 23।।

अन्वय- धिय: जाड्यं हरति ,वाचि सत्यं सिञ्चति, मानोन्नतिं दिशति ,पापम् अपाकरोति,चेत: प्रसादयति ,दिक्षु: कीर्तिं तनोति ,कथय सत्संगति: पुंसाम् किम् न करोति।

अनुवाद - सत्संगति बुद्धि की जडता को दूर करती है ,वाणी में सत्यता को स्थापित करती है,सम्मान को बढ़ाती है,पाप को दूर करती है ,चित्त को प्रसन्न करती है और दिशाओं में कीर्ति को फैलाती है। कहो सत्संगति मनुष्यों के लिए क्या नहीं करती है।

व्याख्या- अच्छी संगति के प्रभाव से मनुष्य की बुद्धि तीव्र होती है ,सत्यभाषी होता है ,मान प्रतिष्ठा एवं उन्नति प्राप्त करता है उसके समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं तथा मन हमेशा प्रसन्न रहता है उसका यश सभी दिशाओं में फैलता है। इसलिए सत्संगति में वे सभी गुण विद्यमान है जो मनुष्य को अपना जीवन सफल बनाने के लिए आवश्यक हैं।

व्याकरिणक टिप्पणी - प्रकृति प्रत्यय - सम +गम् +क्तिन् - संगति। वसन्ततिलका छन्द है।

रससिद्ध् कवीश्वरों का महत्त्व निरूपण करते हुए भर्तृहरि कहते हैं —

जयन्ति ते सुकृतिनों रससिद्धा: कवीश्वरा:।

नास्ति तेषां यश: काये जरामरणजं भयम् ।। 24

अन्वय - ते सुकृतिन: रससिद्धा: कवीश्वरा: जयन्ति तेषां यश:काये जरामरणजं भयं नास्ति।

अनुवाद - अत्यन्त पुण्यवान् एवम् रस वर्णन में निपुण वे महाकवि सर्वविजयी हैं ,जिनके कीर्ति रूपी शरीर के लिए वृद्धावस्था तथा मृत्यु का भय नहीं होता है।

व्याख्या - भाव यह है कि जो नव रसों की अभिव्यक्ति में अत्यधिक प्रवीण है ऐसे रससिद्ध् कवीश्वरों का स्थूल शरीर भले ही नष्ट हो जाय किन्तु उनका यश रूपी शरीर सदा स्थायी रहता

है और उसमें वृद्धावस्था तथा मृत्यु का भय नहीं रहता। उदाहरण के लिए महाकवि कालिदास बाल्मीकि आदि श्रेष्ठ कवि य़द्यपि आज जीवित नहीं है किन्तु उनकी रचनाओं द्वारा अर्जित यश आज भी विद्यमान है।

व्याकरणिक टिप्पणी — सुकृतिन: —सु+कृत+इनि। रसेषु सिद्धा: रससिद्धा: (तत्पुरूष) !। इस श्लोक में काव्यलिंग अलंकार है।

महात्मा भर्तृहरि कहते हैं कि भगवान् विष्णु के प्रसन्न होने पर संसार के सभी कल्याणकारी पदार्थ प्राप्त होते हैं —

सूनु: सच्चरित: सती प्रियतमा स्वामी प्रसादोन्मुख:
स्निग्धं मित्रमवञ्चक: परिजनो नि:क्लेशलेशं मन:
आकारो रूचिर: स्थिरश्च विभवो विद्यावदातं मुखं
तुष्टेविष्टपकष्ट हारिणी हरौ सम्प्राप्यते देहिना ।। 25।।

अन्वय - विष्टपकष्टहारिणी हरौ तुष्टे देहिना सच्चरित: सूनु: ,सती प्रियतमा ,प्रसादोन्मुख: स्वामी ,स्निग्धं मित्रमं ,अवञ्चक परिजन: ,नि:क्लेश्लेशं मन: रूचिर: आकार: , स्थिर: विभव: , विद्यावदातं मुखं च सम्प्राप्यते ।

अनुवाद - संसार के कष्ट को हरने वाले भगवान विष्णु के प्रसन्न होने पर मनुष्य को सदाचारी पुत्र ,पतिव्रता पत्नी ,प्रसन्न रहने वाला स्वामी ,स्नेही मित्र ,न ठगने वाला सेवक , छल कपट रहित बन्धुजन ,क्लेश के लेशमात्र से भी रहित मन ,सुन्दर आकृति ,चिर स्थायी धन सम्पत्ति और विद्या से उज्ज'वल मुख प्राप्त किया जाता है।

व्याख्या -मनुष्य को उपरोक्त प्रकार के सुखों की प्राप्ति के लिए भागवत्कृपा प्राप्त करनी चाहिए क्योंकि भगवान् के प्रसन्न होने परअत्यन्त दुर्लभ पदार्थ भी अनायास ही प्राप्त हो जाते हैं।

व्याकरणिक टिप्पणी — प्रकृति प्रत्यय —प्रियतमा प्रिय +तमप् +टाप्देहिना — देह +इनि। अनुप्रास अलंकार तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

महाकवि भर्तृहरि मनुष्यों के कल्याण के मार्ग का निरूपण कर रहे हैं —

प्राणाघातान्निवृति: परधनहरणे संयम: सत्यवाक्यं
काले शक्त्या प्रदानं युवतिजनकथामूकभाव: परेषाम् ।
तृष्णास्रोतोविभंगो गुरूषु च विनय: सर्वभूतानुकम्पा
सामान्य: सर्वशास्त्रेष्वनुपहतविधि: श्रेयसामेष पन्था: ।1 26

अन्वय — प्राणाघातात् निवृत्ति: ,परधनहरणे संयम: ,सत्यवाक्यं , काले शक्त्याप्रदानं ,परेषाम् युवतिजनकथामूकभाव: ,तृष्णास्रोतो विभंग: ,गुरूषुाविनय: ,सर्वभूतानुकम्पा च एष: सर्वशास्त्रेषु अनुपहतविधि: सामान्य:श्रेयसां पन्था: ।

अनुवाद — जीवहिंसा से दूर रहना , दूसरों के धनापहरण से चित्त को रोकना ,सत्य बोलना ,समय पर सामर्थ्यानुसार दान देना ,परस्त्री चर्चा से विमुख रहना ,कामनाओं के प्रवाह को रोकना ,गुरूजनों के प्रति नम्रता रखना और सब प्राणियों पर दया करना ,यही सब शास्त्रों में अप्रतिषिद्ध् (उचित)विधि वाला मानव कल्याण का सामान्य मार्ग है।

व्याख्या —इस श्लोक के अध्ययन से आप यह जानेगें कि मानव जाति के लिए परम कल्याणकारी मार्ग क्या है।

व्याकरणिक टिप्पणी — प्रकृति प्रत्यय —निवृत्ति: — नि +वृत् +क्तिन्। युवति: — युवन् +ति ।इस श्लोक में स्रग्धरा छन्द है।

महात्मा भर्तृहरि अधम ,मध्यम तथा उत्तम श्रेणी के पुरूषों की कार्य सम्पादन विधि पर प्रकाश डाल रहें हैं —

प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचै:
प्रारभ्य विघ्नविहिता विरमन्ति मध्या: ।
विघ्नै: पुन: पुनरपि प्रतिहन्यमाना:
प्रारब्धमुत्तमजना: न परित्यजन्ति ।। 27।।

अन्वय - नीचै: विघ्नभयेन न प्रारभ्यते खलु ,मध्या: प्रारभ्य विघ्नविहिता:विरमन्ति ,उत्तमजना: विघ्नै: पुन: पुन: प्रतिहन्यमाना: अपि प्रारब्धंकार्यं न परित्यजन्ति।

अनुवाद — नीच लोग विघ्नों के भय से कार्य प्रारम्भ ही नही करते हैं। मध्यम श्रेणी के लोग कार्य आरम्भ करके विघ्नों द्वारा प्रताडित होने पर विचलित होकर रूक जाते हैं ,परन्तु उत्तम श्रेणी के लोग विघ्नों के द्वारा बार बार आहत किये जाने पर भी प्रारम्भ किये कार्य को नहीं त्यागते हैं।

व्याख्या — इस श्लोक के अध्ययन से आप यह व्याख्या कर सकेंगे कि अधम कोटि के लोग तो विघ्नों के भय से कार्य आरम्भ ही नही करते मध्यम कोटि के लोग कार्य आरम्भ तो कर देते हैं किन्तु बारम्बार विघ्नों के आने पर रूक जाते हैं ,परन्तु उत्तम श्रेणी के लोग कार्य कीसफलता तक प्रयत्न करते हैं।

व्याकरणिक टिप्पणी — प्रकृति प्रत्यय — उत्तम — उत् +तमप् ।समास — उत्तमा: जना: इति उत्तमजना: (कर्मधारय)। अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार तथा वसन्ततिलका छन्द है।

सज्जन पुरूष अत्यन्त कठिन स्वभाव सिद्ध् सदाचार परम्परा का पालन करते हुए लोगों के उपदेशक एवं प्रमाण बन जाते हैं इस पर प्रकाश डालते हुए कवि कहतेहैं कि —

असन्तो नाभ्यर्थ्या: सुहृदपि न याच्य: कृशधन:
प्रिया न्याय्या वृतिर्मलिनमसुभंगेऽप्यसुकरम् ।
विपद्युच्चै: स्थेयं पदमनुविधेयं च महतां
सतां केनोद्दिष्टं विषममसिधाराव्रतमिदं ।।28

अन्वय— असन्त: नाभ्यर्थ्या:,कृशधन: सुहृदपि न याच्या:,प्रिया न्याय्यावृति:(समाश्रयणीया:) मलिनम् असुभंगे अपि असुकरम् , विपदिउच्चै: स्थेयं ,महतां च पदम् अनुविधेयम् ,इदं विषमम् असिधाराव्रतंसतां केन उपदिष्टम् ?

अनुवाद — असज्जनों से नहीं मांगना चाहिए इसी प्रकार स्वल्प धन वाले मित्र से भी नहीं मांगना चाहिए ,प्रिय न्याय युक्त जीविका का आश्रय लेना चाहिए ,प्राणनाश की सम्भावना होने पर भी निन्दनीय कर्म नहीं करने चाहिए ,विपत्ति में भी अधीन होकर (समुन्नत) रहना चाहिए और महापुरूषों के मार्ग का अनुसरण करना चाहिए। उस कठोर असिधारा व्रत सज्जनों को न जाने किसने उपदेश दिया है।

व्याख्या — इस श्लोक को पढकर आप यह विश्लेषित कर सकेगें कि सज्जन पुरूषोंको सन्मार्ग पर चलने के लिए किसी ने उपदेश नहींदिया अपितु वेस्वत: ही इस पर प्रवृत होते हैं।

व्याकरणिक टिप्पणी — कृशं धनं यस्य स: - कृशधन: (बहुब्रीहि समास) । शोभनं हृदयं यस्य स: - सुहृद् (बहुब्रीहि समास) । प्रकृति प्रत्यय - स्थेयं स्था +यत् । याच्य: याच्+ यत् । इस श्लोक में शिखरिणी छन्द है ।

स्वाभिमानी पुरूषों के स्वभाव का वर्णन करते हुए भर्तृहरि कहते हैं कि

क्षुत्क्षामोऽपि जराकृशोऽपि शिथिलप्राणोऽपि कष्टांदशा—

मापन्नोऽपि विपन्नदीधितिरपि प्राणेषु नश्यत्स्वपि ।

मत्तेभेन्द्र विभिन्न कुम्भपिशितग्रासैकबद्ध् स्पृह:

किं जीर्णं तृणमत्ति मानमहतामग्रेसर: केसरी ।। 29।।

अन्वय — क्षुत्क्षाम: अपि जराकृश: अपि शिथिलप्राण: अपि कष्टां दशां आपन्न: अपि विपिन्नदीधिति: अपि मत्तेभेन्द्र विभिन्नकुम्भपिशितग्रासैकबद्धस्पृह: मानमहताम् अग्रेसर: केसरी प्राणेषु नश्यत्सु अपि किं जीर्णं तृणम् अत्ति ।

अनुवाद – भूख से क्षीण भी, वृद्ध होने से जीर्ण-शीर्ण भी , बलहीन भी , कष्ट से युक्त दशा को प्राप्त भी, क्षीणकान्ति होकर भी, मदमत्तगजराज के विदीर्ण गण्डस्थलों के माँस के खाने में एकमात्र बँधी हुई इच्छा वाला और स्वाभिमानियों में अग्रगण्य सिंह प्राणों के नष्ट होने पर भी क्या सूखी घास खाता है ? अर्थात् कदापि नहीं ।

व्याख्या - इस श्लोक को पढ़कर आप यह बता सकेगें कि स्वाभिमानी पुरूषों का स्वभाव सिंह के समान होता है । सिंह भूखा भले ही मर जाय पर वह स्वाभिमानी होने के कारण कभी भी सूखी घास खाकर प्राण धारण नही करेगा । इसी प्रकार मानधनी मनुष्य भूख से व्याकुल होकर भी वृद्ध शिथिल एवं अति दु:खित होकर भी मरणकाल उपस्थित होने पर भी कभी किसी से याचना नहीं करेगा अर्थात् माँग कर नहीं खायेगा । स्वाभिमानी और वीर पुरूष प्राणसंकट उपस्थित होने पर भी स्वाभिमान और शौर्य को नहीं त्यागता ।

व्याकरणिक टिप्पणी — प्रकृति प्रत्यय – मत्त – मद् +क्त ।स्पृहा – स्पृह +अङ् +टाप् ।शिथिल प्राण: - शिथिला: प्राणा: यस्य स: (बहुब्रीहि) ।इस श्लोक में अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द है ।

क्षुद्र जीव की प्रवृत्ति उक्त मानधनी व्यक्ति के ठीक विपरीत होती है , इसी भाव को व्यक्त करते हुए भर्तृहरि कहते हैं –

स्वल्पस्नायुवसावसेकमलिनं निर्मांसमप्यस्थिकं ,

श्वालब्ध्वापरितोषमेति न तु तत्तस्य क्षुधाशान्तये ।

सिंहो जम्बुकमकंमागतमपि व्यक्तवा निहन्ति द्विपं ,

सर्व: कृच्छ्गतोऽपिवाञ्छति जन: सत्वानुरूपं फलम् ।। 30

अन्वय – श्वा स्वल्पस्नायुवसावशेषमलिनं निर्मांसम् अपि अस्थिकं लब्ध्वा परितोषम् एति तु तत् तस्य क्षुधाशान्तये न भवति सिंह: अंकम् आगतम् अपि जम्बुकं अपि त्यक्तवा द्विपंनिहन्ति कृच्छ्रगत: अपि सर्व: जन: सत्त्वानुरूपं फलं वाञ्छति।

अनुवाद – कुत्ता थोड़ी सी आँत और चर्बी के बचे हुए भाग से मैली तथा माँस रहित हड्डी के टुकड़े को पाकर भी सन्तुष्ट हो जाता है , यद्यपि यह उसकी भूख मिटाने का के लिए नहीं होती। सिंह गोद में आये हुए भी सियार को छोड़कर हाथी को मारता है। कष्ट में रहने पर भी सब लोग अपनी शक्ति के अनुरूप ही फल की इच्छा करते हैं।

व्याख्या – इस श्लोक को पढ़कर आप यह बता सकेगें कि मानधनी व्यक्ति संकटग्रस्त होकर भी वही वस्तु प्राप्त करना चाहेगा जो उसके बल पौरूष के अनुरूप होगी, कभी किसी तुच्छ वस्तु की इच्छा न करेगा। हंस या तो मोती ही चुगते हैं या भूखे ही मर जाते हैं सिंह या तो गजराजों को ही मार कर खाते हैं ,या भूखे ही मर जाते हैं क्योंकि वे मानी एवं शौर्यवान् होते हैं।

व्याकरणिक टिप्पणी प्रकृति प्रत्यय – लब्ध्वा - लभ् +क्त्वा। क्षुधा – क्षुध् + टाप्। इस श्लोक में शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

अभ्यास प्रश्न -1

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए –

क . ---------- से बढ़कर कोई शत्रु नहीं होता।

ख . ---------- कथय किं न करोति पुंसाम।

ग . भगवान ---------- प्रसन्न होने पर संसार के सभी कल्याणकारी पदार्थ प्राप्त होते हैं।

घ . प्रारभ्यते न खलु ---------- नीचै:।

ङ स्वाभिमानी पुरूषों का स्वभाव ---------- के समान होता है।

अभ्यास प्रश्न – 2

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर हाँ या नही में दीजिये –

(क) दुष्ट व्यक्ति सर्पों से अधिक घातक होते हैं। ( )

(ख) सत्संगति बुद्धि की जड़ता को दूर नहीं करती है। ( )

(ग) उत्तम श्रेणी के लोग कार्य की सफलता तक प्रयत्न करते हैं। ( )

(घ) सिंह सियार का शिकार कर सन्तुष्ट होता है। ( )

(ङ) सुखों की प्राप्ति के लिए भगवत् कृपा की आवश्यकता नहीं होती है। ( )

4.4 नीतिशतक श्लोक संख्या 31 से 40 तक

क्षुद्र और मानी व्यक्ति के स्वभाव में क्या अन्तर होता है यह इस श्लोक के अध्ययन से आप जान सकेगें –

लांगूलचालनमधरश्चरणावपातं ,
भूमौ निपत्य वदनोदरदर्शनं च।
श्वा पिण्डदस्य कुरूते गजपुंगवस्तु ,
धीरं विलोकयति चाटुशतैश्च भुङ्क्ते ।। 31

अन्वय – श्वा लांगूलचालनम् अध: चरणावपातम् भूमौ निपत्य वदनोदरदर्शनं च पिण्डदस्यपुरस्तात् कुरूते, गजपुंगव: तु धीरम् विलोकयति , चाटुशतै: च भुङक्ते।

अनुवाद – कुत्ता रोटी देने वाले के सामने पूँछ हिलाता है , नीचे चरणों पर गिरता है और पृथ्वी पर लेट कर मुख तथा पेट दिखलाता है किन्तु गजेन्द्र तो भोजन देने वाले के समक्ष गम्भीरतापूर्वक देखता है और सैकड़ों बार पुचकारने पर खाता है।

व्याख्या – इस श्लोक के अध्ययन से आप यह बता सकेगें कि दो प्राणियों के स्वभाव में कितनाअन्तर होता है कहाँ एक कुत्ते जैसा क्षुद्र प्राणी जो भोजन देने वाले व्यक्ति के समक्ष अपनी प्रसन्नता को अपने हाव-भावों से व्यक्त करता है और दूसरी तरफ स्वाभिमानी गजराज जो भोजन देने वाले व्यक्ति को बड़ी गम्भीरता से देखता है और अनुनय-विनय के बाद खाता है।

व्याकरणिक टिप्पणी – प्रकृति प्रत्यय निपत्य – नि+ पत् +क्त्वा +ल्यप् ।दर्शनम् - दृश् + ल्युट्। इस श्लोक में वसन्ततिलका छन्द है।

इस श्लोक को पढ़कर आप यह समझ सकेगें कि वही पुरूष धन्य है जिसके द्वारा वंश उन्नति को प्राप्त होता है –

परिवर्तिनि संसारे मृत: को वा न जायते।

स जातो येन जातेन याति वंश: समुन्नतिम् ।। 32

अन्वय – परिवर्तिनि संसारे क: न मृत: क: वा न जायते । स: जात: येन जातेन याति वंश:समुन्नतिम्

अनुवाद – इस परिवर्तनशील संसार में कौन नहीं मरता या कौन नहीं जन्म लेता है ?वस्तुत: वह उत्पन्न हुआ जिसके उत्पन्न होने से वंश उन्नति को प्राप्त करता है।

व्याख्या – मरना और मरकर पुन: उत्पन्न होना यह शाश्वत् नियम है लेकिन उसी पुरूष काजन्म सफल है जो अपने कुल की समुन्नति का कारण बनता है।

व्याकरणिक टिप्पणी – प्रकृति प्रत्यय – मृत: - मृ +क्त ।समुन्नतिम् – सम् + उत् + नम् (क्तिन्) भावे ।इस श्लोक में अनुष्टुप छन्द है।

समभाव - 'जातस्य हि ध्रुवो मृत्यु: ध्रुवं जन्म मृतस्य च '। " गीता"

मनस्वी पुरूष इस संसार में या तो उत्कर्ष के साथ जीता है या एकान्तवास के द्वारा शरीर त्याग को ही श्रेष्ठ मानता है। इसी भाव का आप इस श्लोक में अध्ययन करेगें –

कुसुमस्तबकस्येव द्वयी वृतिर्मनस्विन: ।

मूर्ध्नि वा सर्वलोकस्य शीर्यते वन एव वा ।। 33

अन्वय- मनस्विन: कुसुमस्तबकस्य इव द्वयी वृत्ति: अस्ति, सर्वलोकस्य मूर्ध्नि वा तिष्ठति ,वनेएव वा शीर्यते।

अनुवाद – पुष्प के गुच्छे के समान मनस्वी पुरूष की दो स्थितियाँ होती हैं, या तो वहसब लोगों के शिर पर रहता है अथवा वन में ही जीर्ण-शीर्ण हो जाता है।

व्याख्या – मनस्वी पुरूष का स्वभाव पुष्प जैसा होता है या तो वह देवताओं और राजाओं केशिर पर चढ़ता है अर्थात् सर्वोच्च स्थान पर पहुँचता या फिर अपनी डाल से स्वत टूट कर वन में ही गिर कर सूख जाता है।

व्याकरणिक टिप्पणी – प्रकृति प्रत्यय – वृत्ति: - वृत् +क्तिन् ।इस श्लोक में पूर्णोपमा अलंकार तथा अनुष्टुप छन्द है। महात्मा भर्तृहरि यह स्पष्ट करते हैं कि मनस्वी पुरूष मनस्वी के साथ ही शत्रुता करते हैं -

सन्त्यन्येऽपि बृहस्पतिप्रभृतय: सम्भाविता: पञ्चषा-
स्तान् प्रत्येष विशेषविक्रमरूची राहुर्न वैरायते।
द्वावेव ग्रसते दिवाकरनिशाप्राणेश्वरौ भास्वरौ
भ्रात: पर्वणि पश्य दानवपति: शीषविशेषाकृति: ।। 34।।

अन्वय – भ्रात: पश्य, बृहस्पतिप्रभृतय: अन्ये अपि पञ्चषा: सम्भाविता: (ग्रहा:) सन्ति, तान्प्रति एष: विशेष विक्रमरूचि: राहु न वैरायते । शीषविशेषाकृति: दानवपति: पर्वणिभास्वरौ दिवाकरनिशाप्राणैश्वरौ द्वौ एव ग्रसते।

अनुवाद - हे भाई ! देखो बृहस्पति आादि भी दूसरे पाँच छ: प्रतिष्ठित ग्रह है,परन्तु उनके प्रति यह विशेष पराक्रम में रूचि रखने वाला राहु बैर नहीं करता है । सिरमात्र से अवशिष्ट आकृतिवाला राहु पूर्णिमा और अमावस्या में प्रकाशयुक्त सूर्य और चन्द्रमा इन दोनों को ही ग्रसता है।

व्याख्या – राहु दानवेन्द्र होकर भी मानधनी एवं शौर्य सम्पन्न है, इसलिए वह बृहस्पति जैसे कम तेजस्वी ग्रहों पर अपना पराक्रम नहीं दिखाता अपितु अपने ही समान तेजस्वी एवं बलवान सूर्य और चन्द्र को ही ग्रसता है क्योंकि मानीजनों का ऐसा स्वभाव ही होता है। वह यह जानते हैं कि दुर्बल एवं हीन जनों से जीतने पर भी हार है और हार जाने पर तो हार है ही। अत: वे अपने ही समान पराक्रमी लोगों से ही बैर और युद्ध करते हैं।

व्याकरणिक टिप्पणी – प्रकृति प्रत्यय – विशेष – वि + शिष् + अच्। दिवाकर – दिवा +कृ +ट। इस श्लोक में अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

महापुरूषों का चरित्र अवर्णनीय होता है इसी बात को बताते हुए भर्तृहरि कहते हैं कि –

वहति भुवनश्रेणिं शेष: फणाफलकस्थितां ,
कमठपतिना मध्येपृष्ठं सदा स च धार्यते।
तमपि कुरूते क्रोडाधीनं पयोधिरनादरा-

दहह !महतां नि:सीमानश्चरित्रविभूतय: ।। 35

अन्वय – शेष: फणाफलकस्थितां भुवनश्रेणिं वहति स च कमठपतिना सदा मध्ये पृष्ठं धार्यते तम् अपि पयोधि: अनादरात् क्रोडाधीनं कुरूते अहह ! महतां चरित्रविभूतय: नि:सीमान:भवन्ति।

अनुवाद – शेषनाग अपने फनों के पटल पर स्थित पातालादि लोकों को धारण करते हैंऔर उन्हें कच्छपराज सदैव अपनी पीठ के बीच धारण करते हैं और उन कूर्मराज को भी समुद्र अनायास गोद में रख लेता है। अहो ! महापुरूषों के चरित्र की महिमा असीम होती है।

व्याख्या – शेषनाग अपने फनों पर चौदह लोकों को धारण किये हुए हैं फिर भी उन्हें भार नहींलगता और उससे भी अधिक आश्चर्य की बात यह है कि उन शेषनाग को कच्छपराज अपनी पीठ पर धारण किये हुए हैं, और सबसे बड़ा आश्चर्य तो इस बात का है कि उन दोनों को समुद्र अनायास ही अपनी गोद में धारण कर लेता है वस्तुत: महापुरूषों की सामर्थ्य की कोई

सीमा नहीं है।

व्याकरणिक टिप्पणी – प्रकृति प्रत्यय – मध्येपृष्ठं = पृष्ठस्य मध्ये इति मध्ये पृष्ठं (अव्ययी भाव समास)। इस श्लोक में अर्थान्तरन्यास अलंकार तथा हरिणी छन्द है। इस श्लोक में यह बताया गया है कि किसी भी परिस्थिति में औचित्य का परित्याग नहीं करना चाहिए –

वरं पक्षच्छेद: समदमधवन्मुक्तकुलिश-
प्रहारैरूद्गच्छद्बहुलदहनोद्गारगुरूभि: ।
तुषाराऽद्रे: सूनोरहह ! पितरिक्लेशविवरो
न चासौ सम्पात: पयसि पयसांपत्युरूचित: ।। 36

अन्वय – तुषाराद्रे: सूनो: उद्गच्छद् बहुलदहनोद्गारगुरूभि: समदमधवन्मुक्तकुलिशप्रहारै: पक्षच्छेदोवरम्। (किन्तु) अहह ! पितरि क्लेशविवशे (सति) पयसां पत्यु: पयसि असौ सम्पात:: ।

अनुवाद –हिमालय पर्वत के पुत्र मैनाक पर्वत का ऊपर उठती हुई प्रचुर अग्नि की लपटों से असह्य , मदयुक्त इन्द्र के द्वारा छोड़े गये वज्र के प्रहारों से पंखों का कट जाना अच्छा था , किन्तु खेद है कि अपने पिता के (वज्रप्रहारजनित) दु:ख से विह्वल होने पर (निजप्राणरक्षार्थ) समुद्र के जल में प्रवेश करना अर्थात् अपने प्राणों की रक्षा के लिये समुद्र में प्रवेश कर छिपना उचित नथा।

व्याख्या – इस श्लोक के अध्ययन के पश्चात् आप इस बात की व्याख्या कर सकेगें कि सामान्यत: तो मान शौर्यशाली जीव का अपने प्राण मात्र की रक्षा के लिए कहीं छिप जाना ही अयशस्कर होता है , पर पिता के दु:ख से विह्वल होने पर प्राणों की रक्षा के लिए कहीं छिप जाना तो और भी अधिक अयशस्कर होता है। यहाँ मैनाक के दृष्टान्त द्वारा मनुष्य की स्वार्थमयी नीच प्रवृत्ति को बतलाया गया है। सामान्यत: किसी को भी ऐसी प्रवृत्ति नहीं अपनानी चाहिये और मानशौर्यशाली धनी जन के लिए तो ऐसी प्रवृत्ति और भी निन्दनीय है।

व्याकरणिक टिप्पणी – प्रकृति प्रत्यय – मुक्त – मुच् +क्त ।तुषाराद्रे: - तुषारस्य अद्रि: तस्य (ष0त0) ।इस श्लोक में शिखरिणी छन्द है।

इस श्लोक में महाकवि भर्तृहरि इस सत्य को बता रहें हैं कि संसार में जड़ पदार्थ भी अपने अपमान को नहीं सहता है तो तेजस्वी पुरूष अपकार को किस प्रकार सहन करें –

यद्चेतनोऽपि पादै: स्पृष्ट: प्रज्वलति सवितुरिनकान्त: ।
तत्तेजस्वी पुरूष: परकृतनिकृतिं कथं सहते ।। 37 ।।

अन्वय– यद् अचेतन: अपि इनकान्त: सवितु: पादै: स्पृष्ट: प्रज्वलति तत् तेजस्वी पुरूष: परकृतनिकृतिं कथं सहते।

अनुवाद – जब अचेतन भी सूर्यकान्तमणि सूर्य की किरणों से छू जाने पर प्रज्वलित हो उठता है तो (चेतन) तेजस्वी पुरूष दूसरे के द्वारा किये गये अपमान को कैसे सह सकता है ? अर्थात् किसी भी प्रकार नहीं सह सकता है।

व्याख्या - तेजस्वी मनुष्य का यह स्वभाव होता है कि वह अपने से भी अधिक शौर्यशाली शत्रु के द्वारा किये गये अपमान को नहीं सह सकता है। तुच्छ एवं अति लघु होने पर भी सूर्यकान्तमणि सूर्य की किरणों के छूने से जलने लगता है क्योंकि शूरवीरों का यही स्वभाव होता है।

व्याकरणिक टिप्पणी – तेजस्वी – तेजस् +विनि । स्पृष्ट: - स्पृश् +क्त ।अचेतन: - न अस्ति चेतनं यस्य स: अचेतन: (बहुब्रीहि) । इस श्लोक में दृष्टान्त अलंकार तथा आर्या छन्द है।

इस श्लोक के अध्ययन से आप यह बता सकेगें कि केवल आयु ही तेज का कारण नहीं है -

सिंह शिशुरपि निपतति मदमलिनकपोलभित्तिषु गजेषु ।
प्रकृतिरियं सत्त्ववतां न खलु वयस्तेजसो: हेतु: ।। 38।।

अन्वय – सिंह: शिशु: अपि मदमलिनकपोलभित्तिषु गजेषु निपतति इयं सत्त्ववतां प्रकृति: वय:तेजस: हेतु: न खलु ।

अनुवाद – सिंहशावक अर्थात् बालक सिंह भी मद से मलिन गण्डस्थल वाले हाथियों पर झपटता है, तेजस्वियों का यह स्वभाव होता है । अवस्था तेज का कारण नहीं होती ।

व्याख्या – इस श्लोक को पढ़कर आप यह समझा सकेगें कि तेज एवं पराक्रम के लिए अवस्था कारण नहीं होती अपितु जन्मजात तेजस्वी जनों का ऐसा स्वभाव ही होता है कि वे उत्पन्न होते ही शौर्य प्रदर्शन करने लगते हैं । जैसे श्रीकृष्ण ने और सम्राट सिकन्दर ने भी अपने बाल्यकाल में बड़े-बड़े कार्य सम्पादित किए थे ।

व्याकरणिक टिप्पणी –प्रकृति – प्र +कृ +क्तिन् । निपतति – नि +पत् +लट् । इस श्लोक में आर्या छन्द है ।

इस श्लोक के अध्ययन से आप यह समझा सकेगें कि धन की महत्ता सर्वोपरि है –

जातिर्यातु रसातलं गुणगणैस्तत्राप्यधो गम्यतां
शीलं शैलतटात्पतत्वभिजन: सन्दह्यतां वह्निना ।
शौर्ये वैरिणि वज्रमाशु निपतत्वर्थोऽस्तु न: केवलं
येनैकेन बिना गुणास्तृणलवप्राया: समस्ता इमे ।। 39

अन्वय – जाति: रसातलं यातु गुणगणै: तत्र अपि अध: गम्यतां शीलं शैलतटात् पततु अभिजन: वह्निना सन्दह्यतां वैरिणिशौर्ये आशु वज्रं निपततु न केवलं अर्थ: अस्तु येन एकेन बिना इमे: समस्ता: गुणा: तृणलवप्राया: (भवन्ति)।

अनुवाद – जाति पाताल को चली जाये , गुणों का समूह उससे भी नीचे चला जाये , शील पर्वत के किनारे से गिर जाये , उच्च वंश अग्नि में जल जायें , शत्रु स्वरूप शौर्य पर शीघ्र वज्रपात हो जाये परन्तु हमारे पास केवल धन हो , जिस एक धन के बिना ये समस्त गुण तुच्छ तिनके के समान हो जाते हैं ।

व्याख्या – आप बता सकेगें कि धन के समक्ष समस्त गुण व्यर्थ हैं जिसके पास धन है उसके पास सग कुछ है ।

व्याकरणिक टिप्पणी – प्रकृति प्रत्यय – वैरिणि – वैर + इनि ।इस श्लोक में शार्दूलविक्रीडित छन्द है ।

धनहीन गुणी व्यक्ति अत्यन्त शोचनीय अवस्था को प्राप्त हो जाता है –

तानीन्द्रियाण्यविकलानि तदेव नाम ,
सा बुद्धिरप्रतिहता वचनं तदेव ।
अर्थोष्मणा विरहित: पुरूष स एव,

त्वन्यः क्षणेन भवतीति विचित्रमेतत् ।। 40

अन्वय – अविकलानि तानि इन्द्रियाणि , तदेव नाम, अप्रतिहता सा बुद्धिः , तदेव वचनम्।(किन्तु) अर्थोष्मणा विरहितः स एव तु पुरूषः क्षणेन अन्यो भवति , एतद् विचित्रम् ।

अनुवाद – विकार रहित वही इन्द्रियाँ है, वही नाम है , वही अकुण्ठित बुद्धि है, वही वाणीहै किन्तु धन की गर्मी से रहित वही मनुष्य क्षण भर में दूसरा ही हो जाता है ,यह आश्चर्य है ।

व्याख्या - इस श्लोक से आप यह समझ सकेंगें कि धनवान और निर्धन व्यक्ति की शारीरिकसंरचना में तो कोई अन्तर नही होता है किन्तु धनवान मनुष्य के इन्द्रियगण ,बुद्धि,कर्म आदि जैसे होते हैं वैसे ही निर्धन के भी क्यों न हो पर उनमें परस्पर अन्तरअवश्य हो जायेगा । अर्थात् धनवान को सब पहचानते हैं निर्धन को कोई नहीं यद्यपियह विचित्र बात है पर ऐसा ही होता है ।

व्याकरणिक टिप्पणी – प्रकृति प्रत्यय – प्रतिहता – प्रति + हन् +क्त + टाप् ।इस श्लोक में वसन्ततिलका छन्द है ।

अभ्यास प्रश्न – 3

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए –

क* सत्संगति से क्या लाभ है ?

ख * क्षुद्र और मानी व्यक्ति के स्वभाव में क्या अन्तर होता है ?

ग * धनहीन व्यक्ति की क्या स्थिति होती है ?

घ * स्वाभिमानी पुरूषों का स्वभाव कैसा होता है ?

अभ्यास प्रश्न – 4

निम्नलिखित श्लोक का अर्थ लिखिए –

कुसुमस्तबकस्येव द्वयी वृत्तिर्मनस्विनः ।

मूर्ध्नि वा सर्वलोकस्य शीर्यते वन एव वा ।।

सिंहः शिशुरपि निपतति मदमलिनकपोलभित्तिषु गजेषु ।

प्रकृतिरियं सत्त्ववतां न खलु वयस्तेजसोः हेतुः ।।

4.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप यह जान चुकें हैं कि विद्या का क्या महत्त्व है । जिस व्यक्ति के पास विद्या रूपी धन है उसे किसी भी आभूषण की आवश्यकता नहीं रहती। इसके साथ ही आप सामाजिक जीवनोपयोगी अनेक शिक्षाओं से परिचित हुए । सत्संगति के महत्त्व को जाना , स्वाभिमानी तथा मनस्वी पुरूषों के आचरण से परिचित हुए तथा धन के महत्त्व को समझा कि धन के अभाव में गुणों का अस्तित्व तुच्छ तिनके के समान हो जाता है जिसके पास धन है उस के पास सब कुछ है धनरहित अवस्था में वही मनुष्य बदल सा जाता है। इसके पश्चात् आप दया, क्षमा, शौर्य, उदारता, सत्संगति, विद्या आदि उत्कृष्ट गुणों के महत्व को जानकर तथा इसे अपने जीवन में उतार कर अपने जीवन को उच्च एवं सफल बना सकते हैं ।

4.6 शब्दावली

अनवद्याविद्या	निर्दोष विद्या
दुर्जनः	दुष्ट लोग
देहिनां	मनुष्यों में
दाक्षिण्यं	उदारता
शौर्यं	वीरता
पुसां	पुरूषों के लिए
अपाकरोति	दूर करती है

अवञ्चक:	न ठगने वाला
अनुपहतविधि:	समुचित विधि वाला
कृशधन:	स्वल्प धन वाले
केसरी	सिंह
अस्थिकं	हड्डी के टुकड़ों को
जम्बुक	सियार
सत्त्वानुरूपं	शक्ति के अनुरूप
लांगूलचालनं	पूँछ हिलाना
कुसुमस्तबक	पुष्प गुच्छ
भास्वरौ	प्रकाशयुक्त
कमठपतिना	कच्छपराज
पयोधि	: समुद्र
पक्षच्छेद:	पंखों का कट जाना
इनकान्त:	सूर्यकान्तमणि
मदमलिनकपोलभित्ति	मद से मलिन गण्डस्थल वाले
अप्रतिहता	अकुण्ठित
विशेषविक्रमरूच	विशेष पराक्रम में रूचि रखने वाला
परिवर्तिनि	परिवर्तनशी
जराकृश:	वृद्धावस्था केकारणक्षीण

4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

अभ्यास प्रश्न 1- क * क्रोध ख * सत्संगति ग * विष्णु घ * विघ्नभयेन ङ * सिंह ।

अभ्यास प्रश्न 2 – क * हाँ ख * नहीं ग * हाँ घ * नहीं ङ * नहीं ।

अभ्यास प्रश्न 3 - क * देखें श्लोक संख्या 23

ख* देखें श्लोक संख्या 30

ग* देखें श्लोक संख्या 40

घ* देखें श्लोक संख्या 29

अभ्यास प्रश्न 4 - 1* श्लोक संख्या 33 का अर्थ देखें।

2* श्लोक संख्या 38 का अर्थ देखें।

4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

श्री भर्तृहरिकृत नीतिशतकम् सम्पादक डा0 बाबूराम त्रिपाठी , महालक्ष्मी प्रकाशन आगरा – 2।
श्री भर्तृहरिकृत नीतिशतकम् , श्री कृष्णमणि त्रिपाठी , चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन37/ 117 गोपाल मन्दिर लेन , वाराणसी।

4.9 सहायक ग्रन्थ

श्री भर्तृहरिकृत नीतिशतकम् सम्पादक डा0 बाबूराम त्रिपाठी , महालक्ष्मी प्रकाशन आगरा – 2।

भर्तृहरि शतक, पं0 ज्वाला प्रसाद चतुर्वेदी , रणधीर बुक सेल्स प्रकाशन, 182 एस0 एन0 नगर हरिद्वार।

4.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. सत्संगति के महत्त्व पर प्रकाश डालिए।
2. स्वाभिमानी व्यक्ति के स्वभाव का वर्णन कीजिए।

इकाई 5 .नीतिशतकम् – श्लोक संख्या 41 से 60 तक

इकाई की रूपरेखा –

5•1 प्रस्तावना
5•2 उद्देश्य
5•3 नीतिशतकम श्लोक 41-50 तक (मूल पाठ, अनुवाद, व्याख्या, व्याकरणिक टिप्पणी)
5•4 नीतिशतकम् – श्लोक संख्या 51 से 60 तक
(मूलपाठ,अनुवाद, व्याख्या, व्याकरणिक टिप्पणी)
5•5 सारांश
5•6 शब्दावली
5•7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5•8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
5•9 सहायक पाठ्य सामग्री
5•10 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

नीतिशतक से सम्बन्धित यह पाँचवी एवं अन्तिम इकाई है। इससे पूर्व की इकाई के अध्ययन के बाद आप यह बता सकेगें कि दुष्ट एवं मूर्ख व्यक्ति का स्वभाव अथक प्रयासों के बाद भी परिवर्तित नहीं किया जा सकता है तथा विद्या का क्या महत्त्व है एवम् सत्संगति से क्या लाभ है। क्षुद्र एवं मनस्वी व्यक्ति में क्या अन्तर होता है।

प्रस्तुत इकाई में धन के महत्त्व का वर्णन किया गया है तथा धन की तीन गतियों के बारे में बताया गया है। धन के बिना मनुष्य के समस्त गुण व्यर्थ हो जाते हैं। अत: धनोपार्जन करना अत्यन्त आवश्यक है। इसके साथ ही इस इकाई में दान के महत्त्व पर भी प्रकाश डाला गया है। राजा को प्रजा का पालक होना चाहिए , राजनीति वेश्या के समान अनेक रूपों वाली होती है तथा राजसेवा अत्यन्त कठिन होती है। दुर्जन व्यक्ति के स्वभाव का वर्णन करते हुए यह बताया गया है कि किसी भी स्थिति में दुर्जन का साथ नहीं करना चाहिए।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप यह समझा सकेगें कि कभी भी अनुचित पात्र से याचना नहीं करनी चाहिए। अधिक धन होने पर दान करना चाहिए दान के द्वारा निर्धन हो जाना शोभादायक है। मनुष्य परिस्थितियों का दास होता है , परिस्थिति ही मनुष्य को छोटा-बड़ा बनाती है। कभी भी दुर्जनों का साथ नहीं करना चाहिए। सदैव सद् गुणों का अर्जन कर अपने जीवन को श्रेष्ठ बनाना चाहिए।

5.2 उद्देश्य -

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- बता सकेगें कि धन का क्या महत्त्व है।
- राजनीति की विविधरूपता का वर्णन कर सकेगें।
- सबसे याचना नहीं करनी चाहिए इस बात को समझा सकेगें।
- दुर्जनों और सज्जनों की मित्रता के स्वरूप को जान सकेगें तथा दोनों की मित्रता में क्या अन्तर होता है इसकी व्याख्या कर पायेंगें। दुर्जनों के स्वाभाविक गुणों की व्याख्या कर सकेगें।

5.3 नीतिशतकम् – श्लोकसंख्या 41 से 50 तक

गुणहीन धनवान पुरूषों की गणना भी गुणवान् के रूप में होती है अत: धन सर्वोपरि है इसी बात को बताते हुए भर्तृहरिकहते हैं कि –

यस्यास्ति वित्तं स नर: कुलीन: ,
स पण्डित: स श्रुतवान् गुणज्ञ: ।
स एव वक्ता स च दर्शनीय:
सर्वे गुणा: काञ्चनमाश्रयन्ति ।। 41

अन्वय – यस्य वित्तं अस्ति स नर: कुलीन: स पण्डित: स श्रुतवान् गुणज्ञ: स एव वक्ता स चदर्शनीय: सर्वे गुणा: काञ्चनम् आश्रयन्ति।

अनुवाद – जिसके पास धन है वह मनुष्य कुलीन है, वह पण्डित है, वह शास्त्रों का ज्ञाता है, गुणों को जानने वाला है, वही सुन्दर वक्ता है और वही दर्शनीय है क्योंकि समस्त गुण स्वर्ण का आश्रय लेते हैं।

व्याख्या - धनवान व्यक्ति ही सत्कुलोत्पन्न , विद्वान, बहुश्रुत, गुणग्राही, अच्छा वक्ता एवं सुन्दर(दर्शनीय) माना जाता है क्योंकि धनवान के ही आश्रय में ये सभी गुण रहते हैं। अत: मनुष्य को गुणों के अर्जन की चिन्ता न करके धनार्जन ही करना चाहिए क्योंकि धन आते ही ये सभी गुण अपने आप आ जायेंगें।

व्याकरणिक टिप्पणी – प्रकृति प्रत्यय – दर्शनीय – दृश् + अनीयर्। श्रुतवान् – श्रुत + मतुप् ।इस श्लोक में अतिशयोक्ति अलंकार तथा उपजाति छन्द है।

इस श्लोक में धन के विनाश के कारणों और प्रकारों का वर्णन किया गया है –

दौर्मन्त्र्यान्नृपतिर्विनश्यति यति: संगात् सुतो लालना –
द्विप्रोऽनध्ययनात् कुलं कुतनयाच्छीलं खलोपासनात्।
ह्रीर्मद्यादनवेक्षणादपि कृषि: स्नेह: प्रणासाश्रया-
न्मैत्री चाप्रणयात् समृद्धिरनयात्त्यागप्रमादाद्धनम ।। 42

अन्वय – **दौर्मन्त्र्यात्** नृपति: संगात् यति लालनात् सुत: अनध्ययनात् विप्र: कुतनयात् कुलखलोपासनात् शीलं मद्यात् ह्री: अनवेक्षणात् अपि कृषि: प्रवासाश्रयात् स्नेह: अप्रणयात्मैत्री अनयात् समृद्धि: त्यागप्रमादात् च धनं विनश्यति।

अनुवाद – अनुचित सलाह से राजा, आसक्ति से सन्यासी, पुत्र दुलार से, अध्ययन न करने से ब्राह्मण, कुपुत्र से वंश, दुष्टों के संसर्ग से शील, मदिरा के सेवन से लज्जा, देखभाल न करने से खेती, परदेश में निवास करने से स्नेह, प्रेम के अभाव से मित्रता, अनीति से समृद्धि और व्यय में असावधानी से धन नष्ट हो जाता है।

व्याख्या – इस श्लोक को पढ़कर आप यह जान पायेगें कि यदि राजा को मन्त्रियों के द्वारा उचित सलाह न दिये जाने पर उसका राज्य तक नष्ट हो जाता है। आसक्ति के कारण योगी और अत्यधिक लाड़-प्यार किये जाने से पुत्र , देखभाल के अभाव में खेती तथा खर्च में लापरवाही से धन नष्ट हो जाता है।

व्याकरणिक टिप्पणी – प्रमाद – प्र +मद् +घञ् ।समृद्धि: - सम् +ऋध् +क्तिन्। इस श्लोक में शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

धन की तीन गति होती है इसी बात का वर्णन करते हुए भर्तृहरि कहते हैं -

दानं भोगो नाश स्तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य।
यो न ददाति न भुङ्क्ते तस्य तृतीया गति भवति ।। 43

अन्वय – दानम् भोग: नाश: इति वित्तस्य तिस्र गतय: भवन्ति य: न ददाति न भुङ्क्ते तस्यतृतीया गति भवति।

अनुवाद – दान, उपभोग और नाश धन की ये तीन गति होती हैं, जो न दान करता है और न उपभोग करता है उसकी तीसरी गति अर्थात् नाश होता है।

व्याख्या – जो व्यक्ति न कभी किसी को दान करता है और न स्वयं उसका उपभोग करता है

उसका सम्पूर्ण धन नष्ट हो जाता है क्योंकि उत्तम, मध्यम, और अधम भेद सेधन की उक्त तीन ही गति होती है। धन को सत्पात्र को दान देना ही उसकी प्रथम उत्तम गति है और उसका उपभोग करना द्वितीय मध्यम गति है तथा चोर आदि के द्वारा उसका हरण कर लेना उसकी तीसरी अधम गति है। अत: मनुष्य को चाहिए कि वह अपने धन का सदुपयोग दान देकर करे।

व्याकरणिक टिप्पणी – प्रकृति प्रत्यय – भोग: - भुज् +घञ् ।दानम् – दा +ल्युट्। इस श्लोक में आर्या छन्द है।

दान के द्वारा निर्धन हो जाना भी प्रशंसनीय होता है इस बात को कई उदाहरणों के द्वारा आप इस श्लोक के अध्ययन से जान सकेगें –

मणि: शाणोल्लीढ़: समरविजयी हेतिदलितो ,
मदक्षीण: नाग: शरदि सरिदाश्यानपुलिना।
कलाशेषश्चन्द्र: सुरतमृदिता बालवनिता ,
तनिम्ना शोभन्ते गलितविभवाश्चार्थिषु नरा: ।। 44

अन्वय– शाणोल्लीढ़:मणि:,हेतिदलित:समरविजयी,मदक्षीण:नाग:,शरदि आश्यानपुलिनासरित्, कलाशेष: चन्द्र:, सुरतमृदिता बालवनिता, अर्थिषु गलितविभवा: नरा: च तनिम्नाशोभन्ते।

अनुवाद – सान पर खरादी (घिसी) हुई मणि , शस्त्रों से विक्षत योद्धा, मद से क्षीण हाथी,शरद् ऋतु में सूखे पुलिन प्रदेशों वाली नदी , कला मात्र से अवशिष्ट चन्द्रमा, सुरतकालीन मर्दन से शिथिल हुई युवती और याचकों के विषय में (दान से) धन से रहित हुए मनुष्य अपनी क्षीणता से ही शोभा पाते हैं।

व्याख्या - अर्थात् शान पर घिसा हुआ हीरा , शस्त्रों से विक्षत शूरवीर योद्धा , मदस्राव से क्षीणहोने पर भी हाथी ,सूखे हुए सैकत प्रदेश वाली शरदकालीन नदियाँ ,एक कलामात्र केशेष रहने पर भी द्वितीया का चन्द्रमा तथा रतिकालीन मर्दन से शिथिल नवयुवती भी शोभासम्पन्न लगती है। इसी प्रकार याचकों को दान देते-देते जिसका सब धन नष्ट हो गया है ऐसे लोग अपनी धनक्षीणता से ही अधिक शोभा पाते हैं।

व्याकरणिक टिप्पणी –क्षीण: - क्षि +क्त । अर्थिषु – अर्थ +णिनि ।इस श्लोक में दीपक अलंकार तथा शिखरिणी छन्द है।

परिस्थिति ही मनुष्य को लघु तथा गुरू बनाती है। धनाभाव तथा धनसदभाव काल की अवस्था का वर्णन करते हुए महात्मा भर्तृहरि कहते हैं कि –

परिक्षीण: कश्चित् स्पृहयति यवानां प्रसृतये,
स पश्चात् सम्पूर्ण: कलयति धरित्रीं तृणसमाम्।
अतश्चानेकान्ता गुरूलघुतयार्थेषु धनिना –
मवस्था वस्तूनि प्रथयति च संकोचयति च ।। 45

अन्वय – कश्चित् परिक्षीण: यवानां प्रसृतये स्पृहयति, स पश्चात् सम्पूर्ण: धरित्रीं तृणसमांकलयति, अत: च अर्थेषु गुरूलघुतया अनैकान्त्यात् धनिनाम् अवस्थां वस्तूनि प्रथयति च संकोचयति च।

अनुवाद – कोई निर्धन मनुष्य मुट्ठी भर जौ के लिए लालायित होता हे, बाद में वही धनीहोने पर पृथ्वी को तृण के समान तुच्छ समझता है। इसलिए धन के सम्बन्ध में छोटा-बड़ा के विषय में

अव्यवस्था होने के कारण धनियों की अवस्था ही वस्तुओं को बड़ी तथा छोटी बनाती है।

व्याख्या - इस श्लोक के द्वारा आप यह समझ सकेगें कि किसी भी वस्तु का अपना मूल्य नहीं होता परिस्थितियाँ ही मनुष्य को छोटा और बड़ा बनाती हैं। जिसके पास आज धन नहीं है कुछ समय बाद वही धनसम्पन्न हो जाने पर ऐश्वर्यवान् कहा जाने लगता है। जब व्यक्ति निर्धन होता है तो रोटी का ण्क टुकड़ा भी उसके लिए बहुमूल्य होता है और जब वही मनुष्य धनाढ्य हो जाता है तो पृथ्वी को भी तिनके के समान तुच्छ समझने लगता है। धनावस्था और निर्धनता ही मनुष्य की दृष्टि में वस्तुओं को छोटा और बड़ा बनाती देती है।

व्याकरणिक टिप्पणी – गुरूलघुतया – गुरू च लघुचेति (द्वन्द्व समास)। इस श्लोक में शिखरिणी छन्द है। राजा को सम्बोधित करता हुआ कवि उसके लिए अर्थ साधन का उपाय बताते हुए कहता है –

राजन् दुधुक्षसि यदि क्षितिधेनु मेनां,
तेनाद्य वत्समिव लोकममुंपुषाण।
तस्मिंश्च सम्यगनिशं परिपोष्यमाणे
नानाफलं फलति कल्पलतेव भूमि ।। 46

अन्वय – राजन् यदि एनां क्षितिधेनुं दुधुक्षसि तेन अद्य अमुं लोकं वत्सम् इव पुषाण तस्मिन् च अनिशं सम्यक् परिपुष्यमाणे भूमि: कल्पलता इव नाना फलं फलति।

अनुवाद – हे राजन् ! यदि इस पृथ्वी रूपी गाय को दुहना चाहते हो तो इस समय बछड़े के तुल्य इस प्रजा वर्ग का पालन करो। उस प्रजावर्ग के नित्य भली-भाँति पालन किये जाने पर पृथ्वी कल्पलता की तरह अनेक प्रकार के फलों को देती है।

व्याख्या–इस श्लोक में राजा को यह नीतिज्ञान दिया गया है कि राजा के धन वैभव की वृद्धिप्रजाजनों से ही होती है यदि राजा अपनी प्रजा का सम्यक् देखभाल करता है और वेपरिपुष्ट एवं सुखी रहते हैं तो राजा इस पृथ्वी से स्वेच्छानुकूल जितना चाहे उतना धन प्राप्त कर सकता है।

व्याकरणिक टिप्पणी – पुषाण – पुष् धातु लोट् लकार मध्यम पुरूष ए0व0। परिपुष्यमाणे – परि+पुष्+यक्+शानच्। इस श्लोक में उपमा अलंकार तथा वसन्ततिलका छन्द है। इस श्लोक में राजनीति की विविधरूपता का वर्णन किया गया है –

सत्याऽनृता च परूषा प्रियवादिनी च
हिंस्रा दयालुरपि चार्थपरा वदान्या।
नित्यव्यया प्रचुरनित्यधनागमा च
वारांगनेव नृपनीतिरनेकरूपा ।। 47

अन्वय – नृपनीति: वारागंना इव सत्या अनृता च परूषा प्रियवादिनी च हिंस्र दयालु: अपि अर्थपरा वदान्या च नित्यव्यया प्रचुरनित्यधनागमा च अनेक रूपा भवति।

अनुवाद – राजनीति वेश्या के समान कभी सत्य बोलने वाली , कभी झूठ बोलने वाली , कभी कठोरभाषिणी, कभी मधुर वचन बोलने वाली, कभी क्रूर, कभी दयायुक्त ,कभी धनलोलुप, कभी अत्यधिक दानी, कभी नित्य खर्च करने वाली, कभी नित्य धन प्राप्त करने वाली इस प्रकार अनेक रूपों वाली होती है।

व्याख्या – राजनीति बहुरूपिणी होती है इसी बात को इस श्लोक में समझाया गया है । राजनीति की तुलना वेश्या से की गई है जिस प्रकार वेश्या लोगो को अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए विविध रूप बनाती है उसी प्रकार राजनीति भी लोगों पर शासन करने के लिए और अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिए कभी कोपवृद्धि कभी सत्यभाषी कभी असत्यभाषी कभी कपटपूर्ण व्यवहार करती है । वस्तुत: राजा या राजनीति निपुण व्यक्ति एक समान नीति से राज्य को नहीं चला सकता उसके लिए उसे कूटनीति का सहारा लेना पड़ता है ।

व्याकरणिक टिप्पणी – प्रकृति प्रत्यय – वदान्या – वद्+आन्य +टाप् । प्रियवादिनी – प्रिय +वद् +णिनि +ङीप । इस श्लोक में उपमा अलंकार तथा वसन्ततिलका छन्द है ।

इस श्लोक के अध्ययन से आप यह बता सकेगें कि किन छ: गुणों से युक्त राजा आश्रय के योग्य होता है –

आज्ञा: कीर्ति: पालनं ब्राह्मणानां दानं भोगो मित्रसंरक्षणं च ।
येषामेते षड् गुणा न प्रवृत्ता: कोऽर्थतेषां पार्थिवोपाश्रयेण ।। 48।।

अन्वय – पार्थिव: येषां आज्ञा कीर्ति: ब्राह्मणानां पालनं दानं भोग: मित्रसंरक्षणं च एते षड्गुणा:न प्रवृत्ता: तेषाम् उपाश्रयेण क: अर्थ: ?

अनुवाद – हे राजन् ! जिन राजाओं में आज्ञा (शासन करने की शक्ति), कीर्ति, ब्राह्मणों कापालन, दान, भोग और मित्रों की रक्षा करना, ये छ: गुण विद्यमान नहीं है ,उनका आश्रय लेने से क्या लाभ ।

व्याख्या – इस श्लोक के अध्ययन के बाद आप यह व्याख्या कर सकेगें कि कि राजाओं में यदि ये छ: गुण होते हैं तभी प्रजाजन उसकी सेवा करते हैं अन्यथा नहीं, अत: यदि राजाप्रजाजनों से सेवा पाता है तो उसे इन गुणों से विशिष्ट होना चाहिए।

व्याकरणिक टिप्पणी – प्रकृति प्रत्यय – कीर्ति: - कृत् + क्तिन्।((दानं – दा +ल्युट् । इस श्लोक में शालिनी छन्द है। कवि का अभिमत है कि जो भाग्य में लिखा होता है वही प्राप्त होता है –

यद्धात्रा निजभालपट्टलिखितं स्तोकं महद्वा धनं ,
तत्प्राप्नोति मरूस्थलेऽपि नितरां मेरौ ततो न धिकम् ।
तद्धीरो भव वित्तवत्सु कृपणां वृत्तिं वृथा मा कृथा:
कूपे पश्य पयोनि धावपि घटोगृह्णाति तुल्यं जलम् ।। 49

अन्वय – धात्रा स्तोकं महत् वा यद् धनं निजभालपट्टलिखितं तद् मरूस्थले अपि नितरां प्राप्नोति मेरौ तत: अधिकं न तद् धीर: भव वित्तवत्सु कृपणां वृत्तिं वृथा मा कृथा: पश्य कूपे पयोनिधौ अपि घट: तुल्यं जलं गृह्णाति ।

अनुवाद – ब्रह्मा ने थोड़ा या अधिक जो धन अपने ललाट (भाग्य) में लिख दिया है उसे मनुष्य रेगिस्तान में भी अवश्य प्राप्त कर सकता है और उससे अधिक सुमेरू पर्वत पर भी नहीं पा सकता है इसलिए धैर्यशाली बनो । धनिकों के प्रति व्यर्थ में दीन वृत्ति मत धारण करो । देखो ! कुयें और समुद्र में भी घड़ा बराबर जल ग्रहण करता है ।

व्याख्या – इसका आशय यह है कि ब्रह्मा ने जिस मनुष्य के भाग्य में जितना धन लिख दिया है उससे ज्यादा या उससे कम उसे नहीं प्राप्त होता है चाहें वह सुमेरू पर्वत पर ही क्यों न चला जाय । इसलिए मनुष्य को धैर्यशाली होना चाहिए तथा धनवानों के सामने धन के लालच से अपनी

दीनता प्रकट नहीं करनी चाहिए क्योंकि घड़ा चाहे कुयें में जाये या अथाह जलसागर में उसे जल तो उतना ही मिलेगा जितना जलग्रहण करने के लिए उसे बनाया गयाहै। उसी प्रकार मनुष्य को धन उतना ही मिलेगा जितना उसके भाग्य में लिखा है।

व्याकरणिक टिप्पणी – प्रकृति प्रत्यय –महान व्यक्ति याचकों के दीन वचनों को सुने बिना ही याचकों को दान देते हैं। इसी भाव का वर्णन इस श्लोक में किया गया है –

त्वमेव चातकाधारोऽसीति केषां न गोचरः।
किमम्भोदवरास्माकं कार्पण्ययोक्तिं प्रतीक्षसे ।। 50।।

अनुवाद – हे श्रेष्ठ मेघ ! तुम ही चातकों के आधार हो, यह किसे ज्ञात नहीं है ? फिर तुम हमारे दीन वचनों की क्यों प्रतीक्षा कर रहे हो

व्याख्या – चातको का एकमात्र प्राणाधार मेघ ही होता है यह बात सभी लोग जानते हैं। इसलिए हे मेघ तुम हमारी याचना की प्रतीक्षा क्यों कर रहे हो अर्थात् बिना माँगें ही तुम हमें जलबिन्दु प्रदान करो। तात्पर्य यह है कि दाता को याचकों के दीन वचनों की प्रतीक्षा किये बिना ही दान देना चाहिए।

व्याकरणिक टिप्पणी – प्रति +ईक्ष् +लट्। चातकानाम् आधारः इति चातकाधारः (तत्पुरूष समास)। इस श्लोक में अनुष्टुप छन्द है।

अभ्यास प्रश्न – 1

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

क* समस्त गुण ---------- का आश्रय लेते हैं।
ख* धन की ---------- गति होती है।
ग* दान के द्वारा ---------- हो जाना भी प्रशंसनीय होता है।
घ* नानाफलं फलति ---------- भूमि।
ङ* राजनीति ---------- के समान अनेक रूपों वाली होती है।

अभ्यास प्रश्न – 2

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए।

क* किन गुणों से युक्त राजा आश्रय के योग्य होता है ?

ख* धन की कौन सी तीन गति होती है ----------

ग* धन का क्या महत्व है लिखिए ?

5.4 नीतिशतक श्लोक संख्या(51 से 60 तक)

हर एक के सामने याचना नहीं करनी चाहिए इसी भाव को व्यक्त करते हुए भर्तृहरि कहते हैं कि –

रे रे चातक ! सावधानमनसा मित्र ! क्षणं श्रूयतां –
मम्भोदा बहवो हि सन्ति गगने सर्वेऽपि नैतादृशा: ।
केचिद् वृष्टिभिरार्द्रयन्ति वसुधां गर्जन्ति केचिद् वृथा
यं यं पश्यसि तस्य तस्य पुरतो मा ब्रूहि दीनं वच: ।। 51

अन्वय – **रे रे** मित्र चातक सावधानमनसाक्षणं श्रूयताम् , गगने हि बहव: अम्भोदा: सन्ति ,सर्वेऽपि एतादृश: न । केचिद् वृष्टिभि: वसुधाम् आर्द्रयन्ति , केचिद् वृथा गर्जन्ति(अत:) यं यं पश्यसि तस्य तस्य पुरत: दीनं वच: मा ब्रूहि ।

अनुवाद – हे मित्र चातक ! सावधानमन से क्षण भर के लिए सुनो , आकाश में बहुत सेमेघ हैं परन्तु सभी एक समान नहीं है । कुछ वर्षा से पृथ्वी को गीला कर देतेहैं और कुछ निरर्थक गरजते हैं । अत: जिस जिस को देखते हो उसके आगे दीनवचन मत बोलो ।

व्याख्या – इससे आप समझेगें कि संसार के सभी लोग उदार नहीं होते हैं अत: सबसे याचनानहीं करनी चाहिए । उदार व्यक्ति के सामने दीन वचन कहने से तो इष्ट पूर्ति हो सकती है पर कृपण व्यक्ति से याचना करने से कोई लाभ न होगा । उसी प्रकार आकाश में सभी मेघ बरसने वाले नही होते हैं। इसलिए पपीहे को सावधान करते हुए कवि कहता है कि हर किसी मेघ के आगे दीन वचन मत कहो ।

व्याकरणिक टिप्पणी - पुरत: - पुर +तस् ।सावधानश्च तत् मनश्च , तेन सावधानमनसा (तत्पुरूष समास) । इस श्लोक में अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार तथा शार्दूलविक्रीडत छन्द है ।

दुर्जनों के नैसर्गिक लक्षणों का वर्णन करते हुए कवि कहता है –

अकरूणत्वमकारणविग्रह:
परधने परयोषिति च स्पृहा ।
सुजनबन्धुजनेष्वसहिष्णुता ,
प्रकृति सिद्धमिदं हि दुरात्मनाम् ।। 52

अन्वय – अकरूणत्वम् अकारणविग्रह: परधने परयोषिति च स्पृहा सुजन बन्धुजनेषु असहिष्णुता, इदं दुरात्मनां प्रकृतिसिद्धं हि ।

अनुवाद – निर्दयता , अकारण झगड़ा करना , दूसरे के धन की तथा दूसरे की स्त्री को पाने की इच्छा करना , तथा सज्जनों एवं बन्धुओं के प्रति असहनशीलता ये लक्षण दुर्जनों में स्वभाव से ही प्राप्त होते हैं ।

व्याख्या - अर्थात् दुर्जनों में उपरोक्त दुर्गण जन्मजात होते हैं उन्हें इनको सीखना नहीं पड़ता ।अत: धनी एवं विद्यालंकृत होने पर भी दुर्जन परिहेय ही होता है।

व्याकरणिक टिप्पणी - प्रकृति प्रत्यय – सहिष्णुता – सह +इष्णुच् +तल +टाप् ।इस श्लोक में द्रुतविलम्बित छन्द है ।इस श्लोक से आप यह जानेगें कि दुष्ट पुरूष का स्वभाव ऐसा होता है कि वह गुणों में भी दोष निकाला करता है –

जाड्यं ह्रीमति गण्यते व्रतशुचौदम्भ:शुची कैतवं ,
शूरे निर्घृणता मुनौ विमतिता दैन्यं प्रियालापिनी।
तेजस्विन्यवलिप्तता मुखरता वक्तर्यशक्ति: स्थिरे
तत्को नाम गुणो भवेत्स गुणिनां यो दुर्जनैर्नाङ्कत: ।। 53

अन्वय – ह्रीमति जाड्यं , व्रतशुचौ दम्भ: , शुचौ केतवम् , शूरे निर्घृणता , मुनौ विमतिता ,प्रियालापिनी दैन्यम् , तेजस्विनी अवलिप्तता , वक्तरि मुखरता , स्थिरे अशक्ति: गण्यते , तत् गुणिनां स: क: नाम गुण: य: दुर्जनै: न अंकित: भवेत्।

अनुवाद - लज्जाशील में जड़ता , व्रतों से पवित्र पुरूष में दम्भ , पवित्र अन्त:करण में कपट , वीर में निदर्यता , मुनि में बुद्धिहीनता , प्रिय बोलने वालों में दीनता ,तेजस्वी में घमण्ड , वक्ता में वाचालता और स्थिरचित्त पुरूष में सामर्थ्य का अभाव मानतें हैं। तो गुणवानों का वह कौन सा गुण है , जिसे दुष्टों ने दोष नहीं कहा है।

व्याख्या – दुष्ट व्यक्ति का स्वभाव ही ऐसा होता है कि वे सज्जनों के सद् गुणों की भी निन्दाकरते हैं,वे लज्जाशील व्यक्ति को मूर्ख कहते हैं ,व्रतादि से परिशुद्ध व्यक्ति को पाखण्डी कहते हैं , पवित्रात्मा को कपटी और शूरवीर को निर्दयी कहते हैं इस प्रकार सज्जनों के अनेकानेक गुणों को वे दोष कहते हैं। किसी कवि ने कहा है –

दोष लगावत मुनिन को , जाको हृदयमलीन।
धरमी को दम्भी कहे , छमियन को बलहीन ।।

व्याकरणिक टिप्पणी - प्रकृति प्रत्यय – प्रियालापिनी – प्रिय +आ +लप् +णिनि ।मुखरता – मुख +र् +तल् +टाप्। इस श्लोक में शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

विद्या सम्पन्न भी दुर्जन पुरूष सर्वथा परिहरणीय है इसी भाव को व्यक्त करते हुए भर्तृहरि कहते है कि -

दुर्जन: परिहर्तव्यो विद्ययाऽलंकृतोऽपि सन्।
मणिना भूषित: सर्प: किमसौ न भयंकर: ।। 54।

अन्वय – विद्यया अलंकृत: अपि सन् दुर्जन: परिहर्त्तव्य: , मणिना भूषित: सर्प: असौ किम् नभयंकर:।

अनुवाद – विद्या से विभूषित होते हुए भी दुष्ट पुरूष को त्याग देना चाहिए। मणि से विभूषित होते हुए भी क्या यह सर्प भयंकर नही होता।

व्याख्या – अर्थात् सर्प में नागमणि होती है इतनी सुन्दर मणि होने पर भी स्वभावत: वह दूसरों को दु:ख पहुँचाने वाला और विषैला होने के कारण भयानक भी होता है। उसी प्रकारकिसी विद्वान व्यक्ति को देखकर सहसा उस पर विश्वास नहीं करना चाहिए क्योंकि दुर्जन विद्या से सुशोभित होने पर भी दूर रहने योग्य होता है।

व्याकरणिक टिप्पणी - प्रकृति प्रत्यय – अलंकृत: - अलम् +कृ +क्त ।भयंकर: - भय + कृ +अश् । इस श्लोक में दृष्टान्त अलंकार तथा अनुष्टुप छन्द है ।

इस श्लोक के अध्ययन से आप यह समझ सकेगें कि हमेशा सद् गुणों का अर्जन तथा दुर्गुणों का परित्याग करना चाहिए–

लोभश्चेदगुणेन किं पिशुनता यद्यस्ति किं पातकै: ,
सत्यं चेत्तपसा च किं शुचि मनो यद्यस्ति तीर्थेन किम् ।
सौजन्य यदि किं गुणै: सुमहिमा यद्यस्ति किं मण्डने: ,
सद्विद्या यदि किं धनैरपयशयो यद्यस्ति किं मृत्युना ।। 55 ।

अन्वय – लोभ: चेत् (अस्ति तर्हि) अगुणेन किम् , यदि पिशुनता अस्ति पातकै: किम् , सत्यंचेत् तपसा च किम् , यदि मन: शुचि अस्ति तीर्थेन किम् , यदि सौजन्य गुणै: किम्यदि सुमहिमा अस्ति मण्डनै: किम् , यदि सद् विद्या धनै: किम् , यदि अपयश:अस्तिमृत्युना किम् ।

अनुवाद – यदि लोभ है तो अन्य दुर्गुणों से क्या प्रयोजन , यदि चुगलखोरी है तो अन्य पापों से क्या प्रयोजन , सत्य है तो तपस्या का क्या प्रयोजन , यदि मन पवित्र है तो तीर्थ से क्या प्रयोजन , यदि सज्जनता है तो गुणों से क्या प्रयोजन , यदि सुन्दर महिमा है तो आभूषणों का क्या प्रयोजन , यदि अच्छी विद्या है तो धन से क्या प्रयोजन , यदि अपकीर्ति है तो मृत्यु से क्या प्रयोजन ?

व्याख्या – कवि का भाव यह है कि मनुष्य को श्लोक में वर्णित सत्य, तप पवित्र मन ,सज्जनता , महिमा , सद्विद्या आदि सद् गुणों को ही मनुष्य को अर्जित करनाचाहिए पिशुनता अपयश आदि दुर्गुणों को नहीं ।

व्याकरणिक टिप्पणी - प्रकृति प्रत्यय – पिशुनता – पिशुन + तल् + टाप् । लोभ: - लुभ् + घञ् । इस श्लोक में शार्दूलविक्रीडित छन्द है ।

इस श्लोक में किसी अनुभवीजन के द्वारा कष्टदायक सातशल्यों का वर्णन प्रस्तुत किया गया है । भर्तृहरि का मन्तव्य है कि राजसभागत भी दुर्जन सबके मन को कष्ट ही देता है –

शशी दिवसधूसरो गलित यौवना कामिनी
सरो विगतवारिजं मुखमनक्षरं स्वाकृते: ।
प्रभुर्धनपरायण: सततदुर्गत: सज्जनों
नृपांगणगत: खलो मनसि सप्त शल्यानि मे ।। 56 ।

अन्वय– दिवसधूसर: शशी,गलितयौवना कामिनी,विगतवारिजं सर:,स्वाकृते अनक्षरं मुखं धनपरायण: प्रभु: , सतत दुर्गत: सज्जन: ,नृपागंणगत: खल: इति सप्त शल्यानि मे मनसि सन्ति।

अनुवाद – दिन में निस्तेज चन्द्रमा , यौवन रहित कामिनी , कमलविहीन सरोवर , सुन्दरआकृति वाले पुरूष का विद्याविहीन मुख ,धन का लोभी स्वामी ,सदा दुर्दशाग्रस्त सज्जन और राज्यसभा में रहने वाला दुर्जन , ये सात मेरे मन में काँटें की भाँति चुभते हैं अर्थात् अति कष्टप्रद हैं ।

व्याख्या – आप यह बता सकेगें कि परमात्मा द्वारा रचित इस जगत में सभी वस्तुओं में कुछ न कुछ दोष अवश्य देखें जाते हैं और ये ही दोष कवि के मन को कष्ट देते हैं । चन्द्र, कामिनी , सरोवर और सुन्दर पुरूष की शोभा क्रमश: तेज, कमल, और विद्या से होती है । इनके अभाव में ये देखने वालों को कष्टप्रद ही होते हैं । इसी प्रकार विद्वान की धनाभाव से दुर्दशा , धनलोभी राजा और राजसभावर्ती दुर्जन भी इसी प्रकार कष्टप्रद होते हैं ।

व्याकरणिक टिप्पणी - प्रकृति प्रत्यय – शशि – शश् + इनि। गलित यौवनं यस्या: सा गलितयौवना (बहुब्रीहि समास)। इस श्लोक में पृथ्वी छन्द है।

इस श्लोक के अध्ययन से आप क्रोधी राजा के स्वरूप को समझ सकेगें –

न कश्चिच्चण्डकोपानामात्मीयो नाम भूभुजाम्।
होतारमपि जुह्वानं स्पृष्टो दहति पावक: ।। 57

अन्वय – चण्डकोपानां भूभुजाम् कश्चित् अपि आत्मीयो नाम न (अस्ति हि) पावक: स्पृष्ट:जुह्वानं होतारं अपि दहति।

अनुवाद – अत्यधिक क्रोध वाले राजाओं का कोई भी व्यक्ति अपना नहीं होता जैसे अग्निछू जाने पर हवन करने वालो को भी जला देती है।

व्याख्या – इसके अर्थ से आप यह बता सकेगें कि कभी भी क्रोधी राजा का विश्वास नहीं करनाचाहिए। जैसे अग्नि हवन करने वाले को भी जला देती है उसी प्रकार क्रोधी राजाअपने बन्धुजनों को भी नहीं छोड़ता उन्हें भी दण्ड देता है।

व्याकरणिक टिप्पणी - प्रकृति प्रत्यय – स्पृष्टा: - स्पृश् + क्त। होतारम् – हू + तृच्।

इस श्लोक में दृष्टान्त अलंकार तथा अनुष्टुप छन्द है।

राजसेवा कितनी दुष्कर होती है इसको बताते हुए कवि भर्तृहरि कहते हैं कि –

मौनान्मूक: प्रवचनपटुर्वाचको जल्पको वा
धृष्ट: पार्श्वे भवति च वसन्दूरतोऽप्यप्रगल्भ:।
क्षान्त्या भीरूयदि न सहते प्रायशो नाभिजात:

सेवाधर्म: परमगहनो योगिनामप्यगम्य: ।। 58

अन्वय – मौनात् मूक: प्रवचनपटु: वाचक: जल्पक: वा पार्श्वे च वसन् धृष्ट: भवति दूरत: अपिअप्रगल्भ: क्षान्त्या भीरू: यदि न सहते प्रायश: अभिजात: न सेवाधर्म: परमगहन:योगिनाम् अपि अगम्य: अस्ति।

अनुवाद – सेवक मौन रहने से गूंगा , बोलने में कुशल होने पर वाचाल या बातूनी, समीपरहने पर ढीठ , दूर रहने पर बेवकूफ, क्षमाशील होने से डरपोक तथा यदि सहनशील नहीं है तो प्राय: अकुलीन कहा जाता है , इस प्रकार सेवाधर्म अत्यन्त कठिन है और योगियों के लिए भी अगम्य है।

व्याख्या - आशय यह है कि राजाओं अथवा धनीजनों की सेवा करना अत्यन्त कठिन कार्य है। सब कुछ अच्छा करता हुआ भी सेवक सदा निन्द्य एवं उपहास का पात्र होता है ।यदि वह शालीनतावश चुप रहे तो गूंगा, अच्छा वक्ता होने पर वाचाल , सदैव पास रहने पर निर्भीक , क्षमाशील होने पर डरपोक और अपने तिरस्कार को न सहने पर नीचकुलोत्तपन्न माना जाता है। त्रिकालदर्शी योगीजन भी इस सेवाधर्म का निर्वाह नहीं कर सकते अतएव सेवाधर्म को गहन एवं अगम्य कहा गया है।

व्याकरणिक टिप्पणी - प्रकृति प्रत्यय – गम्य: - गम् +यत्।वसन् – वस् + शतृ।

इस श्लोक में मन्दाक्रान्ता छन्द है।

इस श्लोक को पढ़कर आप यह जानेगें कि नीच पुरूष के सम्पर्क से सुख की प्राप्ति सम्भव नही है

उद्भासिताऽखिलखलस्य विश्रृंखलस्य

प्राग्जातविस्तृतनिजाधमकर्मवृत्तेः ।

दैवादवाप्तविभवस्य गुणद्विषोऽस्य

नीचस्य गोचरगतैः सुखमाप्यते कैः ।। 59

अन्वय- उद्भासिताऽखिलखलस्य विश्रृंखलस्य प्राग्जात विस्तृत निजाधमकर्मवृत्तेः दैवात् अवाप्तविभ-वस्य गुणद्विषः अस्य नीचस्य गोचरगतैः कैः सुखम् आप्यते ।

हिन्दी अनुवाद – समस्त दुष्टों को प्रकाशित करने वाली, स्वेच्छाचारी , पहले किये गये अपने नीच कर्मों को व्यवहार में लाने वाले , भाग्य से धन पा जाने वाले तथा गुणों से वैर रखने वाले इस नीच पुरूष के सम्पर्क में आये हुए कौन से लोग सुख पाते हैं ? अर्थात् कोई भी सुख नहीं पाता ।

व्याख्या - आशय यह है कि जो दुर्जनों का ही आश्रयदाता है , गुणद्वेषी है, जो भाग्यवश सम्पत्ति शाली बन गया है ऐसे दुष्ट धनीजन की सेवा में कोई भी सुख से नहीं रह सकता अतःऐसे नीच की सेवा नहीं करनी चाहिये ।

व्याकरणिक टिप्पणी - प्रकृति प्रत्यय – वृत्तिः - वृत् + क्तिन् । अवाप्त – अव + आप् + क्त । इस श्लोक में वसन्ततिलका छन्द है ।

इस श्लोक में आप सज्जनों और दुर्जनों की मित्रता के स्वरूप से परिचित होगें तथा दोनों की मित्रता में क्या अन्तर है यह भी जान पायेंगें–

आरम्भगुर्वी क्षयिणी क्रमेण लघ्वी पुरा वृद्धिमती च पश्चात् ।
दिनस्य पूर्वार्धपरार्धभिन्ना छायेव मैत्री खलसज्जनानाम् ।। 60

अन्वय - खलसज्जनानाम् मैत्री दिनस्य पूर्वार्धपरार्धभिन्ना छाया इव आरम्भगुर्वी क्रमेण क्षयिणी पुरा लघ्वी पश्चात् च वृद्धिमती (भवति) ।

अनुवाद – दुष्टों और सज्जनों की मित्रता दिन के पूर्वार्ध और उत्तरार्ध में भिन्न स्वरूप वाली छाया के समान प्रारम्भ में लम्बी फिर धीरे-धीरे क्षीण होने वाली तथा पहले छोटी और बाद में बढ़ने वाली होती है ।

व्याख्या – तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार दोपहर से पूर्व की छाया प्रारम्भ में लम्बी होती है और फिर क्रमशः क्षीण हो जाती है उसी प्रकार दुर्जनों की मित्रता प्रारम्भ में बढ़ जाती है फिर क्रमशः घटती रहती है परन्तु दोपहर बाद की छाया प्रारम्भ में छोटी होती है और फिर क्रमशः बढ़ती जाती है उसी प्रकार सज्जनों की मित्रता प्रारम्भ में कम रहती है और फिर धीरे-धीरे बढ़ती जाती है ।

व्याकरणिक टिप्पणी - प्रकृति प्रत्यय – गुर्वी – गुरू + ङीप् ।क्षयिणी – क्षि + णिनि + ङीप् । इस श्लोक में उपमा अलंकार तथा उपजाति छन्द है ।

अभ्यास प्रश्न – 3

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर हाँ या नही में दीजिये –

(क) जिसके पास धन है वही मनुष्य कुलीन है । ( )

(ख) धन की चार गति होती है। ( )
(ग) राजसभागत दुर्जन भी सबके मन को कष्ट देता है। ( )
(घ) सेवाधर्म अत्यन्त सरल है। ( )
(ङ) नीच पुरूष के सम्पर्क से सुख प्राप्त होता है। ( )

अभ्यास प्रश्न – 4

(क) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए –
(ख) विद्यालंकृत होने पर भी ---------- परिहेय ही होता है।
(ग) होतारं अपि जुह्वानं स्पृष्टो दहति ----------।
(घ) सेवा धर्म ---------- के लिए अगम्य है।
(ङ) नीच पुरूष के सम्पर्क से ---------- की प्राप्ति सम्भव नहीं है।
(च) मणिना भूषित: ---------- किमसौ न भयंकर:।

5.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप यह जान चुके हैं कि मनुष्य के जीवन में धन का क्या महत्व है क्योंकि धन के अभाव में मनुष्य के समस्त गुण व्यर्थ हो जाते हैं और उसका समाज में कोई स्थान नहीं रहता है। इसलिए मनुष्य को धनार्जन करके दान आदि के द्वारा उसका सदुपयोग कर अपने जीवन को सफल बनाना चाहिए।आपने यह भी जाना कि राजाओं में किन गुणों का होना आवश्यक है , राजा को प्रजापालक होना चाहिए तथा राजनीति विविधरूपों वाली होती है और दुर्जन व्यक्ति का कभी साथ नहीं करना चाहिए। इन महत्त्वपूर्ण शिक्षाओं के अध्ययन के द्वारा आप जीवन के लिए क्या उपयोगी है और क्या अनुपयोगी है यह समझा सकेगें।

5.6 शब्दावली –

गुणज्ञ:	गुणों को जानने वाला
ह्री:	लज्जा
कुतनय	कुपुत्र
तिस्र:	तीन
शाणेल्लीढ़:	सान पर खरादी गयी
समरविजयी	युद्धविजेता
तृणसमां	तिनके के समान
क्षितिधेनुं	पृथ्वी रूपी गाय को
नृपनीति:	राजनीति
वारांगना	वेश्या
परूषा	कठोर
चातकाधार:	पपीहे के आधार
अम्भोदा:	बादल
अकरूणत्वं	निर्दयता

अकारणविग्रह:	बिना कारण के झगड़ना
असहिष्णुता	असहनशीलता
जाड्यं	जड़ता
कैतवं	कपट
पिशुनता	चुगलखोरी
शशि	चन्द्रमा
विगतवारिजं	कमलहीन
पावक:	अग्नि
जुह्वानं	हवन करने वाले
मूक:	गूंगा
गुणद्विष:	गुणों से द्वेष करने वाले
क्षयिणी	क्षीण होने वाली

5.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

अभ्यास प्रश्न 1 – क* स्वर्ण ख* तीन ग* निर्धन घ* कल्पलतेव ङ* वेश्या।

अभ्यास प्रश्न 2 – क* श्लोक संख्या 48 देखें।

ख* श्लोक संख्या 42 देखें।

ग* श्लोक संख्या 41 देखें।

अभ्यास प्रश्न 3 - क* हाँ ख* नहीं ग* हाँ घ* नहीं ङ* नहीं।

अभ्यास प्रश्न 4 - क* दुर्जन ख* पावक: ग* योगियों घ* सुख ङ* सर्प:।

5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –

श्री भर्तृहरिकृत नीतिशतकम् सम्पादक डा0 बाबूराम त्रिपाठी , महालक्ष्मी प्रकाशन आगरा – 2।
श्री भर्तृहरिकृत नीतिशतकम् , श्री कृष्णमणि त्रिपाठी , चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन37/ 117 गोपाल मन्दिर लेन , वाराणसी।

5.9 सहायक ग्रन्थ –

श्री भर्तृहरिकृत नीतिशतकम् सम्पादक डा0 बाबूराम त्रिपाठी , महालक्ष्मी प्रकाशन आगरा – 2।
भर्तृहरि शतक , ज्वाला प्रसाद तुर्वेदी ,रणधीर बुक सेल्स प्रकाशन, 182 एस0एन0 नगर हरिद्वार

5.10 निबन्धात्मक प्रश्न –

1.धन के महत्त्व की व्याख्या कीजिए।

2. दुर्जन के स्वभाव का वर्णन कीजिए।

द्वितीय खण्ड

लघुसिद्धान्तकौमुदी – संज्ञा एवं सन्धि प्रकरण

इकाई 6. संज्ञा प्रकरण

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 संज्ञा प्रकरण:अर्थ एवं प्रतिपाद्य
6.4 संज्ञा प्रकरण के विषय
6.4.1 चतुर्दश माहेश्वर सूत्र
6.4.2 प्रत्याहार
6.4.3 उच्चारण स्थान एवं प्रयत्न
6.4.4 संहिता संज्ञा
6.4.5 संयोग संज्ञा
6.4.6 पद संज्ञा
6.5 सारांश
6.6 शब्दावली
6.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
6.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची
6.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
6.10 निबन्धात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

नीतिशास्त्र, व्याकरण एवं अनुवाद से सम्बन्धित यह सातवीं इकाई। इस पहली की इकाई के अध्ययन के बाद आप बता सकेंगे कि संस्कृत व्याकरण क्या है? इसका उद्भव एवं विकास किस प्रकार हुआ ? इसके संस्थापक आचार्य कौन-कौन हैं ? व्याकरण के प्रयोजन क्या हैं।

संस्कृत व्याकरण का सामान्य परिचय जानने के बाद आप इसके प्रथम अध्याय संज्ञा प्रकरण का विधिवत् अध्ययन कर पाएंगे, जिसमें मुख्य रूप से चौइह माहेश्वर सूत्र प्रत्याहार एवं उसे बनाने की प्रक्रिया, वर्णो के उच्चारण स्थान एवं प्रयत्न तथा कुछ संज्ञाओं का सुव्यवस्थित विश्लेषण प्रस्तुत है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप संज्ञा के मुख्य विषयों से समझा सकेंगे तथा आधुनिक भाषा विज्ञान के ध्वनि संबंधी चिन्तनों का सम्यक विश्लेषण कर पाएंगे।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप -

1.संस्कृत व्याकरण के आधारभूत चौदह माहेश्वर सूत्रों को जान पाएंगे।

2. प्रत्याहार के द्वारा वैज्ञानिक विधि से अल्प प्रयास एवं अल्प वर्णो का प्रयोग करते हुए अधिक से अधिक वर्णो का ज्ञान प्राप्त कर उसका प्रयोग कर पाएंगे।

3. दैनिक जीवन में प्रयोग करने वाले वर्णों का उच्चारण स्थान एवं प्रयत्न जान पाएंगे।

4. वर्णों के उच्चारण स्थान एवं प्रयत्नों को जानकर आधुनिक भाषा विज्ञान के ध्वनियों का ठीक प्रकार से विश्लेषण कर पाएंगे।

5. संस्कृत ध्वनियों के ज्ञान से अन्य भाषा में प्रयुक्त ध्वनियों का सहजता पूर्वक ज्ञान प्राप्त कर सकेगें।

6.अन्य भाषा में प्रयुक्त होने वाले ध्वनियों में आये विकृतियों को भलीभॉति जान पाएंगे।

7. स्वर एवं व्यन्जन वर्णो का भलीभॉति ज्ञान प्राप्त कर लेने से भाषा के आधारभूत तत्त्वों को समझ पाएंगे।

8. स्वर संधि प्रकरण में इस ज्ञान का अधिकाधिक प्रयोग करते हुए उचित लाभ ले पाएंगे।

6.3 संज्ञाप्रकरण अर्थ एवं प्रतिपाद्य

व्याकरण अध्ययन से सम्बन्धित यह प्रथम इकाई है। जैसा कि आप जानते हैं कि संज्ञा का अर्थ अभिधान या नाम है। जीवन का व्यवहार हो या अध्ययन का विषय, संज्ञा के बिना बात आगे

नहीं बढती । जिस प्रकार जन्म लेते ही संतान की संज्ञा निर्धारित हो जाती है, क्योंकि दैनिक जीवन में इसी नाम के आधार पर सभी प्रकार के क्रिया-कलाप निश्चित किये जाते हैं उसी प्रकार किसी शास्त्र के अध्ययन के लिये सर्वप्रथम इसके कुछ अंगभूत तत्त्वों की संज्ञा निर्धारित हो जाती है जिसके आधार पर अन्य अंग सुनियोजित रूप से अपने कार्यो में प्रवृत्त होते हैं। संस्कृत व्याकरण को पाणिनि ने सूत्रों में प्रस्तुत किया है । इस तथ्य को आप इसके पहले की इकाई में ठीक प्रकार से जान चुके हैं। यूत्र कस लक्षण संज्ञा प्रकरण के अन्त में बताया जाएगा । किन्तु सूत्र के छः प्रकारों-संज्ञा, परिभाषा, विधि, नियम, अतिदेश और अधिकार- में संज्ञा प्रथम प्रकार है । संस्कृत व्याकरण में प्रयुक्त होने वाले तकनीकी शब्दों (सवर्ण संज्ञा, संहिता संज्ञा, संयोग संज्ञा आदि) का नामकरण संज्ञा प्रकरण का मुख्य विषय है । इसके अतिरिक्त यहॉ उपयोगिता के अनुरूप चौदह माहेश्वर सूत्र, प्रत्याहार बनाने की विधि एवं प्रत्याहारों की संख्या, वर्णो का उच्चारण स्थान एवं प्रयत्न आदि का भी सम्यक् विवेचन प्रस्तुत है ।

6.4 संज्ञा प्रकरण के विषय

'मंगला चरण - लघुसिद्धान्तकौमुदी से '

नत्वा सरस्वतीं देवीं शुद्धां गुण्यां करोम्यहम् ।

पाणिनीय प्रवेशाय लघुसिद्धान्त कौमुदीम् ।।

अर्थ- मै वरदराजाचार्य शुद्ध और उत्तम गुणवाली सरस्वती देवी को प्रणाम करके पाणिनी मुनि के द्वारा बनाये हुए व्याकरण शास्त्र में (व्याकरण जिज्ञासु छात्रों के) प्रवेश के लिये लघुसिद्धान्तकौमुदी को बनाता हूॅ।

6.4.1 चतुर्दश माहेश्वर सूत्र

अइउण् । ऋलृक् । एओङ् । ऐऔच् । हयवरट् । लण् । ञमङणनम् । झभञ् । घढधष् । जबगडदश् । खफछठथचटतव् । कपय् शषसर् । हल् ।।

इति माहेश्वराणि सूत्राणि अणादि संज्ञा अर्थानि । ये महेश्वर की कृपा से प्राप्त सूत्र अण् आदि संज्ञाओं की सिद्धि के लिये हैं ।

एषामन्त्या इतः- इन चौदह सूत्रों के अन्त के वर्ण - ण् क् ङ्, च्,ट् ण्, म्, ञ्, ष्, श्, व्, य्, र्, एवं ल् – ये चौदह इत्संज्ञा वाले हैं ।

हकारादिष्वकार उच्चारणार्थः - हकार आदि में जो अकार है वह उच्चारण के लिये है ।

लण् मध्ये त्वित्संज्ञकः- लण् सूत्र में लकारोत्तरवर्ती अकार इत्संज्ञक है ।

ये चौदह सूत्र पाणिनि को महेश्वर (शिव) से प्राप्त हुए । अतः इनका नाम माहेश्वर सूत्र है । महेश्वरदागतानि प्रोक्तानि' इस विग्रह के अनुसार महेश्वर (शिव) से प्राप्त होने के कारण ये माहेश्वर

सूत्र या शिव सूत्र हैं। इसी बात को नन्दिकेश्वर काशिका में निम्नलिखित रूप से प्रस्तुत किया गया है-

नृत्तावसाने नटराजराजो ननाद ढक्कां नवपंच वारम्।

उद्धर्तुकामः सनकादिसिद्धानेतद्विमर्शे शिवसूत्रजालम् ।।1।।

अर्थात् सनक, सनन्दन, सनातन ,सनत्कुमार, पाणिनि आदि सिद्धजनो को, उद्धार करने की कामना वाले नटराज (महेश्वर) ने विचार-विमर्श कर कल्याणरूप सूत्र समूह की अभिव्यक्ति के लिए नृत्य के अन्त में डमरू बजाने के माध्यम से, उपदेश किया। पाणिनिशिक्षा में भी कहा गया है -

येनाक्षरसमाम्नायमधिगम्य महेश्वरात् । कृत्स्नं व्याकरणं प्रोक्तं तस्मै पाणिनये नमः ।।56।

अर्थात् जिसने महेश्वर से अक्षर समाम्नाय प्राप्त कर सम्पूर्ण व्याकरण शास्त्र का प्रवचन किया, उस पाणिनि को नमस्कार है।

अइउण् आदि चौदह सूत्रों का समाम्नाय कहते हैं। अक्षर समाम्नाय को वर्णसमाम्नाय के नाम से भी जाना जाता है। महेश्वर से प्राप्त उपर्युक्त चौदह सूत्रों के आधार पर ही पाणिनि ने 3978 सूत्रों का निर्माण किया एवं इन्ही के माध्यम से सम्पूर्ण व्याकरण शास्त्र को सुव्यवस्थित रूप में पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया।

वर्णों के अध्ययन से हमें पता चलता है कि पाणिनि से पहले वर्णमाला विद्यमान थी। पाणिनि ने परम्परा से प्राप्त वर्णमाला का यथावत् प्रयोग न कर उसे अन्य प्रकार से प्रस्तुत किया क्योंकि उसका मुख्य उद्देश्य था प्रत्याहार की सिद्धि । प्रत्याहार की सिद्धि के लिये वर्णमाला में दो परिवर्तन आवश्यक थे । पहला अनुबन्धों को जोड़ना तथा दूसरा वर्णों के प्रचलित क्रम में परिवर्तन लाना। अनुबन्ध इत्संज्ञा या इत्संज्ञा योग्य वर्णों को कहते हैं। इत्संज्ञा वाला वह व्यंजन वर्ण है जो प्रत्येक माहेश्वर सूत्र के अन्त में उपस्थित होता है। उपस्थित होते हुए भी उसकी अन्य वर्णो के साथ गणना नहीं होती, किन्तु अन्य वर्णो की गणना के लिये उसकी उपस्थिति अनिवार्य होती है।

यथा -'अइउण् इस माहेश्वर सूत्र में 'ण्' अनुबन्ध है। यहॉ अ इ तथा उ वर्णों की गिनती में ण् का स्थान नहीं है किन्तु इन वर्णो की गिनती के लिए 'ण्' का सूत्र के अन्त में रहना आवश्यक है।

दूसरी बात है कि पाणिनि ने पहले से विद्यमान वर्णमाला में वर्णों के क्रम को परिवर्तित कर उसे प्रस्तुत किया है। यथा ऐऔच्' के बाद 'हयवरट्' में य, व, र इत्यादि के द्वारा व्यंजनों की गणना शुरू की है। क,ख,ग इत्यादि से नहीं, जबकि परम्परा में क,ख,ग इत्यादि से व्यंजनों की गणना शुरू होती है। इसका मुख्य प्रयोजन है , जैसा कि ऊपर कहा गया है, प्रत्याहारों की सिद्धि । प्रत्याहारों की सिद्धि से ही व्याकरण की रचना एवं पाठकों को उसका ज्ञान सम्भव है।
उपर्युक्त दोनों बातों के आधार पर ही वर्णों का उपदेश सम्भव था। अतः पाणिनि ने परम्परा से प्राप्त वर्णमाला के रहते हुए भी पृथक् रूप से माहेश्वर सूत्र अण् आदि प्रत्याहार की सिद्धि के लिये

है। प्रत्येक सूत्र के अन्त में अनुबन्ध या इत् संज्ञक वर्ण है। क्योंकि सूत्रों की संख्या चौदह है, अतः अनुबन्धों की संख्या भी चौदह ही है। चौदह माहेश्वर सूत्रों में चौदह अनुबन्ध क्रमशः इस प्रकार हैं -ण् क् ङ्, च्,ट् ण्, म्, ञ्, ष्, श्, व्, य्, र्, एवं ल्। जैसा कि पहले संकेत किया गया है अनुबन्ध इत्संज्ञक होते है। व्याकरण की दृष्टि से उपदेश की स्थिति में जो अन्तिम हल् (व्यंजन) होता है इसकी इत् संज्ञा होती है।

'हलन्त्यम्' 1/3/3

उपदेशऽन्त्यं हलित्स्यात्। यथा- 'अ इ उ ण्- यह उपदेश है। इसमें आनेवाले अन्तिम वर्ण 'ण्' की इत्संज्ञा होती है। इसी प्रकार अन्य इत्संज्ञक वर्णों को भी जानना चाहिए।'उपदेश' शब्द का स्पष्टीकरण आवश्यक है। व्याकरण की परम्परा में पाणिनि, कत्यायन एवं पतञ्जलि- इन तीन मनीषियों के मुख से उच्चरित वर्ण समूह उपदेश कहलाता है- 'उपदेश आद्योच्चारणम्'। उपलब्ध उपदेशों को निम्नलिखित पद्य के माध्यम से बताया गया है-

धातु-सूत्र गणोणादि-वाक्य-लिङानुशासनम्।आगम-प्रत्ययादेशा उपदेशा-प्रकीर्तिताः।।

अर्थात् धातु, सूत्र गण, उणादि और लिंगानुशासन तथा इनके साथ आगम, प्रत्यय और आदेश ये सभी उपदेश कहलाते हैं। इन सभी का उच्चरण अर्थात् व्यावस्थापन पाणिनि ने किया। धातुपाठ, सूत्रपाठ (अष्टायायी), गणपाठ, उणादि पाठ और लिंगानुशासन ये पॉच मिलकर व्याकरण कहे जाते हैं। ये सभी पाणिनि के द्वारा रचित है। आगम, प्रत्यय तथा आदेश का परिचय बाद में दिया जाएगा।

सूत्रेष्वदृष्टं पदं सूत्रान्तरादनुवर्तनीयं सर्वत्र- सूत्रों में जो पद न दिखायी दे उसे दूसरे सूत्रों से ले आना चाहिये, सभी सूत्रों में।

प्रस्तुत प्रसंग में 'अ इ उ ण् ' आदि चौदह सूत्र सर्वप्रथम पाणिनि के द्वारा प्रस्तुत किये गये। अतः इनके अन्त में आनेवाले वर्ण अनुबन्ध कहलाते हैं। हम पहले पढ़ आये हैं कि माहेश्वर सूत्रों के अन्त में आने वाले वर्णों की गिनती नहीं होती है। यह केवल प्रत्याहार की सिद्धि के लिये है। व्याकरण की शब्दावली में उसे लोप संज्ञा कहा जाता है। जैसे-'अ इ उ ण्' के अन्त में आनेवाला अनुबन्ध 'ण्' की गिनती नहीं होती है। यह उपस्थित है किन्तु नहीं के बराबर है। दूसरे शब्दों में जिसका श्रवण प्राप्त है, फिर भी यदि उसका श्रवण नहीं होता तो उसे लोप संज्ञा कहते हैं -

अदर्शनं लोपः 1/1/6 प्रसक्तस्यादर्शनं लोपसंज्ञं स्यात्। प्रसक्त अर्थात् विद्यमान का अदर्शन होना लोप कहलाता है।

सूत्र - तस्य लोपः 1/1/9

तस्येतो लोपः स्यात्। यहॉ 'ण्' की लोप संज्ञा हैं। सार रूप में यह समझें कि सूत्र के अन्त में आने वाला हल् वर्ण अनुबन्ध एवं इत्संज्ञक है और इत्संज्ञक वर्ण का लोप होता है अर्थात् उपस्थित होने पर भी अन्य वर्णो के साथ उसकी गणना नहीं होती हैं। 'सूत्र' शब्द की व्याख्या बाद में की जाएगी।

हकारादिष्वकार उच्चारणार्थः - हकार आदि में जो अकार है वह उच्चारण के लिये है।

माहेश्वर सूत्र के विषय में यह भी जान लेना आवश्यक है कि पॉचवे सूत्र 'हयवरट्' के 'ह' से लेकर आगे के सभी वर्णो में 'अ' भी जुड़ा हुआ है। उसका प्रयोजन केवल इतना है कि 'ह्' आदि व्यंजनों का उच्चारण हो सके। क्योंकि व्यंजनों का उच्चारण बिना स्वर की सहायता के नहीं हो सकता । पतंजलि अपने भाष्य में इसका स्पष्ट उल्लेख करते हैं-**'न पुनरन्तरेणाचं व्यन्जनस्योच्चारणमपि सम्भवति' इति ।** अतः 'ह' आदि के उच्चारण के लिये स्वर का संयोग आवश्यक था। स्वरों में प्रथम होने के कारण 'अ' को ही सभी व्यंजनों के साथ जोड़ दिया गया है। इस प्रकार 'हयवरट्' से लेकर 'हल्' तक सभी सूत्रों में आने वाले व्यंजनों से संयुक्त स्वर 'अ' केवल उन-उन वर्णों के उच्चारण के लिये है। उसकी कोई अन्य उपयोगिता वहॉ नहीं है।

लण् मध्ये त्वित्संज्ञकः- लण् सूत्र में लकारोत्तरवर्ती अकार इत्संज्ञक है।

यहॉ एक अपवाद भी है। छठे सूत्र 'लण्' में 'ल् अ एवं ण्' ये तीन वर्ण हैं। 'ण्' इत्संज्ञक है। अतः उसकी गिनती नहीं होती है। अब शेष है 'ल्' के साथ संयुक्त 'अ'। यहॉ यह ध्यातव्य है कि 'ल' के साथ संयुक्त 'अ' केवल 'ल्' के उच्चारण के लिये ही नही है, अपितु उसका एक अन्य प्रयोजन भी है। वह है स्वयं इत्संज्ञक बनकर 'र' प्रत्याहार को सिद्धि करना। 'र' प्रत्याहार की सिद्धि एवं प्रयोजन के विषय में आगे बताया जाएगा। किन्तु ज्ञातव्य यह है कि 'लण्' में आनेवाला 'अ' केवल 'ल्' के उच्चारण के लिये ही नहीं, अपितु विशेष प्रयोजन से भी उपस्थित है। इसके आगे हम प्रत्याहार बनाने की विधि सीखेंगे।

6.4.2 प्रत्याहार

व्याकरण ज्ञान के लिये प्रत्याहार का ज्ञान अत्यावश्यक है। पाणिनि ने प्रत्याहार के माध्यम से सम्पूर्ण व्याकरण का ज्ञान सरलता पूर्वक प्रस्तुत कर दिया है। जैसा कि आप पहले पढ़ आये हैं कि इत्संज्ञा का फल उसका लोप होता है। किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि यह निरर्थक है। यह पूर्णतः सार्थक है, क्योंकि इसके द्वारा प्रत्याहार की सिद्धि होती है। ' प्रत्याह्रियन्ते संक्षिप्यन्ते वर्णा : यत्र स प्रत्याहारः' इस व्युत्पत्ति के अनुसार जिसमें संक्षेप किया जाय उसे प्रत्याहार कहते हैं। तात्पर्य यह है कि प्रत्याहार के माध्यम से हम बहुत सारे वर्णों को संक्षेप रूप से प्रस्तुत कर सकते हैं। यह एक ऐसी विधि है जो भाषा की दृष्टि से पूरी दुनियॉ में अनोखी है एवं आधुनिक भाषा चिन्तन को संस्कृत की देन है। प्रत्याहार बनाने की विधि के माध्यम से उसकी उपयोगिता को हम ठीक प्रकार से समझ सकते हैं। पाणिनि ने इसके लिये जिस सूत्र का विधान किया है वह इस प्रकार है-

सूत्र - आदिरन्त्येन सहेता 1/1/71 इस सूत्र का अर्थ वृत्ति के साथ इस प्रकार है-
अन्त्येने ता सहित आदिर्मध्यगानां स्वस्य च संज्ञा स्यात् । यथा 'अण्' इति अ इ उ वर्णानां संज्ञा । एवम् अच् अल्, हलित्यादयः। अर्थात् अन्त्य इत्संज्ञक वर्ण से युक्त आदि वर्ण, बीच के वर्णो की और अपनी भी संज्ञा का बोधक होता है। जैसे 'अण्' - यह 'अ इ उ' इन वर्णों की संज्ञा का बोधक है। इसी प्रकार अच्, अल्, हल् इत्यादि संज्ञायें भी समझनी चाहिए। उपर्युक्त सूत्र 'आदिरन्त्येन सहेता' प्रत्याहार विधायक है। इसे हम उदाहरण के माध्यम से ठीक प्रकार से समझ सकते हैं। यथा- 'अण्' प्रत्याहार। 'अण्' इसलिए प्रत्याहार है क्योंकि इसमें हम

अनेक वर्णों को संक्षेप रूप से प्रस्तुत कर देते हैं। सूत्र के अर्थ के अनुसार 'अण्' प्रत्याहार की सिद्धि के लिए आवश्यकता है, किन्तु 'अण्' प्रत्याहार में आने वाले वर्णों के साथ इसकी गिनती सम्भव नहीं है। इस प्रत्याहार की दृष्टि से हमने 'अ इ उ ण्' इस माहेश्वर सूत्र के प्रथम वर्ण 'अ' को लिया तथा अन्तिम वर्ण 'ण' को लेकर 'अण' बना दिया। सूत्र के अनुसार अन्तिम वर्ण 'ण्' के साथ आदि वर्ण 'अ' मध्य में आने वाले वर्ण 'इ उ' तथा अपनी अर्थात् स्वयं 'अ' की भी संज्ञा का बोधक है।

इसे एक बार फिर समझें। 'अण्' प्रत्याहार में अन्त्य इत् 'ण' के सहित आदि वर्ण हुआ 'अ'- इन दो अर्थात् 'अ' और 'ण्' के बीच में दो वर्ण 'इ, उ' आते हैं। इन दो अर्थात् 'इ, उ' और अपनी भी अर्थात् स्वयं 'अ' की भी संज्ञा 'अण्' हुई। तात्पर्य यह है कि 'अण्' से 'अ इ उ' इन तीन वर्णों का बोध होता है। यहॉ 'ण्' 'अण्' प्रत्याहार बनाने के लिये है, उसकी गणना 'अ इ उ' के साथ नहीं हुई। इसीलिए 'ण्' की लोप संज्ञा हुई अर्थात् उसकी उपस्थिति है, फिर भी वह नहीं है। यही लोप का फल है।

हम इसको दूसरे उदाहरण 'अच्' प्रत्याहार से भी जान सकते हैं। 'अच्' प्रत्याहार में प्रथम सूत्र 'अ इ उ ण्' का 'अ' एवं चतुर्थ सूत्र 'ऐ औ च्' का 'च्' है। आदिरन्त्येन सहेता' सूत्र के अनुसार अन्तिम वर्ण 'च' के सहित आदि वर्ण 'अ' बीच के आठ वर्ण 'इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ' के अनुसार अन्तिम वर्ण 'च्' के साथ अपना अर्थात् 'अ' का बोध कराता है। इस प्रकार 'अच्' प्रत्याहार में कुल नौ (9) वर्णों की 'अच्' संज्ञा हुई। यहॉ ध्यान रहे कि अन्तिम वर्ण 'च' अच् प्रत्याहार की सिद्धि के लिये आवश्यक हैं किन्तु अन्य वर्णों के साथ उसकी गिनती नही होती। अच् प्रत्याहार के अन्तर्गत सभी स्वरों का बोध हो जाता है ।

हम इसको तीसरे उदाहरण 'हल्' प्रत्याहार से भी जान सकते हैं। यहॉ हम पॉचवें माहेश्वर सूत्र 'हयवरट्' से 'ह' लेते हैं तथा चौदहवें माहेश्वर सूत्र 'हल्' से 'ल्' लेकर 'हल्' प्रत्याहार बनाते हैं। 'आदिरन्त्येन सहेता' सूत्र के अनुसार अन्तिम वर्ण 'ल्' के सहित आदि वर्ण 'ह' बीच के 33 वर्णो 'ह य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प ष स ह' के साथ अपना अर्थात् 'ह' का बोध कराता है। इस प्रकार 'हल्' प्रत्याहार में 34 ('ह' का प्रयोग दोबार है।) वर्ण होते हैं। यहॉ यह ध्यातव्य है कि 'हयवरट्' से लेकर 'हल्' तक के सूत्रों में आये अन्तिम वर्णो (अनुबन्ध या इत्संज्ञक वर्ण) को छोड़ कर ही अन्य वर्णों की संख्या निर्धारित करेंगे । यहॉ इत्संज्ञक वर्ण हैं- 'हयवरट्' में 'ट्' लण् में 'ण्' 'ञमड़णनम्' में 'म्' 'झभञ्' में 'ञ्', 'घढ़धष्' में 'ष्', 'जबगडदश्' में 'श्' 'खफछठथचटतव्' में 'व्' 'कपय्' में 'य्' 'शषसर्' में 'र्' एवं 'हल्'। इस प्रकार कुल इत्संज्ञक जिनकी गिनती नहीं की जानी है, की संख्या है दस (ट् ण् म् ञ् ष् श् व् र् एवं ल्)। यहॉ 'प्रत्याहार' शब्द का अर्थ 'संक्षेपीकरण' चरितार्थ होता है। हम 'हल्' प्रत्याहार के उच्चारण मात्र से उसके द्वारा तैंतीस वर्णों को जान लेते हैं। यदि प्रत्याहार विधि नहीं विकसित की जाती तो हमें तैंतीस वर्णों का अलग-अलग उच्चारण करना पड़ता। व्यञ्जन के सभी वर्ण 'हल्' प्रत्याहार के अन्दर समाविष्ट हैं।

इसी प्रकार 'अल्' प्रत्याहार भी बनाया जा सकता है। 'अल्' प्रत्याहार के अन्तर्गत स्वर एवं व्यंजन सभी वर्ण समाहित हो जाते हैं। 'अल्' प्रत्याहार को इस प्रकार बनाया जा सकता है।

इसमें प्रथम सूत्र से 'अ' तथा अन्तिम सूत्र से 'ल्' लेकर 'अल्' प्रत्याहार बनाते हैं। प्रत्येक सूत्र के अन्तिम वर्ण को छोड़ते हुए अन्य सभी वर्णों की गिनती करने पर इसके अन्तर्गत स्वर एवं व्यंजन दोनों प्रकार के वर्णों का बोध हो जाता है।

उपर्युक्त उदाहरणों को देखने एवं समझने के बाद ऐसा प्रतीत होता है कि पाठक गण प्रत्याहार बनाना अवश्य सीख गये होंगे। चौदह सूत्रों के आधार पर बयालीस प्रत्याहार बनते हैं जिनका उपयोग पाणिनि ने अपने व्याकरण शास्त्र में किया है। इन प्रत्याहारों को वर्ण गणना के साथ निम्नलिखित प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकता है-

प्रत्याहारों का निरूपण और उदाहरण

1. अण् - अ इ उ।

2. अक् - अ इ उ ऋ लृ।

3. अच् - अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ।

4. अट् - अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ ह य वर।

5. अण् - अ इउ ऋ लृ ए ओ ऐ औ ह य व र ल।

6. अम् - अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ ह य व र ल ञ म ङ ण न।

7. अश् - अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ ह य व र ल ञ म ङ ण न।

8. अल् - अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ ह य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ह।

9. इक् - इ उ ऋ लृ।

10. अच् - इ उ ऋ ऌ ए ओ ए औ।

11. इण् - इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ ह य व र ल।

12. उक् - उ ऋ लृ।

13. एङ् - ए ओ।

14. एच् - ए ओ ऐ औ।

15. ऐच् - ऐ औ।

16. हश् - ह य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द।

17. हल् - हश्-ह य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प

श ष स ह।

18. यण् - य व र ल।

19. यम् - य व र ल ञ म ङ ण न।

20-यञ् - य व र ल ञ म ङ ण न झ भ।

21. यय् - य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प।

22. यर् - य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग उ द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स।

23. वश् - व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द।

24. वल् - व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ह।

25. रल् - र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ह।

26. मय् - म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प।

27. ङम् - ङ ण न।

28. झष् - झ भ घ ढ ध।

29. झश् - झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द।

30. झय् - झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प।

31. झर् - झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स।

32. झल् - झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ह।

33. भष् - भ घ ढ ध।

34. जश् - ज ब ग ड द।

35. बश् - ब ग ड द।

36. खय् - ख फ छ ठ थ च ट त क प।

37. खर् - ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स।

38. छव् - छ ठ थ च ट त।

39. चय् - च ट त क प।

40. चर् - च ट त क प श ष स।

41. शर् - श ष स ।

42. शल् - श ष स ह ।

6.4.3. उच्चारण स्थान एवं प्रयत्न

अभी तक आपने माहेश्वर सूत्र के माध्यम से वर्णों एवं प्रत्याहारों का ज्ञान प्राप्त किया है । माहेश्वर सूत्र में अनुबन्धों या इत्संज्ञकों को छोड़कर कुल बयालीस वर्णों की गणना हुई है । इनमें नौ स्वर हैं तथा तैतीस व्यंजन हैं । नौ स्वरों में प्रथम पॉच (अ इ उ ऋ लृ) वे हैं जिनकी चर्चा अपेक्षित है, क्योंकि अन्य चार (ए ओ ऐ औ) केवल दीर्घ एवं प्लुत हैं । प्रथम पॉच स्वरों में 'लृ' को छोड़कर शेष चार 'अ, इ, उ, ऋ की ह्रस्व, दीर्घ तथा प्लुत संज्ञा होती है । यथा-'अ' जब एक मात्रा वाला होता है तो ह्रस्व कहलाता है, द्वि मात्रा से युक्त होने पर दीर्घ (आ) कहलाता है तथा तीन मात्रा से युक्त हो जाने पर प्लुत (अ३) कहलाने लगता है । व्यंजन की आधी मात्रा होती है-

एकमात्रो भवेद् ह्रस्वो द्विमात्रो दीर्घ उच्यते ।

त्रिमात्रस्तु प्लुतो ज्ञेयो व्यंजनं चार्धमात्रिकम् ।।

इस प्रकार ह्रस्व रूप से 'अ', दीर्घ रूप से 'आ' तथा प्लुत रूप से 'आ३' -ये 'अ' के तीन भेद हो जाते हैं । इसी प्रकार 'इ, उ एवं ऋ' के भी तीन-तीन भेद होते हैं । संस्कृत भाषा में 'लृ' स्वर का दीर्घ नहीं होता । अतः 'लृ' के दो भेद ही सम्भव हैं- ह्रस्व एवं प्लुत । पाणिनि ने इस बात को निम्नलिखित सूत्र के माध्यम से कहा हैं-

सूत्र - 'ऊकालो ह्रस्व दीर्घ प्लुतः' 1/2/27

उश्च ऊश्च उ३श्च वः । वां काल इव कालो यस्य सोऽच् क्रमाद् ह्रस्वदीर्घप्लुतसंज्ञः स्यात् ।

अर्थात् एकमात्र, द्विमात्र और त्रिमात्र इन तीनों ऊकारों के उच्चारण काल के समान उच्चारण काल है जिसका वह स्वर क्रमशः ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत संज्ञावाला है । दूसरे शब्दों में एक मात्रा वाले स्वर की ह्रस्व, दो मात्रा वाले स्वर की दीर्घ तीन मात्रा वाले स्वर की प्लुत संज्ञा होती है । यहॉ सूत्र में केवल ' उ ' को लेकर ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत के स्वरूप् को प्रस्तुत किया गया है । आप सभी इसी के आधार पर अन्य स्वरों के भेद को समझने का प्रयास करें ।

सूत्र - उच्चैरुदात्त:1- 1- 29 ।। तालु आदि के सखण्ड स्थानों के उपरि भाग से जिस अच् की उत्पत्ति होती है उसको उदात्त कहते हैं ।

सूत्र - नीच्चैरनुदात्त: 1- 1- 30 ।। कण्ठ तालु आदि के सखण्ड स्थानों के नीच के भाग से जिस अच् की उत्पत्ति होती है उसको अनुदात्त कहते हैं ।

सूत्र - समाहार: स्वरित: 1- 1- 30 ।। कण्ठ तालु आदि के स्थानों के मध्य भाग से जिस अच् की उत्पत्ति होती है उसको स्वरित कहते हैं ।

उपर्युक्त विवरण के आधार पर यह निष्कर्ष है कि ' अ, इ, उ तथा ऋ '- ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत होते हैं ; ' लृ ' केवल ह्रस्व और प्लुत होता है तथा 'ए , ओ, ऐ एवं औ केवल दीर्घ और प्लुत होते हैं । **स नवविधोऽपि प्रत्येकमनुनासिकानुनसिकत्वाभ्यां द्विधा। जो** ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत वह

अनुनासिक अननुनासिक भेद से दो दो प्रकार के होते हैं इससे पहले हमने स्वर के भेदों को समझा है।

अब अनुनासिक वर्ण कौन हैं सूत्र के माध्यम से जानेगें -

सूत्र - मुखनासिकावचनोऽनुनासिक:1-1- 8 ।।

मुखसहितनासिकयोच्चार्यमाणो वर्णोऽनुनासिकसंज्ञ: स्यात्। जिस वर्ण का उच्चारण नासिका से होता है उसे अनुनासिक कहते हैं।

तदित्थम् - अ इ उ ऋ एषां वर्णनां प्रत्येकमष्टादश भेदा: अ इ उ ऋ इन प्रत्येक वर्णो के अट्ठारह भेद होते हैं। **लृवर्णस्य द्वादश तस्य दीर्घाभावात् ।** लृ वर्ण के बारह भेद होते हैं क्योंकि उसमें दीर्घ का अभाव होता है। **एचामपि द्वादश तेषां ह्रस्वाभावात् ।** एच्- ए ओ ऐ औ – के प्रत्येक के बारह भेद होते हैं क्योंकि इसमें ह्रस्व का अभाव होता है।

सूत्र - तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णं 1-1- 9 ।। ताल्वादिस्थानमाभ्यन्तरप्रयत्नश्चेत्येतद् द्वयं यस्य येन तुल्यं तन्मिथ: सवर्णसंज्ञं स्यात् ।

तालु आदि स्थान आभ्यन्तर प्रयत्न ये दोनों जिस वर्ण के समान हों उसकी आपस में सवर्ण संज्ञा होती है **ऋलृवर्णयोर्मिथ: सावर्ण्यं वाच्यम्**। ऋ और लृ वर्ण की आपस में सवर्ण संज्ञा होती है इसका प्रयोजन आगे बताया गया है - इसका मुख्य प्रयोजन है वर्णों के उच्चारण स्थानों एवं प्रयत्नों के अध्ययन के समय इसका समुचित प्रयोग। यथा-जब हम 'अ' के उच्चारण स्थान एवं प्रयत्न की चर्चा करते हैं तो इस ह्रस्व 'अ' के साथ इसके दीर्घ रूप "आ" तथा प्लुत रूप 'आ३' के उच्चारण स्थान एवं प्रयत्न का भी बोध हो जाता है। यदि 'अ' का उच्चारण स्थान कण्ठ है तो दीर्घ 'आ' एवं प्लुत 'आ३' का उच्चारण स्थान भी कण्ठ ही होगा। इसी प्रकार अन्य स्वरों के उच्चारण स्थान एवं प्रयत्न के विषय में समझना चाहिये। उच्चारण स्थान एवं प्रयत्न संस्कृत व्याकरण का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अंग है। हम जिस भी वर्ण का उच्चारण करते हैं उसका कोई निश्चित स्थान होता है एवं वह किसी निश्चित प्रयत्न से ही हमारे मुख से बाहर आता है।

उच्चारण स्थान

उच्चारण स्थान ग्यारह हैं -1. कण्ठ, 2. तालु 3. मूर्धा 4. दन्त, 5. ओष्ठ, 6. उपर्युक्त स्थानों के साथ नासिका, 7.कण्ठ एवं तालु, 8. कण्ठ एवं ओष्ठ, 9. दन्त एवं ओष्ठ 10. जिह्वामूल और 11. नासिका। इनमें कण्ठ, तालु, मूर्धा, दन्त ओष्ठ, जिह्वामूल एवं नासिका स्वतन्त्र रूप से वर्णो के उच्चारण स्थान हैं, परन्तु मुखनासिका,कण्ठ तालु कण्ठ ओष्ठ एवं दन्त ओष्ठ मिश्रित रूप से ही वर्णों के उच्चारण में अपना योगदान देते हैं।अब हम अधोलिखित पंक्तियों के माध्यम से उच्चारण स्थान एवं उनसे उच्चरित होने वाले वर्णों को जानेंगे-

1. **कण्ठ -** अकार (दीर्घ 'आ' एवं प्लुत 'आ३' के साथ), कवर्ग (क, ख, ग, घ, ङ,)हकार और विसर्ग का उच्चारण स्थान कण्ठ है। **'अकुहविसर्जनीयानां कण्ठ:'** यहाँ ध्यातव्य है कि 'कु' से कवर्ग, 'चु' से चवर्ग, 'टु' से टवर्ग 'तु'तवर्ग एवं 'पु' से पवर्ग का बोध होता है।

2. तालु-इकार (दीर्घ 'ई' एवं प्लुत 'ई३' के साथ), चवर्ग (च, छ, ज, झ ञ), य और श का उच्चारण स्थान तालु है। **'इचुयशानां तालु'।**

3. मूर्धा - ऋ (दीर्घ 'ऋ' एंव प्लुत 'ऋ३' के साथ), टवर्ग (ट, ठ, ड, ढ,ण), (रेफ) और ष का उच्चारण स्थान मूर्धा हैं। **'ऋटुरषाणां मूर्धा'।**

4. दन्त - लृ (प्लुत 'लृ३' के साथ), तवर्ग (त, थ, द, ध, न), ल और स का उच्चारण स्थान दन्त है। जैसा कि हमने पहले जाना है कि लृ का दीर्घ नहीं होता, केवल ह्रस्व और प्लुत होता है। **'लृतुलसानां दन्ताः'।**

5. ओष्ठ - उ (दीर्घ 'ऊ' एव के साथ), पवर्ग (प, फ, ब, भ, म), और उपध्मानीय का उच्चारण स्थान ओष्ठ है। प, फ से पूर्व आधे विसर्ग के समान ध्वनि को उपध्मानीय कहते हैं। यथा- दन प दन फ'।

6. उपर्युक्त स्थानों के साथ नासिका - ञ, म, ङ, ण और न का उच्चाकरण स्थान नासिका भी है। तात्पर्य यह है कि 'ञ' का उच्चारण स्थान तालु हैं। किन्तु इसके साथ ही 'ञ' का उच्चारण स्थान नासिक भी है। निष्कर्ष यह है कि 'ञ' का उच्चारण स्थान ओष्ठ एवं नासिका, 'ङ' का उच्चारण स्थान कण्ठ एवं नासिका, 'ण' उच्चारण स्थान मूर्धा एवं नासिक तथा न का उच्चारण स्थान दन्त एवं नासिका समझना चाहिये। **'ञमङणनानां नासिका च'।**

7. कण्ठ एवं तालु - ए और ऐ का उच्चारण स्थान कण्ठ एवं तालु है। **'एदैतोः कण्ठतालु'।**

8. कण्ठ एवं ओष्ठ-ओ औ का उच्चारण स्थान कण्ठ एवं ओष्ठ है। **'ओदौतोः कण्ठोष्ठम्'।**

9. व का उच्चारण स्थान दन्त एवं ओष्ठ है। **'वकारस्य दन्तोष्ठम्'।**

10. **जिह्वामूल**-जिह्वामूलीय का उच्चारण स्थान जिह्वामूल है। 'दन क दन ख' इस प्रकार 'क' 'ख' से पूर्व आधे विसर्ग के समान ध्वनि को जिह्वामूलीय कहते हैं। जिह्वामूल का अर्थ है जिह्वा का उद्गम स्थान अर्थात् जहॉ से जिह्वा आरम्भ होती है। **'जिह्वामूलीयस्य जिह्वामूलम्'**।

11. **नासिका**-अनुस्वार का उच्चारण स्थान नासिका है। '**नासिकानुस्वारस्य**'। यहॉ तक हमने वर्णों के उच्चारण स्थान के विषय में जाना। आगे हम वर्णों के उच्चारण में लगने वाले प्रयत्न के विषय में जानेंगे।

प्रयत्न –

वर्णों के उच्चारण में जो चेष्ठा करनी पड़ती है उसे प्रयत्न कहने हैं। **'प्रकृष्टो यत्रः प्रयत्नः'** अर्थात् वर्णों के उच्चारण से पहले सुनियोजित एवं सुविचारित रूप से जो चेष्टा होती है वह प्रयत्न कहलाता है। यह प्रयत्न दो प्रकार का है **'यत्नो द्विधा'- आभ्यन्तरो बाह्यश्च।** वर्णों के मुख के बाहर आने से पहले मुख के अन्दर जो प्रयत्न होता है उसे आभ्यन्तर कहते हैं। यह प्रयत्न पहले होता है तथा इसके विना बाह्य प्रयत्न निष्फल है। बाह्य प्रयत्न वह है जो वर्णों के मुख से बाहर निकलते समय किया जाता है। उसका अनुभव सुननेवाला भी कर सकता है। प्रयत्नों को निम्नलिखित प्रकार से जान सकते हैं।-

आभ्यन्तर प्रयत्न - यह पॉच प्रकार का होता है।

'आद्यः पंचधा - स्पृष्टेषत्स्पृष्टेषद्विवृतसंवृतभेदात्' 1. स्पृष्ट, 2. ईषत्स्पृष्ट, 3. ईषद्विवृत, 4. विवृत और 5. संवृत।

1.**स्पृष्ट** - स्पृष्ट प्रयत्न से तात्पर्य है वर्णो के उच्चारण के समय जिह्वा के द्वारा **तत्र स्पृष्टं प्रयत्नं स्पर्शानाम्**'। 'क' से लेकर 'म' तक अर्थात् कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग के अन्तर्गत आनेवाले पच्चीस वर्ण स्पर्श कहलाते हैं। इन पच्चीस वर्णो के उच्चारण में जो प्रयत्न लगता है वह स्पृष्ट है।

2. **ईषत्स्पृष्ट** - इसका तात्पर्य है जिह्वा के द्वारा उच्चारण स्थानों के कुछ स्पर्श से। ईषत्स्पृष्ट अन्तःस्थों का होता है-**'ईषत्स्पृष्टमन्तःस्थानाम्'।**'यण्' प्रत्याहार के अन्तर्गत आनेवाले वर्ण यथा-य व र ल अन्तःस्थ कहलाते हैं। अन्तःस्थ का अर्थ है बीच में रहनेवाला। य, व, र, ल ये चार वर्ण स्वर और व्यंजन के बीच में स्थित है इसीलिए अन्तःस्थ कहलाते हैं। माहेश्वर सूत्रों के अन्तर्गत भी पाणिनि ने स्वरों के पश्चात एवं व्यन्जनों से पहले अर्थात् दोनों के बीच में अन्तःस्थों य,व,र,ल को स्थान दिया है। इस प्रकार य, व, र, ल स्वर एवं व्यंजन दोनों हैं, इन अन्तःस्थों का प्रयोग सन्धि प्रकरण में जान पाएंगे।इनके उच्चारण में जो प्रयत्न लगता है उसे ईषत्स्पृष्ट कहते हैं।

3. **ईषद्विवृत** - इसका तात्पर्य है वर्णो के उच्चारण के समय कण्ठ का थोड़ा खुलना। ईषद्विवृत उष्म वर्णों का होता है-**'ईषद्विवृतमुष्मणाम्'।** 'शल्' प्रत्याहार के अन्तर्गत आनेवाले श, ष, स, ह वर्ण ऊष्म कहलाते हैं-**'शल् उष्माणः।** इनके उच्चारण के लिये लगने वाले प्रयत्न को ईषद्विवृत कहते हैं।

4**. विवृत** - इस प्रयत्न से तात्पर्य है वर्णो के उच्चारण के समय कण्ठ का पूर्ण रूप से खुला रहना विवृत स्वरों अर्थात् अ, इ,उ,ऋ,लृ, ए, ओ, ऐ तथा औ वर्णो का होता है-**' विवृतं स्वराणाम् '।** इन वर्णों के उच्चारण में लगने वाला प्रयत्न ही विवृत कहलाता है।

5.**संवृत** - जब ह्रस्व 'अकार' का सिद्ध रूप में प्रयोग होता है तब वहॉ संवृत प्रयत्न होता हैं, किन्तु प्रक्रिया की अवस्था में उसमें विवृत प्रयत्न होता है-'प्रक्रिया दशायां तु विवृतमेव'। यथा - 'दण्ड आढकम्' यहॉ 'दण्ड' में 'ड्' के साथ आने वाला 'अ' का संवृत प्रयत्न है तथा 'आढकम्' का आदि वर्ण 'आ' का विवृत। लेकिन यहॉ समस्या यह है कि संवृत 'अ' तथा 'आ' की सवर्ण संज्ञा नहीं होने से अर्थात् दोनो के प्रयत्न समान नही होने से 'अकः सवर्णे दीर्घः; सूत्र से दीर्घ नही हो सकता, क्योंकि सवर्ण स्वर परे रहने पर ही दीर्घ संभव है। इसीलिये संधि काल में 'अ' अपने सिद्ध स्वरूप को त्यागकर साधन अवस्था में आ जाता है। साधन अवस्था ही प्रक्रिया की अवस्था है। इस प्रकार प्रक्रिया अवस्था में आने से दोनों में सवर्ण संज्ञा होती है जिसके कारण 'दण्डआढकम् में 'दण्डआढकम्' में 'दण्ड' का 'ड' के साथ रहने वाले 'अ' एवं 'आढकम् के आदि वर्ण 'आ' का दीर्घ होकर 'दण्डाढकम्' यह रूप सिद्ध होता है।

अभ्यासार्थ प्रश्नाः

बहुविकल्पात्मक प्रश्नाः

1.हलन्त्यम् सूत्र से होती है-

(अ) इत्संज्ञा (ब) टि संज्ञा (स) पदसंज्ञा (द) लोपसंज्ञा

2. प्रत्याहार होते हैं -

(अ) दश (ब) चार (स) नव (द) बयालीस

3. प्रयत्न होते हैं

(अ) दश (ब) चार (स) नव (द) दो

4. आभ्यन्तर प्रयत्न होता है

(अ) दश (ब) चार (स) नव (द)पाच

5. बाह्य प्रयत्न होते हैं-

(अ) दश (ब) चार (स) नव (द) ग्यारह

प्रश्न

1. अच् प्रत्याहार के अन्तर्गत आने वाले वर्णों को बतायें।

2. माहेश्वर सूत्र के अन्तर्गत व्यंजन वर्णों की संख्या बताये।

3. त्रिमुनि से आप क्या समझते हैं?

4. इत्संज्ञा से क्या तात्पर्य है?

5. प्रत्याहार विधायक सूत्र का नाम लिखें।

6. निम्नलिखित रिक्तस्थानों की पूर्ति करें-

क. ह का उच्चारण स्थान.....है।

ख. तालु.....वर्णो का उच्चारण स्थान है।

ग. अनुस्वार का उच्चारण स्थान.....है।

घ. पवर्ग के अन्तर्गत .....वर्ण आते हैं।

ड़. प्रयत्न के भेद..... हैं।

7. निम्नलिखित विकल्पों में से सही उत्तर चुने-

1. 'ष' का उच्चारण स्थान है-

(क) दन्त (ख) मूर्धा

(ग) तालु (घ) ओष्ठ

2. सवर्ण संज्ञा के लिये आवश्यक है-

(क) उच्चारण स्थान एवं आभ्यन्तर प्रयत्न

(ख) प्रत्याहार एवं उपदेश

(ग) बाह्यप्रयत्न एवं उच्चारण स्थान

(घ) संयोग एवं उदात्त

8. सुबन्त और तिङन्त की कौन संज्ञा होती है।

9. एक मात्रा वाले वर्ण किस नाम से जाने जाते है।

10. ह्रस्व, दीर्घ एवं प्लुत में से लृ का कौन सा भेद प्राप्त नहीं होता?

11. सत्य / असत्य बताइये-

(क) ए का उच्चारण स्थान कण्ठ तालु/कण्ठ ओष्ठ है।

(ख) माहेश्वर सूत्रों की संख्या चौदह/पन्द्रह है।

(ग) स्वर सन्धि में संहिता / संयोग संज्ञा की आवश्यकता होती है।

आभ्यन्तर प्रयत्न तालिका

क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ ड ढ ण त थ द ध न प फ ब भ म - **क से लेकर म तक वर्णों का स्पृष्ट प्रयत्न होता है।** य व र ल **इन वर्णों का ईषत्स्पृष्ट प्रयत्न होता है।** श ष स ह **इन वर्णों का ईषद्विवृत, प्रयत्न होता है।** अ इ उ ऋ लृ ऐ ओ ऐ औ **इन वर्णों का विवृत, प्रयत्न होता है।**

वाह्यप्रयत्नस्त्वेकादशधा – विवार: संवार: श्वासो नादो घोषो अघोषो अल्पप्राणो महाप्राणो उदात्तोऽनुदात्त: स्वरितश्चेति।

वाह्य प्रयत्न- वाह्य प्रयत्न के ग्यारह भेद होते हैं - 1. विवार 2.संवार 3. श्वास 4.नाद 5.घोष 6. अघोष, 7. अल्पप्राण, 8. महाप्राण, 9.उदात्त, 10 अनुदात और 11. स्वरित।

खरो विवार: श्वासा अघोषाश्च – (खर् ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ह) प्रत्याहार में आने वाले वर्णो का विवार श्वास अघोष प्रयत्नहोता है।

हश: संवारा: नादा घोषाश्च – हश् (ह य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द)

प्रत्याहार में आने वाले वर्णों का संवार नाद और घोष प्रयत्न होता है।

हश् (ह य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द) प्रत्याहार में आने वाले वर्णों का संवार नाद और घोष प्रयत्न होता है।

अच् प्रत्याहार (अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ) के वर्णों का .उदात्त, अनुदात और स्वरित

प्रयत्न होता है । **वर्गाणां प्रथम- तृतीय पंचमा यणश्चाल्पप्राणा:** वर्गों के प्रथम - तृतीय पंचम (यथा कवर्ग में प्रथम वर्ण क, तृतीय वर्ण ग, पंचम वर्ण ङ, यण्- य व र ल) वर्णों तथा यण् प्रत्याहार के वर्णों का अल्पप्राण होता है।

वर्गाणां द्वितीय- चतुर्थौ शलश्च महाप्राणा: वर्गों के द्वितीय- चतुर्थ (यथा कवर्ग में द्वितीय वर्ण ख, चतुर्थ वर्ण घ, शल्- श ष स ह) वर्णों तथा शल् प्रत्याहार के वर्णो का महाप्राण होता है।

1. **विवार** - जिन वर्णों के उच्चारण करते समय मुख खुलता है उन वर्णों प्रयत्न होता है।

2. **संवार** - जिन वर्णों के उच्चारण करते समय मुख संकुचित रहता है उन वर्णों का संवार प्रयत्न होता है।

3. **श्वास** - जिन वर्णों के उच्चारण करते समय भीतर की वायु स्वरतन्त्री को बिना झंकृत करती हुई बाहर आ जाती है, उन वर्णों के लिए यह श्वास प्रयत्न होता है।

4. **नाद** - जिन वर्णो के उच्चारण करते समय भीतर की वायु स्वरतन्त्री को झंकृत करती हुई बाहर आ जाती है उन वर्णो के लिए यह नाद प्रयत्न होता है।

5. **घोष**:- जिन वर्णों के उच्चारण में गूँज होती है वह घोष -प्रयत्न होता है।

6**. अघोष** - जिन वर्णों के उच्चारण में गूज नहीं होती है वह अघोष प्रयत्न होता है।

7. **अल्पप्राण**-वर्णों के उच्चारण में प्राणवायु का अल्प प्रयोग अल्पप्राण प्रयत्न है।

8.**महाप्राण**- वर्णों के उच्चारण में प्राणवायु का अधिक उपयोग महाप्राण प्रयत्न कहलाता है।

9. **उदात्त** - तालु आदि स्थानों के ऊपरी भाग से उच्चारण किया जाना उदात्त प्रयत्न कहलाता है

10**. अनुदात्त** - तालु अदि स्थानों के निम्न भाग से उच्चारण किया जाना अनुदात्त प्रयत्न कहलाता है।

11. **स्वरित**- तालु आदि स्थानों के मध्य भाग से उच्चारण किया जाना स्वरित प्रयत्न कहलाता है। यहाँ यह जानना आवश्यक है कि मुख के भीतर कण्ठ, तालु आदि स्थान हैं। उन पर जब भीतर से प्रेरित वायु का आघात होता है तब वर्णों की उत्पत्ति होती है। उन सभी स्थानों के तीन भाग है - ऊपर, नीचे तथा मध्य। इसी दृष्टि से उदात्त, अनुदात्त एवं स्वरित प्रयत्नों को जानना चाहिये।

अनुस्वार और विसर्गः ये दो हमेशा स्वर के ही आगे आते हैं, व्यंजनों के नहीं - **अं अः इत्यचः परावनुस्वारविसर्गौ ।** उपरिवर्णित उच्चारण स्थानों एवं आभ्यन्तर प्रयत्नों का मुख्य प्रयोजन सवर्ण संज्ञा की सिद्धि है। बाह्य प्रयत्नों का सवर्ण संज्ञा में कोई उपयोग नहीं है। सवर्ण संज्ञा किस प्रकार होती है- इस विषय में पाणिनि का कथन है कि तालु आदि उच्चारण स्थान और आभ्यन्तर प्रयत्न ये दोनों जिस-जिस वर्णों के समान हों वे वर्ण परस्पर सवर्ण संज्ञा वाले होते हैं।

यहॉ 'दैत्य अरिः' इस स्थिति में 'य' के बाद आनेवाले ' अ ' के परे 'अरि' का आदि वर्ण 'अ' है, यहॉ पहले 'अ' और बाद आनेवाले दूसरे ' अ ' परस्पर सवर्ण हैं, क्योंकि दूसरे 'अ' का उच्चारण स्थान और प्रयत्न वही है जो पहले 'अ' का है। इस प्रकार दोनों 'अ' के उच्चारण स्थान एवं प्रयत्न के समान होने से दोनों सवर्ण संज्ञक हुए एवं परिणामस्वरूप दोनों में दीर्घ सन्धि सम्भव हुई । यहॉ एक अपवाद है। 'ऋ' और ' ऌ ' वर्णो के उच्चारण स्थान भिन्न होते हैं, फिर भी इनकी परस्पर सवर्ण संज्ञा होती है- **'ऋलृवर्णयोर्मिथः सावर्ण्यं वाच्यम्'** सवर्ण संज्ञा का प्रयोग संधि प्रकरण में विशेष रूप से दिखाया जाएगा।

अणुदित्सवर्णस्य चाऽप्रत्ययः 1-1- 69 ।। प्रतीयते विधीयते इति प्रत्ययः । जो प्रतीत होता हो , जिसका विधान किया जाता हो वह प्रत्यय है।

अविधीयमानोऽणुदिच्च सवर्णस्य संज्ञा स्यात् । जिस का विधान न किया गया हो ऐसा अण् और उदित् सवर्ण संज्ञा का वोधक होता है। **अत्रैवाण् परेण णकारेण -** केवल इसी सूत्र में अण् प्रत्याहार णकार तक समझना चाहिये।

कु चु टु तु पु एते उदितः कु चु टु तु पु ये उदित् कहे गये हैं। **तदेवम् अ इत्यष्टादशानां संज्ञा-** इस कारण अ अट्ठारह प्रकार का बोधक होता है। **तथेकारोकरौ** - इस कारण इकार उकार भी अट्ठारह प्रकार के बोधक होते हैं। **ऋकारस्त्रिंशतः एव लृकारोऽपि-** ऋकार 30 का बोधक होता है इसी प्रकार लृकार भी। **एचो द्वादशानाम्** - एच् (ए ओ ऐ औ) बारह प्रकार के होते हैं। **अनुनासिकाननुनासिकभेदेन यवला द्विधा-** अनुनासिक और अननुनासिकभेद से य व ल दो दो प्रकार के होते हैं। **तेनाननुसिकास्ते द्वयोद्वयो संज्ञा-** इसी लिये अनुनासिक भेद से य व ल की दो दो संज्ञाये होती हैं।

6.4.4 संहिता संज्ञा

परः संनिकर्षः संहिता 1- 4 -109 ।। वर्णानामतिशयितः सन्निधिः संहितासंज्ञः स्यात् ।

वर्णो की अत्यन्त समीपता की संहिता संज्ञा होती है संहिता का उदाहरण सन्धि प्रकरण में दिया गया है।

6.4.5 संयोग संज्ञा

'हलोऽनन्तराः संयोगः।1/1/7 अज्भिरव्यवहिता हलः संयोगसंज्ञा स्युः'

स्वर वर्णों (अचों) के व्यवधान से रहित व्यंजनों (हलों) की संयोग संज्ञा होती है। दूसरे शब्दों में जिन दो व्यन्जनों के बीच में स्वर न हो, उन दोनों व्यंजनों की मिलाकर संयोग संज्ञा होती है। यथा- 'सुधय् उपास्यः'। यहॉ 'ध् य्' ये दो व्यन्जन स्वर के व्यवधान से रहित है अर्थात् इन दोनों व्यन्जनों के बीच में कोई स्वर नहीं है। अतः उनकी संयोग संज्ञा हो जाती है। संयोग का मुख्य प्रयोजन व्यंजन सन्धि का सम्पादन है।

6.4.6 पद संज्ञा -

सुप्तिङन्तं पदम् 1-1–14 ।।

सुबन्तं तिङन्तं च पदसंज्ञं स्यात्।

सुबन्त और तिङन्त की पद संज्ञा होती है।

सुप् प्रत्यय जिसके अन्त में हो उसे सुबन्त तथा तिङ् प्रत्यय जिसके अन्त में हो उसे तिङन्त कहा जात है। 'सुप्' एवं तिङ्' ये दो प्रत्याहार हैं। सुप् के अन्तर्गत इक्कीस प्रत्यय आते हैं जिनका प्रयोग 'रामः' इत्यादि की सिद्धि के लिये सुबन्त प्रकरण में किया जाता है। तिङ् के अन्तर्गत अठारह प्रत्यय हैं जिनका प्रयोग 'भवति' इत्यादि की सिद्धि के लिये तिङन्त प्रकरण में किया जाता है। पद संज्ञा के प्रयोग के विषय में पाठक उन्हीं अध्यायों में विस्तार पूर्वक जान पाएंगे। प्रत्येक संज्ञा के लिए विधायक सूत्र और संज्ञा सूत्र अलग प्रयुक्त है।

6.5. सारांश

इस ईकाई को पढ़ने के बाद आप जान चुके हैं किः

1. व्याकरण शास्त्र का आधार माहेश्वर सूत्र हैं।
2. माहेश्वर सूत्रों के आधार पर वयालीस प्रत्याहार बनाये जा सकते हैं।
3. प्रत्याहारों के माध्यम से अनेक वर्णों को संक्षिप्त एवं वैज्ञानिक विधि से अल्प प्रयास से जाना जा सकता है।
4. वर्णों के निश्चित उच्चारण स्थान एवं प्रयत्न होते हैं।
5. उच्चारण स्थान एवं प्रयत्न की समानता से वर्णों में सवर्णता आती है जिससे स्वर सन्धि सम्भव हो पाती है।
6. स्वरवर्णों की सन्धि हेतु उनमें समीपता आवश्यक है।
7. सुप् प्रत्यय जिसके अन्त में हो ऐसे सुबन्त एवं तिङ् प्रत्यय जिसके अन्त में हो ऐसे तिङन्त की पद संज्ञा होती है।

6 . 6 शब्दावली

1. सूत्रः अल्पाक्षरमसन्दिग्धं सारवद्विश्वतोमुखम्।

असतोभमनवद्यं च सूत्रं सूत्रविदो विदुः ।।

अर्थात् कम वर्ण वाले, संदेह रहित, सार की तरह, अनेक मुख वाले, निरन्तरता से युक्त तथा शुद्ध पद या पद समूह को विद्वान लोग सूत्र कहते हैं। यथा-चौदह माहेश्वर सूत्र, हलन्त्यम् इत्यादि।

2. प्रत्यय: धातु एवं शब्द के आगे जुड़ने वाले सुप्, तिङ् आदि प्रत्यय कहलाते हैं।

3. समय के अंश विशेष को मात्रा कहते हैं। सामान्यतः पलक गिरने अथवा चुटकी बजाने में लगने वाले समय से एक मात्रा का बोध होता है।

6.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बहुविकल्पात्मक

1. (अ) 2. (द) 3. (द) 4. (द) 5. (द)

उत्तर

1. अ, इ, उ, ऋ, ऌ, ए, ओ, ऐ तथा औ।

2. 33 ('ह' का दो बार प्रयोग हुआ है)।

3. पाणिनि, कात्यायन और पतंजलि।

4. उपदेश, अवस्था में अन्तिम व्यंजन की इत्संज्ञा होती है।

5. आदिरन्त्येन सहेता।

6. (क) कण्ठ

(ख) इ, च, छ, ज, झ, ञ, य तथा श।

(ग) नासिका

(घ) प, फ ब, भ तथा म।

(ड़) आभ्यन्तर एवं बाह्य।

7. (क) मूर्धा

(ख) उच्चारण स्थान एवं आभ्यन्तर प्रयत्न।

8. पद संज्ञा
9. ह्रस्व
10. दीर्घ
11. (क) कण्ठ तालु (ख) चौदह (ग) संहिता

6.8. संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. वरदराज, लघुसिद्धान्तकौमुदी, व्याख्याकार एवं सम्पादक श्री धरानन्द शास्त्री (2000)मोती लाल बनारसीदास, दिल्ली।

2. वरदराज, लघुसिद्धान्तकौमुदी, व्याख्याकार-महेशसिंह कुशवाहा, (1994) चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।

6.9 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. मिश्र कमलाकान्त, व्याकरण सौरभम्, (2002) एन. सी.ई.आर.टी. नई दिल्ली।

2. शास्त्री, चक्रधर नौटियाल 'हंस', बृहद् अनुवादचन्द्रिका, (1984) मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।

3. शास्त्री, नेमिचन्द्र, स्नातक संस्कृत व्याकरण, (संवत् 2032)ज्ञानदा प्रकाशन, पटना

6.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. चौदह माहेश्वर सूत्रों को लिखें।

2. अल् प्रत्याहार की निर्माण विधि को समझाते हुए उसके अन्तर्गत आने वाले वर्णो को लिखे।

3. सवर्ण संज्ञा से आप क्या समझते है।

4. आभ्यन्तर प्रयत्न पर टिप्पणी लिखें।

5. बाह्य प्रयत्न की भेद सहित प्रस्तुति करें।

6. व्याख्या करें।

(क) संहिता संज्ञा

(ख) संयोग संज्ञा

(ग) पद संज्ञा

7. संज्ञा प्रकरण पर एक निबन्ध लिखें।

इकाई 7 : स्वर सन्धि

इकाई की संरचना

7.1 प्रस्तावना
7.2 उद्देश्य
7.3 स्वर सन्धि: अर्थ एवं प्रतिपाद्य
7.4 स्वर सन्धि के प्रमुख भेद
7.4.1 यण् सन्धि
7.4.2 अयादि सन्धि
7.4.3 गुण सन्धि
7.4.4 दीर्घ सन्धि
7.4.5 वृद्धि सन्धि
7.5 सारांश
7.6 पारिभाषिक शब्दावली
7.7 अभ्यास प्रश्नों कें उत्तर
7.8 सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची
7.9 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री
7.10 निबन्धात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

सन्धि के अर्थ और प्रक्रियात्मक ज्ञान से सम्बन्धित यह प्रथम इकाई है। इससे पहले की इकाई के अध्ययन के बाद आप बता सकेंगे कि चौदह माहेश्वर सूत्र क्या हैं प्रत्याहार का निर्माण किस प्रकार किया जाता है वर्णों के उच्चारण के स्थान एवं प्रयत्न क्या हैं एवं इनकी संख्या कितनी है संहिता आदि संज्ञा किसे कहते हैं?

संज्ञा प्रकरण का परिचय प्राप्त करने के पश्चात् आप स्वर सन्धि का विधिवत अध्ययन कर पाएंगे। इस इकाई में मुख्य रूप से यण्, अयादि, गुण, दीर्घ एवं वृद्धि सम्बन्धी सूत्रों की व्याख्या के साथ उनके उदाहरणों को प्रक्रिया के माध्यम से प्रस्तुत किया जायेगा।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप स्वर सन्धि के प्रमुख भेदों यण्, अयादि, गुण, दीर्घ एवं वृद्धि सम्बन्धी विधायक सूत्रों को उदाहरण के साथ समझा सकेंगे।

7.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

1. स्वर सन्धि के प्रमुख भेदों को बतायेंगे।

2. यण्, अयादि, गुण आदि सन्धि के विधायक सूत्रों को व्याख्या सहित समझा सकेंगे।

3. यण् आदि सन्धि की प्रक्रिया को जानकर अपनी भाषा एवं लेखन में उसका ठीक प्रकार से प्रयोग कर पायेंगे।

4. स्वर सन्धि के उपर्युक्त भेदों का संस्कृत व्याकरण के अन्य प्रकरणों में उपयोग भी बता सकेंगे।

5. यण् आदि स्वर-सन्धि को जानकर हिन्दी आदि भाषाओं की स्वर-सन्धि सम्बन्धी समस्याओं को सुलझा पायेंगे।

6. किसी भी भाषा में स्वर-सन्धि के समान संरचना को स्थापित करने की विधि का विकास करेंगे।

7. आधुनिक भाषा-विज्ञान में भी उसका भली-भाँति उपयोग कर सकेंगे।

8. संस्कृत के अन्य शास्त्र के अध्ययन, अध्यापन, अर्थनिर्धारण आदि में इसका उपयोग कर पायेंगे।

7.3 स्वर सन्धि : अर्थ एवं प्रतिपाद्य

संस्कृत के प्रत्येक शब्द के अन्त में कोई स्वर, व्यंजन, अनुस्वार अथवा विसर्ग अवश्य रहता है तथा उस शब्द के आगे जब किसी दूसरे शब्द के होने से उनका मेल होता है तब पूर्व शब्द के

अन्त वाले स्वर, व्यंजन आदि में कुछ परिवर्तन हो जाता है। उस प्रकार के मेल हो जाने से जो परिवर्तन होता है, उसे सन्धि कहते हैं। 'सन्धि' का अर्थ है 'मेल'। उस परिवर्तन से कहीं पर दो अक्षरों के स्थान पर एक नया अक्षर हो जाता है, जैसे – गंगा+ईश: गंगेश:, कहीं पर एक अक्षर का लोप हो जाता है, जैसे – छात्रा: गच्छन्ति छात्रा गच्छन्ति, और कहीं पर दो अक्षरों के बीच में एक नया अक्षर आ जाता है, जैसे – धावन् अश्व: धावन्नश्व: । पहले उदाहरण में 'आ"ई- 'ए', दूसरे उदाहरण में विसर्ग का लोप तथा तीसरे उदाहरण में एक अतिरिक्त 'न्' उपस्थित हो गया। इस प्रकार वर्णों के मेल होने को ही सन्धि कहते हैं।

सन्धियॉं मुख्य रूप से तीन प्रकार की होती हैं :- 1. स्वर (अच्) सन्धि, 2. व्यंजन (हल्) सन्धि और 3. विसर्ग सन्धि।

एक स्वर के साथ दूसरे स्वर के मेल होने से जो परिवर्तन होता है, उसे स्वर सन्धि कहते हैं। संज्ञा प्रकरण के अध्ययन से आप संहिता के विषय में अवश्य जान गये होंगे। जहॉं पर "पर: सन्निकर्ष: संहिता" इस सूत्र में बताया गया है कि – **वर्णानामतिशयित: सन्निधि: संहिता संज्ञ: स्यात्** अर्थात् वर्णों के अतिशयित (अत्यधिक समीपता) सामीप्य को संहिता कहते हैं। स्वर सन्धि के लिए संहिता की अनिवार्यता होती है। संस्कृत वाक्य में सन्धि-कार्य वैकल्पिक है अर्थात् वक्ता की इच्छा पर निर्भर करता है किन्तु एक पद में, धातु और उपसर्ग के मिलने पर तथा समास में संहिता अनिवार्य रूप से होती है -

संहितैकपदे नित्या नित्या धातूपसर्गयो:।
नित्या समासे वाक्ये तु सा विवक्षामपेक्षते।

उदाहरण के लिये-

(क) अनिवार्य -

1. पदगत सन्धि – बालकेन (बालक + इन)
2. उपसर्ग और धातु (क्रिया) के बीच सन्धि – उपैति (उप +एति)
3. समासगत सन्धि – सूर्योदय: (सूर्यस्य उदय:, सूर्य + उदय:

(ख) वैकल्पिक या वक्ता की इच्छा पर निर्भर:-

वाक्य में पदों के बीच सन्धि -

सुरेशो ग्रामादागच्छति।

अथवा

सुरेश: ग्रामात् आगच्छति

प्रस्तुत स्वर सन्धि प्रकरण में यण्, अयादि, गुण, दीर्घ और वृद्धि सन्धि के नियमों का विधान करने वाले सूत्रों की उदाहरण के साथ व्याख्या प्रस्तुत की जायेगी।

7.4 स्वर सन्धि के प्रमुख भेद

स्वर सन्धि के भेदों में यण्, अयादि, गुण, दीर्घ एवं वृद्धि के नाम प्रमुखता से लिए जाते हैं। यहॉं हम क्रमश: इनके विधायक सूत्रों की सोदाहरण व्याख्या जानेंगे।

8.4.1 यण् सन्धि (य्,व्, र्, ल्)

नियम – ह्रस्व या दीर्घ इ, उ, ऋ, लृ के बाद किसी असवर्ण स्वर के आने पर इ का य्, उ का व्, ऋ का र् तथा लृ का ल् हो जाता है। यण् सन्धि मुख्यत: यण् प्रत्याहार पर आधारित है। जैसा कि आप 'संज्ञा प्रकरण' में जान चुके हैं कि यण् प्रत्याहार के अन्तर्गत य्, व्, र्, तथा ल् वर्ण आते हैं तथा ये वर्ण अन्त:स्थ कहलाते हैं। अन्त:स्थ का अर्थ है बीच में रहने वाला। अर्थात् ये चार वर्ण स्वर और व्यंजन के बीच में स्थित हैं। प्रस्तुत प्रसंग में इ, उ, त्र अथवा लृ के बाद यदि स्वर वर्ण हो तो इ, उ, ऋ अथवा लृ के स्थान में क्रमश: य्, व्, र् अथवा ल् आदेश होता है। तात्पर्य यह है कि इ य् में, उ व् में, ऋ र् में तथा लृ ल् में परिवर्तित हो जाता है। इन बातों को पाणिनि ने निम्नलिखित सूत्र के माध्यम से कहा है -

सूत्र- इको यणचि। 6.1.77

इक: स्थाने यण् स्यात् अचि संहितायां विषये। सुधी उपास्य: इति स्थिते।

अर्थात संहिता की स्थिति में इक. (इ, उ, त्र, लृ) के स्थान में यण् (य्, व्, र्, ल्) आदेश हो। यहॉ यह ध्यान देने योग्य है कि दो स्वर वर्णों के मध्य अत्यधिक समीपता हो तथा इ, उ, ऋ अथवा लृ के बाद कोई स्वर हो तब क्रमश: उपर्युक्त परिवर्तन होता है उदाहरण – सुधी + उपास्य:। यहॉ 'ध्' के बाद आने वाले 'ई' के बाद 'उ' है। अत: स्वर 'उ' के पर में रहने पर 'ई' का 'य्' आदेश हो जाता है तथा 'सु ध् य् + उपास्य: यह स्थिति बन जाती है।

यहॉ यह विचारणीय है कि 'सुधी + उपास्य:' में इक् तीन हैं यथा – 'स्' के बाद 'उ' (इक् है), 'ध्' के बाद 'ई' (इक् है) तथा 'उपास्य:' का पहला वर्ण 'उ' (इक् है)। इसके साथ ही प्रथम 'उ' के आगे 'ध्' के बाद आने वाला स्वर 'इ' है, इसी 'इ' के बाद 'उपास्य:' का पहला वर्ण स्वर 'उ' है तथा 'उ' के आगे 'प्' के बाद आने वाला स्वर 'आ' है। इस प्रकार तीनों इक् (उ, ई तथा उ) के आगे स्वर वर्णों के विद्यमान रहने से यण् सन्धि हो सकती है।

परन्तु ऐसा सम्भव नहीं है क्योंकि पाणिनि का विधान है -

सूत्र- तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य। 1.1.66

सप्तमी निर्देशेन विधीयमानं कार्यं वर्णान्तरेणाव्यवहितस्य पूर्वस्य बोध्यम् । अर्थात् सप्तम्यन्त (सप्तमी विभक्ति जिस शब्द के अन्त में है) पद का उच्चारण कर जिस कार्य का विधान किया जाता है, वह कार्य वर्णान्तर से अव्यवहित (व्यवधान रहित) पूर्व वर्ण के स्थान में होता है।

तात्पर्य यह है कि जिस वर्ण के आगे रहने पर जिस वर्ण के कार्य का विधान किया गया हो उन दोनों वर्णों के बीच में किसी अन्य वर्ण को नहीं आना चाहिए। उपर्युक्त उदाहरण में सप्तमी विभक्ति वाला पद है 'अचि' ('अच्) का सप्तमी विभक्ति एक वचन में 'अचि' रूप बनता है) अर्थात् स्वर वर्णों के परे रहने पर 'इक्' (इ, उ, ऋ तथा लृ) अथवा अच् (स्वर वर्णों) के बीच में किसी अन्य वर्ण को नहीं रहना चाहिए। उपर्युक्त उदाहरण में प्रथम 'उ' और 'ई' के बीच में 'ध्', द्वितीय 'ई' आ और 'उ' के बिच में कोई व्यवधान नहीं तथा तृतीय 'उ' और 'आ' के बीच में

'प्' व्यवधान (बाधा) है। इस प्रकार केवल द्वितीय 'ई' और 'उ' बीच में किसी अन्य वर्ण की बाधा नहीं है। अत: सूत्र के अनुसार 'उ' के परे रहते 'ध्' के बाद आने वाले 'ई' को 'य्' हो जाता है। रूप इस प्रकार है – सु ध् य् + उपास्य: ॥

यहॉ एक अन्य प्रश्न उपस्थित होता है कि 'यण्' प्रत्याहार में चार वर्ण य्, व्, र्, तथा ल् हैं। उपर्युक्त उदाहरण में 'ई' का परिवर्तन 'य्' में ही क्यों होता है, व्, र्, या ल् में क्यों नहीं? इसका उत्तर पाणिनि ने निम्नलिखित सूत्र से दिया है-

सूत्र - स्थानेऽन्तरतम:। 1.1.50 प्रसंगे सति सदृशतम् आदेश: स्यात्।

अर्थात् एक स्थानी के स्थान पर कई आदेशों के उपस्थित होने पर उनमें जो स्थानी के सबसे सदृश हो, उसी का आदेश हो।

उपर्युक्त उदाहरण में एक स्थानी 'ई' है तथा उसके आदेश य्, व्, र् तथा ल् चार हैं। किन्तु संज्ञा प्रकरण की इकाई के अध्ययन से आप जान चुके होंगे कि 'ई' का उच्चारण स्थान तालु है तथा 'य्' का भी उच्चारण स्थान तालु ही है। व्, र् तथा ल् के उच्चारण स्थान तालु से भिन्न हैं, अत: 'ई' के सदृश नहीं हैं। इस प्रकार 'ई' का 'य्' आदेश हुआ, अन्य नहीं। फलत: 'सुध्, य् + उपास्य:' को मिला देने पर 'सुध्युपास्य:' यह रूप सिद्ध हुआ।

सुध्, य् + उपास्य: में यद्यपि वर्ण संयोग करने पर सुद्धयुपास्य: रूप बन जाता है किन्तु इसका विस्तृत प्रक्रियात्मक रूप इस प्रकार है –

सूत्र- अनचि च 8.4.47

अच: परस्य यरो द्वे वा स्तो न त्वचि। इति धकारस्य द्वित्वम्।

अर्थात अच् के बाद यर् प्रत्याहार में आने वाले वर्णों को द्वित्व होता है, यदि उनके बाद कोई स्वर न हो। इस सूत्र से ध् को द्वित्व होकर सु ध् ध् य् + उपास्य: बन जाता है। इसके पश्चात् प्रस्तुत सूत्र का आगमन होता है।

सूत्र- झलां जश् झशि 8.4.53

स्पष्टम् इति पूर्व धकारस्य दकार:।

स्पष्ट ही है झल् प्रत्याहार को जश् प्रत्याहार होता है, यदि झश् प्रत्याहार बाद में हो। इस सूत्र से सु ध् ध् य् + उपास्य: में पूर्व के धकार को दकार हो गया और सु द् ध् य् + उपास्य: बन गया। यहॉ पर पुन: एक विशेष बात यह आती है कि **संयोगान्तस्य लोप: 8:2.2.3 सूत्र कहता है – संयोगान्तं यत्पदं तस्य लोप: स्यात्।**" अर्थात संयोगान्त जो पद हो उसका लोप हो जाता है। सु द् ध् य् + उपास्य: की स्थिति में द् ध् य् को संयोग संज्ञा होगी तथा संयोगान्तस्य लोप: सूत्र के अनुसार सु द् ध् य् इस पूरे पद का लोप हो जायेगा। किन्तु –

सूत्र- अलोऽन्त्यस्य 1:1.52

षष्ठी निर्दिष्टस्यान्त्यस्याल् आदेश: स्यात्। इति यलोपे प्राप्ते अर्थात् षष्ठी विभक्ति से निर्दिष्ट को जो आदेश विहित रहता है वह उसी के अन्तिम अल् के स्थान में रहता है। अत: इस

परिभाषा सूत्र के अनुसार संयोगान्त पद के अन्तिम अल् को ही लोप प्राप्त होगा परन्तु यण: प्रतिषेधो वाच्य: वार्तिक के अनुसार यण् का प्रतिषेध करना चाहिए। अत: लोप का निषेध होकर सु द् ध् य् + उपास्य: = सुद्ध्युपास्य: और "अनचि च" इसके विकल्प से "सुध्युपास्य:" दोनों रूप बनते हैं।

इसी प्रकार 'मध्वरि:' – मधु + अरि: में पूर्व वर्णित प्रक्रिया के आधार पर 'ध्' के बाद आने वाले 'उ' के परे अच् (स्वर वर्ण) 'अरि' का पहला वर्ण 'अ' है। अत: 'इको यणचि', 'तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य' तथा 'स्थानेऽन्तरतम:' सूत्रों के आधार पर किसी अन्य वर्ण की बाधा से रहित 'उ' का, स्वर वर्ण 'अ' के परे रहने पर, अत्यन्त सदृश 'व्' आदेश होता है, क्योंकि 'उ' का उच्चारण स्थान ओष्ठ तथा 'व्' का उच्चारण स्थान 'दन्त और ओष्ठ' है। 'ओष्ठ 'उ' तथा 'व्' दोनों का उच्चारण स्थान एक होने से 'यण्' के अन्य वर्ण य्, र् तथा ल् की अपेक्षा सदृशतम है। अत: 'उ' का 'व्' में परिवर्तन हुआ और मध्व् + अरि: - 'मध्वरि:' रूप सिद्ध हुआ।

धात्रंश: - धातृ + अंश:' यहां 'त्' के बाद आने वाले 'ऋ' से परे अच् (स्वर वर्ण) 'अ' है। पूर्वोक्त सूत्र – 'इको यणचि', 'तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य' तथा 'स्थानेऽन्तरतम:' के आधार पर 'ऋ' का 'अ' परे रहने पर 'र्' आदेशहुआ। 'र्' आदेश का कारण पूर्ववत् है। 'ऋ' तथा 'र्' दोनों वर्णों का उच्चारण स्थान मूर्धा होने के कारण दोनों सदृशतम हैं। 'यण्' के अन्य वर्ण 'य्, व् तथा ल् अन्य – अन्य स्थानों से उच्चरित होने के कारण 'र्' से पूर्णत: भिन्न हैं। इस प्रकार 'धात्र् + अंश: - धात्रंश: यह रूप सिद्ध हुआ।

लाकृति: - लृ + आकृति: - यहॉं 'लृ' का अच् (स्वर वर्ण) 'आ' परे रहते पूर्वोक्त सूत्रों से 'ल्' यण् आदेश हुआ। 'लृ' यण् आदेश हुआ। 'लृ' एवं 'ल्' – ये दोनों वर्ण दन्त स्थान से उच्चरित होने से सदृशतम हैं। फलत: ल् + आकृति: यह रूप सिद्ध हुआ। उपर्युक्त चार उदाहरण 'सुध्युपास्य:', 'मध्वरि:', 'धात्रंश:' तथा 'लाकृति:' ' इक् (इ, उ, ऋ, तथा लृ) के चार आदेश क्रमश: य्, व्, र् तथा ल् के हैं। अन्य उदाहरण भी इसी प्रक्रिया के आधार पर साध्य होंगे।

अभ्यास प्रश्न 1 –

(1) निम्नलिखित में सन्धि कीजिये -

क. इ/ ई – य्

अभि + उदय:

यदि + अपि

इति + आदि:

प्रति + उपकार:

नि + ऊन:

प्रति + एकम्

देवी + अनुग्रह:

नदी + एव

यादृशी + उक्ति:

(ख) उ/ ऊ – व्

अनु + अय:

सु + आगतम्

अनु + एषाम्

वधू + आगम

(ग) ऋ – र्

पितृ + इच्छा

मातृ + आज्ञा

(घ) लृ – ल्

लृ + आकृति

(2) सन्धि –विच्छेद कीजिये

इत्युक्त्वा

(क) अत्याचार:

(ख) गुर्वादेश:

(ग) पित्रुपदेश:

(घ) मात्रनुमति:

(ड.) भ्रात्रुक्तम्

(च) वध्वलंकार:

(छ) गौर्यायाति

(झ) वार्यस्ति

(ञ) दध्यानय

7.4.2 अयादि सन्धि (अय्, अव्, आय्, आव्)

नियम - यदि ए, ओ, ऐ अथवा औ के बाद कोई स्वर वर्ण हो तो ए का अय्, ओ का अव्, ऐ का आय् तथा औ का आव् हो जाता है। जैसा कि उपर्युक्त नियम से ज्ञाता होता है कि इस सन्धि में अय्, अव्, आय् अथवा आव् आदेश होता है। अत: इसी आधार पर इसका नामकरण अयादि (अय् + आदि अर्थात् अय्, अव्, आय् अथवा आव्) है। इस तथ्यको पाणिनि ने निम्नलिखित सूत्र के माध्यम से बताया है-

सूत्र - एचोऽयवायाव:। 6.1.78 एच: क्रमात् अय्, अव्, आय्, आव् एते स्युरचि।

अर्थात् एच् (ए, ओ, ऐ, औ) के स्थान में क्रमश: अय्, अव्, आय्, आव् आदेश हो, अच् (स्वर वर्ण) के परे रहने पर।

यहॉ एक प्रश्न उपस्थित होता है कि ए के स्थान पर अय्, ओ के स्थान पर अव्, ऐ के स्थान पर आय् तथा औ के स्थान पर आव् – ऐसा क्रमपूर्वक ही क्यों हो, क्रम में परिवर्तन क्यों नहीं हो सकता? इसका उत्तर पाणिनि एक अन्य सूत्र के माध्यम से देते हैं। वह है -

सूत्र- यथासंख्यमनुदेश: समानाम्। 1.3.10 समसम्बन्धी विधिर्य थासंख्यं स्यात्।

अर्थात यदि स्थानी और आदेश की संख्या समान हो तो वहॉ पर आदेश क्रम से (प्रथम को प्रथम, द्वितीय को द्वितीय इत्यादि) होते हैं। तात्पर्य यह है कि एच् प्रत्याहार में चार वर्ण हैं – ए, ओ, ऐ, औ तथा होने वाले आदेशों की संख्या भी चार हैं – अय्, अव्, आय्, आव्।

इस प्रकार स्थानी और आदेशों की संख्या समान (चार-चार) होने के कारण आदेश क्रमपूर्वक ही होंगे। अर्थात् पहले ए को पहला आदेश अय्, दूसरे ओ को दूसरा आदेश अव्, तीसरे ऐ को तीसरा आदेश आय् तथा चौथे औ को चौथा आदेश आव् ही होगा। यहॉ क्रम का उल्लंघन संभव नहीं है। निम्नलिखित उदाहरण द्रष्टव्य हैं -

हरये – हरे + ए – यहॉ 'र्' के बाद आने वाला 'ए' एच् प्रत्याहार के अन्तर्गत है ऐसे 'ए' के बाद स्वर वर्ण (अच्) 'ए' है। अत: उपर्युक्त 'एचोऽयवायाव:' सूत्र के अनुसार पूर्व 'ए' को 'अय्' आदेश हो गया। फलत: 'हर् अय् + ए' ऐसा रूप बना। सबको मिलाने के पश्चात् ' हरये ' रूप सिद्ध हुआ।

विष्णवे – विष्णो + ए – यहॉ ' ण् ' के बाद आने वाला 'ओ' एच् प्रत्याहार के अन्तर्गत है। ऐसे 'ओ' के बाद स्वर वर्ण (अच्) 'ए' है। अत: पूर्वोक्त सूत्र के अनुसार ' ओ ' को ' अव् ' आदेश हुआ। फलत- ' विष्ण् अव् + ए ऐसा रूप बना। सबको मिलाने के पश्चात् ' विष्णवे ' यह रूप निष्पन्न हुआ।

नायक: - नै + अक: - यहॉ 'न्' के बाद आने वाला ' ऐ ' एच् प्रत्याहार के अन्तर्गत है। ऐसे 'ऐ' के बाद स्वर वर्ण (अच्) 'अ' है। अत:' एचोऽयवायाव:' सूत्र से 'औ' को 'आव्' आदेश हुआ। फलत: ' प् आव् + अक:' ऐसा रूप बना। सभी को जोड़ने के पश्चात् ' पावक:' रूप सिद्ध हुआ।

उपर्युक्त उदाहरणों के माध्यम से ए, ओ, ऐ, और का स्वर्ण वर्ण परे रहने पर क्रमश: अय्, अव्, आय्, आदेश किस प्रकार होता है – यह आप जान पाये। आगे आप इसके अपवाद को जानेंगे जिसमें अन्य व्यंजन वर्ण के परे रहने पर (आगे रहने पर) ओ, औ को क्रमश: अव्, आव् आदेश होता है। पाणिनि ने इस नियम को निम्नलिखित सूत्र के माध्यम से समझाया है -

सूत्र - वान्तो यि प्रत्यये। 6.1.79

यकारादौ प्रत्यये परे ओदौतोरव् आव् एतौ स्त:। गव्यम्। नाव्यम्।

अर्थात यकारादि प्रत्यय परे रहते ('य' जिसके आदि में है ऐसा प्रत्यय जिसके आगे है) ओ, और के स्थान में क्रमश: अव्, आव् आदेश होता है। ये आदेश वान्त कहे जाते हैं। यथा – गव्यम्, नाव्यम् आदि। इसको उदाहरण के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है।

गव्यम् – गो + यम् – यहाँ 'ग्' के बाद आने वाले 'ओ' के आगे यकारादि प्रत्यय (य् जिसके आदि में है ऐसा प्रत्यय) 'यम्' है। अत: 'वान्तो यि प्रत्यये' सूत्र के अनुसार 'ग्' के बाद आने वाले 'ओ' को 'अव्' ओदश हो गया। इससे 'ग् अव् + यम्' – यह रूप बना। सबको जोड़ने पर 'गव्यम्' रूप सिद्ध हुआ।

नाव्यम् : नौ + यम् – यहाँ 'न्' के बाद आने वाले 'औ' के आगे यकारादि प्रत्यय 'यम्' है। अत: 'वान्तो यि प्रत्यये' सूत्र से 'औ' को 'आव्' आदेश हुआ। फलत: 'न् आव् + यम्' – यह रूप बना। सभी को मिलाने पर 'नाव्यम्' रूप सिद्ध हुआ।

इस प्रसंग में एक अन्य अपवाद भी द्रष्टव्य है -

मार्ग के परिमाण अर्थ में या दूरी के अर्थ में भी 'गो' शब्द के आगे 'यूति:' शब्द आये तो 'ओ' के स्थान में 'अव्' आदेश होता है। वार्तिककार कात्यायन ने इस नियम को निम्नलिखित वार्तिक से कहा है -

वार्त्तिक : अध्वपरिमाणे च। गव्यूति:।

उपर्युक्त उदाहरण गव्यूति: - गो + यूति: में 'ग्' के बाद आने वाले 'ओ' का 'यूति:' (मार्ग के परिमाण अर्थ में) शब्द के आगे रहने पर 'अव्' आदेश होकर 'ग् अव् + यूति:' ऐसा बना। सबको मिलाने पर 'गव्यूति:' (दो कोस) रूप सिद्ध हुआ।

टिप्पणी – पदान्त ए या ओ (पद के अन्त में आने वाले ए या ओ) के बाद 'अ' रहने पर यह नियम लागू नहीं होता। यथा -

वृक्षे + अपि – वृक्षेऽपि

विष्णो + अत्र – विष्णोऽत्र

इन दोनों में पूर्वरूप सन्धि है, अयादि नहीं।

अभ्यास प्रश्न 2 -

1. निम्नलिखित में सन्धि कीजिये –

(I) ए – अय्

क. शे + अनम्

ख. ने + अनम्

ग. चे + अनम्

घ. शे + आन:

ड. शे + इत:

(II) ओ – अय्

क. पो + अन:

ख. लो + अन:

ग. पो + इत्रम.

घ. भो + अनम्

ड. भानो + ए

(III) ऐ – आय्

क. गै + अन:

ख. परिचै + अक:

(IV) औ – आव्

क. भौ + अक:

ख. नौ + इक:

ग. भौ + उक:

घ. बालकौ + आगतौ

7.4.3 गुण सन्धि (अ, ए, ओ)

यदि अ वर्ण के बाद अच् हो तो पूर्व (पहले) और पर (बाद वाले) के (अ वर्ण और उस अच् के) स्थान में एक गुण आदेश होता है। अ, ए, तथा ओ को गुण कहते हैं।

इस नियम को पाणिनि ने निम्नलिखित सूत्र के माध्यम से कहा है -

सूत्र- आद् गुण:। 6.1.87

अवर्णादचि परे पूर्वपरयोरेको गुण आदेश: स्यात्। उपेन्द्र:। गंगोदकम्।

अर्थात् यदि 'अ' से अच् (स्वर वर्ण) आगे हो तो पहले और आगे वाले वर्णों (पहले तथा बाद वाले, दोनों वर्णों) के स्थान में गुण आदेश हो। यहॉं 'गुण' एक तकनीकी शब्द है। गुण से अ, ए तथा ओ वर्णों का बोध होता है। उससे यह ज्ञात होता है कि जब भी गुण आदेश हो तो अ, ए अथवा ओ रूप में हो। इसको उदाहरण के माध्यम से ठीक प्रकार से जाना जा सकता है।

उपेन्द्र: - उप + इन्द्र: - यहॉं 'प्' के आगे वर्तमान 'अ' है जिसके आगे इन्द्र का आदि वर्ण 'इ' (अच् – स्वर) है। इस स्थिति में पूर्व में पूर्व वर्ण 'अ' तथा बाद वाला वर्ण 'इ' – दोनों के स्थान में 'आद् गुण:' सूत्र से गुण एकादेश प्राप्त है। गुण एक आदेश से तात्पर्य है अ, ए अथवा ओ के रूप में आदेश। इनमें ए का उच्चारण स्थान कण्ठतालु है – ऐसा आप वर्णों के उच्चारण स्थान के माध्यम से भी जानते हैं। 'अ' का उच्चारण स्थान कण्ठ तथा 'इ' का उच्चारण स्थान तालु है। इस प्रकार जो उच्चारण स्थान 'अ' और 'इ' का है वही 'ए' का भी है। जैसा कि आप यण् सन्धि में जान आये हैं कि 'स्थानेऽन्तरतम:' सूत्र से आदेश सदृशतम का होता है। यहॉं 'अ' तथा 'इ' का उच्चारण स्थान की दृष्टि से सदृशतम 'ए' है। अत: उ प् अ + इन्द्र: में अ + इ का 'ए' गुण आदेश

होने पर 'उ प् ए न्द्र:' ऐसा रूप हुआ। सबको मिलाने पर 'उपेन्द्र:' रूप सिद्ध हुआ।

गंगोदकम् – गंगा + उदकम् – यहॉ दूसरे 'ग्' के बाद आने वाले 'आ' के बाद 'उ' (उदकम् का 'उ' वर्ण) है। 'आद् गुण:' सूत्र से 'आ' एवं 'उ' – इन दोनों वर्णों के स्थान पर एकादेश प्राप्त है। स्थानेऽन्तरतम:' सूत्र से आदेश सदृशतम होता है। यहॉ 'अ' का कण्ठ तथा 'उ' का उच्चारण स्थान कण्ठोष्ठ का सदृशतम है। अत: 'आ + उ' को गुण एकादेश 'ओ' होकर 'गंग् ओ दकम्' – यह रूप बना। सबको मिलाने पर 'गंगोदकम्' रूप सिद्ध हुआ।

कृष्णर्द्धि: - कृष्ण + ऋद्धि: - यहॉ 'ण्' के बाद 'अ' है तथा उसके आगे ऋ अच् (स्वर वर्ण) है। 'आद् गुण:' सूत्र से 'अ' एवं 'ऋ' – इन दोंनों वर्णों के स्थान में गुण एकादेश प्राप्त है। अत: 'अ' एवं 'ऋ' – इन दोनों के स्थान पर गुण एकादेश 'अ' हुआ। किन्तु यहॉ यह ज्ञातव्य है कि गुण एकादेश 'अ' के साथ हमेशा 'र्' का प्रयोग होता है, यदि आगे ऋ हो। फलत: कृष्ण् अर् द्धि: - यह रूप बना। सभी को मिलाने पर 'कृष्णर्द्धि:' रूप सिद्ध हुआ।

तवल्कार: - तव + लृकार: - यहॉ 'व्' के बाद 'अ' है तथा उसके आगे 'लृ' अच् (स्वर वर्ण) है। 'आद् गुण:' सूत्र से 'अ' एवं 'लृ' – इन दोनों वर्णों के स्थान में गुण एकादेश 'अ' उपस्थित होता है क्योंकि 'अ' के आगे 'लृ' है। इस प्रकार 'तव् अल् कार:' यह रूप बना। सभी को मिलाने से 'तवल्कार:' रूप सिद्ध हुआ। उपर्युक्त प्रक्रिया के अनुसार अन्य उदाहरण भी साध्य होंगे।

अभ्यास प्रश्न 3

निम्नलिखित में सन्धि – विच्छेद किजिये -

(क) द्रव्यर्द्धि:

(ख) सप्तर्षय:

(ग) ग्रीष्मर्तु:

(घ) महर्षि:

(ड.) ममल्कार:

(च) महोर्मि:

(छ) एकोनविंशति:

(ज) महोत्सव:

(झ) सूर्योदय:

(ट) महेश:

(ठ) महेन्द्र:

(ड) गणेश:

(ढ) देवेन्द्र:

(ण) रमेश:

(त) महोदय:

(थ) चन्द्रोदय:

(द) देवर्षि:

(ध) वर्षर्तु:

7.4.4 दीर्घ सन्धि

नियम – ह्रस्व या दीर्घ अ, इ, उ, ऋ के बाद यदि क्रमश: ह्रस्व या दीर्घ अ, इ, उ, ऋ आये तो दोनों मिलकर दीर्घ (क्रमश: आ, ई, ऊ, ॠ) हो जाते हैं।

यहॉ दीर्घ सन्धि के 'दीर्घ' नामकरण का तात्पर्य है दीर्घ (आ, ई, ऊ, ॠ) होना। पाणिनि ने इस तथ्य को निम्नलिखित सूत्र से कहा है -

सूत्र - अक: सवर्णे दीर्घ: । 6.1.101

अक: सवर्णेऽचि परे पूर्वपरयोदीर्घ एकादेश: स्यात्। दैत्यारि:। श्रीश:। विष्णूदय:। होतृकार:।

अर्थात् अक् से सवर्ण अच् (स्वर वर्ण) परे रहने पर पूर्व पर के स्थान में दीर्घ एकादेश हो। तात्पर्य यह है कि अक् प्रत्याहार के अन्तर्गत अ, इ, उ, ऋ, लृ वर्ण आते हैं। इनमें से किसी एक वर्ण के बाद यदि उसी का सवर्ण स्वर वर्ण (यथा अ/आ के बाद अ/आ) आये तो दोनों वर्णों के स्थान में एक दीर्घ आदेश होता है। इन वर्णों में 'लृ' पद यह नियम प्रयुक्त नहीं होगा, क्योंकि उसका दीर्घ नहीं होता।

उदाहरण – दैत्यारि: - दैत्य + अरि: - इस स्थिति में 'य.' के बाद आने वाले 'अ' के बाद 'अरि:' का आदि वर्ण 'अ' सवर्ण अच् (स्वर वर्ण) है। अत: अक: सवर्णे दीर्घ:' सूत्र से दोनों के स्थान में सदृशतम आदेश दीर्घ 'आ' हुआ। फलत: 'दैत्य आ रि:' यह रूप बना। सभी को मिलाने पर 'दैत्यारि:' रूप सिद्ध हुआ।

श्रीश: - श्री + ईश: - यहॉ 'श्र्' के बाद आने वाले 'ई' के बाद सवर्ण (अच्) ईश:' का आदि 'ई' है। अत: 'अक: सवर्णे दीर्घ:' सूत्र से दोनों 'ई + ई' के स्थान में दीर्घ एक 'ई' आदेश हुआ। फलत: 'श्र् ई श:' यह रूप बना। सभी को मिलाने पर 'श्रीश:' रूप निष्पन्न हुआ। इसी

प्रकार विष्णु + उदय: - विष्णूदय: एवं होतृ + ऋकार: - होतृकार: को जानना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न 4-

1- निम्नलिखित में सन्धि कीजिये -

(क) कमल + आकर:

(ख) श्रद्धा + अस्ति

(ग) विद्या + आलय:

(घ) मुनि + इन्द्र:

(ड.) सती + ईश:

(च) भानु + उदय:

(छ) वधू + उत्सव:

(ज) नेतृ + ऋभुक्षा

(झ) पक्तृ + ऋजीषम्

2- निम्नलिखित में सन्धि – विच्छेद कीजिये -

(क) वधूररीकृतम्

(ख) तरूर्ध्वम्

(ग) गिरीश:

(घ) पितृणम्

(ड.) पितृणम्

(च) लक्ष्मीश्वर:

(छ) कवीश्वर:

(ज) विद्याभ्यास:

(झ) परमार्थ:

7.5 वृद्धि सन्धि (आ, ऐ, औ)

अ या आ के बाद एच् ए, ओ, ऐ, औ रहने पर पहले और बाद वृद्धि सन्धि का नामकरण उपर्युक्त 'आ, ऐ, औ' के आधार पर हुआ है। क्योंकि ये वर्ण वृद्धि संज्ञक हैं, अत: इनसे सम्बद्ध सन्धि वृद्धि सन्धि के नाम से जानी जाती है।

पाणिनि ने वृद्धि सन्धि का निम्नलिखित सूत्र से विधान किया है -

सूत्र- वृद्धिरेचि। 6.1.88

आदेचि परे वृद्धिरेकादेश: स्यात्। कृष्णैकत्वम्। गंगौघ:। देवैश्वर्यम्। कृष्णौत्कण्ठ्यम्।

अर्थात् अवर्ण ('अ' या 'आ') से एच् (ए, ओ, ऐ, औ) परे हो तो पूर्व पर के स्थान में वृद्धि एक आदेश हो। इसे उदाहरणों के माध्यम से भलीभाँति समझा जा सकता है -

कृष्णैकत्वम् – कृष्ण + एकत्वम् – इस स्थिति में 'ण्' के बाद आने वाले 'अ' के आगे 'एकत्वम्' का आदि वर्ण 'ए' एच् के अन्तर्गत आता है। अत: 'अ' के आगे 'ए' के होने से 'वृद्धिरेचि' सूत्र से दोनों वर्णों का एक सदृशतम आदेश 'ऐ' हुआ। फलत: 'कृष्ण् ऐ कत्वम्' – यह रूप बना। सभी को मिलाने पर 'कृष्णैकत्वम्' रूप सिद्ध हुआ।

गंगौघ: - गंगा + ओघ: - यहाँ दूसरे 'ग्' के बाद आने वाले 'आ' के आगे 'ओघ:' का आदि वर्ण 'ओ' है जो एच् प्रत्याहार के अन्तर्गत आता है। अत: दोनों वर्ण 'आ + ओ' पूर्वोक्त सूत्र से 'औ' वृद्धि एक आदेश हुआ। फलत: 'गंग् औ घ:' यह रूप बना। सभी को मिलाने पर 'गंगौघ:' रूप सिद्ध हुआ । इसी प्रकार 'देव + ऐश्वर्यम् – देवैश्वर्यम्' तथा 'कृष्ण + औत्कण्ठ्यम् – कृष्णौत्कण्ठ्यम्' को भी जानना चाहिए।

वृद्धि सन्धि के विषय में एक अन्य महत्त्वपूर्ण विधान को जानना आवश्यक है। पाणिनि के अनुसार – यदि अवर्णान्त उपसर्ग ('अ' या 'आ' जिस उपसर्ग के अन्त में हो) के बाद ऋ है जिस धातु के आदि में हो तो पूर्व पर (दोनों वर्णों) के स्थान में वृद्धि एक आदेश हो –

सूत्र- उपसर्गादृति धातौ। 6.1.91

अवर्णान्तादुपसर्गाद् ऋकारादौ धातौ परे वृद्धिरेकादेश: स्यात्। प्रार्च्छति

उदाहरण -प्रार्च्छति – प्र + ऋच्छति – यहाँ 'प्र' उपसर्ग के अन्त में 'अ' (प्र्+अ) है। उसके आगे 'ऋच्छति' क्रिया में 'ऋच्छ' धातु का आदि वर्ण 'ऋ' है। अत: 'अ' एवं 'ऋ' – उन दोनों वर्णों के स्थान में वृद्धि एक आदेश 'आ' हुआ। 'आ' सदैव 'र्' के साथ उपस्थित होता है। अत: 'प्र् आर् च्छति' – यह रूप बना। सभी को मिलाने पर 'प्रार्च्छति' रूप सिद्ध हुआ।

अभ्यास प्रश्न 5-

1- निम्नलिखित में सन्धि कीजिये -

(क) पंच + एते

(ख) जन + एकता

(ग) दीर्घ + एरण्ड:

(घ) मा + एवम्

(ड.) एक + एकम्

(च) परम + औषधि:

(छ) दिव्य + औषधम्

(ज) महा + औत्सुक्यम्

(झ) प्र + ऋच्छति

(ट) प्र + ऋणोति

2- निम्नलिखित में सन्धि – विच्छेद कीजिये -

(क) दर्शनौत्सुक्यम्

(ख) स्थूलैण:

(ग) सुखौपयिकम्

(घ) तस्यौदार्यम्

(ड.) महैन:

7.6 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि दो वर्णों के मेल से होने वाले परिवर्तन को सन्धि कहते हैं। सन्धि के तीन भेद हैं – स्वर (अच्) सन्धि, व्यंजन (हल्) सन्धि तथा विसर्ग सन्धि।दो स्वर वर्णों के मेल से होने वाले परिवर्तन को स्वर सन्धि कहते हैं।

स्वर सन्धि के प्रमुख भेदों में यण्, अयादि, गुण, दीर्घ एवं वृद्धि सन्धि हैं। यण् सन्धि में ह्रस्व या दीर्घ इ, उ, ऋ, लृ के बाद किसी असवर्ण स्वर के आने पर इ का य्, उ का व्, ऋ का र् तथा लृ का ल् हो जाता अयादि सन्धि में ए, ओ, ऐ, औ के बाद कोई स्वर वर्ण हो तो ए का अय्, ओ का अव्, ऐ का आय् तथा औ का आव् हो जाता है। गुण सन्धि में यदि अवर्ण (अ या आ) के आगे इवर्ण (इ या ई) हो तो दोनों मिलकर ए, उवर्ण (उ या ऊ) हो तो दोनों मिलकर ओ, ऋ हो तो दोनों मिलकर अर् तथा लृ हो तो दोनों मिलकर अल् हो जाते हैं। दीर्घ सन्धि में ह्रस्व या दीर्घ अ, इ, उ, ऋ के बाद यदि क्रमश: ह्रस्व या दीर्घ अ, इ, उ, ऋ आये तो दोनों मिलकर दीर्घ (क्रमश: आ,

ई, ऊ, ऋ) हो जाते हैं। वृद्धि सन्धि में अवर्ण (अ या आ) के बाद यदि 'ए' अथवा 'ऐ' आये तो दोनों मिलकर 'ऐ' तथा 'ओ' अथवा 'औ' आये तो दोनों मिलकर 'औ' हो जाते हैं। वृद्धि रूप में जहॉ भी 'आ' हो तो वह 'र्' के साथ ही उपस्थित हो। वृद्धि सन्धि में यदि अवर्णान्त उपसर्ग के बाद ऋकारादि धातु हो तो दोनों वर्णों के स्थान में वृद्धि एकादेश 'आर्' हो जाता है।

7.7 पारिभाषिक शब्दावली

1.**आदेश** – संस्कृत व्याकरण में 'आदेश' एक तकनीकी शब्द है। आदेश शब्द के अर्थ को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि जो किसी स्थान में पहले से रहने वाले वर्ण को हटाकर स्वयं उपस्थित होता है वह आदेश कहलाता है। जैसे – सुधी + उपास्य: में 'ई' को हटाकर 'य्' उपस्थित होता है। आदेश को शत्रु के समान माना गया है – शत्रुवदादेश:, क्योंकि वह पहले से उपस्थित वर्ण को हटाकर वहॉ स्वयं स्थित हो जाता है।

2.**स्थानी** – स्थानी शब्द भी पारिभाषिक है। इसके विषय में कहा गया है कि जिसके स्थान में अर्थात् जिस वर्ण के ऊपर आदेश होता है वह स्थानी कहलाता है। जैसे – 'सुधी + उपास्य:' में 'ई' वर्ण के स्थान में 'य्' का आदेश होता है। अत: 'ई' स्थानी है।

3. **वार्तिक – उक्तानुक्तदुरूक्तानां चिन्ता यत्र प्रवर्तते।**

वं ग्रन्थं वार्तिकं प्राहुर्वार्तिकज्ञा विचक्षणा:।।

अर्थात उक्त (पहले कहे गये), अनुक्त (नहीं कहे गये) तथा दुरूक्त (त्रुटिपूर्ण रूप से कहे गये) विषय पर जहॉ विचार किया जाता है, उसे विद्वान लोग वार्तिक कहते हैं। वैयाकरण कात्यायन का वार्तिक, जो कि पाणिनि के द्वारा रचित अष्टाध्यायी के बाद लिखा गया, संस्कृत व्याकरण का प्रसिद्ध ग्रंन्थ है।

4.उपसर्ग – प्र आदि उपसर्गों की क्रिया के योग में उपसर्ग संज्ञा होती है। प्र आदि उपसर्गों की संख्या बाईस है – प्र, परा, अप्, सम्, अनु, अव्, निस्, निर्, दुस्, दुर्, वि, आङ्, नि, अधि, अपि, अति, सु, उत्, अभि, प्रति, परि, उप।

5.धातु – संस्कृत व्याकरण में क्रियावाची भू आदि की धातु संज्ञा होती है। भू आदि की गणना पाणिनि के द्वारा रचित 'धातुपाठ' नामक ग्रंथ में की गयी है। क्रियावाची भू आदि कहने से पृथ्वीवाचक भू आदि को इससे पृथक् समझना चाहिए।

7.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1 के उत्तर -

1. (i) (क) अभ्युदय: (ख) यद्यपि

(ग) इत्यादि: (घ) प्रत्युपकार:

(ड.) न्यून: (च) प्रत्येकम्

(छ) देव्यनुग्रह: (ज) नद्येव

(झ) यादृश्युक्ति:

(ii) (क) अन्वय: (ख) स्वागतम्

(ग) अन्वेषणम् (घ) वध्वागमनम्

(iii) (क) पित्रिच्छा (ख) मात्राज्ञा

(iv) (क) लाकृति:

2. (क) इति + उक्त्वा (ख) अति + आचार:

(ग) गुरू + आदेश: (घ) पितृ + उपदेश:

(ड.) मातृ + अनुमति: (च) मातृ + उक्तम्

(छ) वधू + अलंकार: (ज) गौरी + आयाति

(झ) वारि + अस्ति (ट) दधि + आनय

अभ्यास प्रश्न 2 के उत्तर

1. i. (क)शयनम् (ख) नयनम्

(ग) चयनम् (घ) शयान:

(ड.) शयित:

Ii. (क)पवन: (ख) लवन:

(ग) पवित्रम् (घ) भवनम्

(ड.) भानवे

iii. (क) गायन: (ख) परिचायक:

iv. (क) भावक: (ख) नाविक:

(ग) भावुक: (घ) बालकावागतौ

अभ्यास प्रश्न 3 के उत्तर

(क) द्रव्य + ऋद्धि: (ख) सप्त + ऋषय:

(ग) ग्रीष्म + ऋतु: (घ) महा + ऋषि:

(ड.) मम + लृकार: (च) महा + ऊर्मि:

(छ) एक + ऊनविंशति: (ज) महा + उत्सव:

(झ) सूर्य + उदय: (´´) महा + ईश:

(ट) महा + इन्द्र: (ठ) गण + ईश:

(ड) देव + इन्द्र: (ढ) रमा + ईश:

(ण) महा + उदय: (त) चन्द्र + उदय:

(थ) देव + ऋषि: (द) वर्षा + ऋतु:

अभ्यास प्रश्न 4 के उत्तर

(क) कमलाकर: (ख) श्रद्धास्ति

(ग) विद्यालय: (घ) मुनीन्द्र:

(ड.) सतीश: (च) भानूदय:

(छ) वधूत्सव: (ज) नेतृभुक्षा

(झ) पक्तृजीषम्

2. (क) वधू + उररीकृतम् (ख) तरू + ऊर्ध्वम्

(ग) गिरि + ईश: (घ) पितृ + ऋणम्

(ड.) सु + उक्ति: (च) लक्ष्मी + ईश्वर:

(छ) कवि + ईश्वर: (ज) विद्या + अभ्यास:

(झ) परम + अर्थ:

अभ्यास प्रश्न 5 के उत्तर

(क) पंचैते: (ख) जनैकता

(ग) दीर्घैरण्ड: (घ) मैवम्:

(ड.) एकैकम्: (च) परमौषधि:

(छ) दिव्यौषधम्: (ज) महौत्सुक्यम्

(झ) उपार्च्छति ( ) प्राणौति

2. (क) दर्शन + औत्सुक्यम् (ख) स्थूल + एण:

(ग) सुख + औपयिकम्: (घ) तस्य + औदार्यम्

(ड.) महा + एन:

7.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वरदराजाचार्य, वरदराज, लघुसिद्धान्त कौमुदी, व्याख्याकार एवं सम्पादक – श्री धरानन्द शास्त्री, (2000) मोतीलाल बनारसी, दिल्ली

2.वरदराज, लघुसिद्धान्त कौमुदी, व्याख्याकार – महेश सिंह कुशवाहा, (1994) चैखम्बा विद्याभवन, वाराणसी

7.10 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. मिश्र, कमलाकान्त, व्याकरणसौरभम्, (2002) एन0सी0ई0आर0टी0, नई दिल्ली।

2. शास्त्री, चक्रधर , नौटियाल 'हंस'बृहद् अनुवाद चन्द्रिका, (1984) मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।

3. शास्त्री, नेमिचन्द्र, स्नातक संस्कृत व्याकरण, (संवत् 2032), ज्ञानदा प्रकाशन, पटना

7.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. निम्नलिखित विषयों पर टिप्पणी लिखें -

(क) यण् सन्धि

(ख) अयादि सन्धि

(ग) गुण सन्धि

(घ) दीर्घ सन्धि

(ड.) वृद्धि सन्धि

2. स्वर सन्धि पर एक निबंध लिखें

इकाई:8. प्रकृतिभाव विधायक सूत्र-उदाहरण एवं व्याख्या

8.1 प्रस्तावना
8.2 उद्देश्य
8.3 प्रकृतिभाव विधायक सूत्र - अर्थ एवं प्रतिपाद्य
8.4 प्रकृतिभाव विधायक सूत्र
8.4.1 - सर्वत्र विभाषा गोः 6.1.122
8.4.2 - प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम् 6.1.125
8.4.3 - इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च 6.1.127
8.4.4 - ऋत्यकः 6.1.128
8.5 सारांश
8.6 शब्दावली
8.7 अभ्यास प्रश्न एवं उनके उत्तर
8.8 सन्दर्भ - ग्रन्थ -सूची
8.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
8.10 निबन्धात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

नीतिशास्त्र, व्याकरण एवं अनुवाद से सम्बन्धित यह आठवीं इकाई है। इससे पहले की इकाई के अध्ययन के बाद आप बता सकेंगे कि स्वर सन्धि क्या है ? इसके कितने भेद हैं ? यण्,अयादि,गुण,दीर्ध तथा वृद्धि सन्धि की सोदाहरण व्याख्या किस प्रकार की जा सकती है ? संस्कृत एवं अन्य भाषा - साहित्य में स्वर सन्धि की उपयोगिता क्या है ?

स्वर सन्धि का परिचय प्राप्त करने के पश्चात् आप प्रकृति भाव का विधिवत् अध्ययन कर पाएंगे। इस इकाई में मुख्य रूप से प्रकृतिभाव विधायक सूत्रों की उदाहरण सहित व्याख्या प्रस्तुत की जाएगी।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप प्रकृतिभाव विधायक सूत्रों को उदाहरण के साथ समझा पाएंगे।

8.2 उद्देश्य

1. प्रकृतिभाव क्या है – इसके विषय में समझा पाएंगे।
2. लघुसिद्धान्त कौमुदी मे उल्लिखित प्रकृतिभाव विधायक सूत्रों की उदाहरण सहित व्याख्या कर पाएंगे।
3. प्रकृतिभाव की प्रक्रिया को सम्यक रूप से जानकर अपनी भाषा एवं लेखन में उसका समुचित प्रयोग कर पाएंगे।
4. प्रकृतिभाव विधायक सूत्रों का व्याकरण के अन्य प्रकरणों में उपयोग कर पाएंगे।
5. प्रकृति भाव विधायक सूत्रों का ठीक प्रकार से अध्ययन कर हिन्दी आदि अन्य भाषाओं में इसके स्वरूप को भलीभॉति जान पाएंगें।
6. अन्य भाषाओं में प्रकृति भाव की सरंचना उपलब्ध है या नहीं इसका निर्णय कर पाएंगे।
7. आधुनिक भाषा विज्ञान में इसका सम्यक् प्रकार से उपयोग कर पाएंगे।
8. संस्कृत में निहित किसी भी शास्त्र के अध्ययन ,अध्यापन , अर्थनिर्धारण , आदि में इसका उपयोग कर पाएंगें।
9. प्रकृति भाव संस्कृत भाषा एवं व्याकरण की एक नैसर्गिक देन है- इसको स्थापित कर पाएंगे।

8.3 प्रकृतिभाव विधायक सूत्र – अर्थ एवं प्रतिपाद्य

स्वर सन्धि के अध्ययन के क्रम मे आपने देखा कि संस्कृत के प्रत्येक शब्द के अन्त मे स्वर, व्यंजन, अनुस्वार अथवा विसर्ग अवश्य रहता है तथा उस शब्द के आगे जब किसी दूसरे शब्द के होने से उनका मेल होता है तब पूर्व शब्द के अन्तवाले स्वर, व्यंजन आदि मे कुछ परिवर्तन होता है, जिसे सन्धि कहते है। परन्तु कुछ परिस्थितियॉ ऐसी होती है या दूसरे शब्दों में कहें तो कुछ अपवाद स्वरूप ऐसे उदाहरण उपलब्ध होते हैं जहॉ सन्धि के नियम क्रियान्वित नहीं हो पाते है। तात्पर्य यह है कि वहॉ सन्धि के नियम परिस्थिति रहने पर भी वर्षो के मध्य किसी प्रकार

का परिवर्तन या विकार सम्भव नहीं हो पाता। वर्ण यथावत् उपस्थित हो जाते हैं। इसी स्वरूप को प्रकृतिभाव के नाम से जाना जाता है। अन्य शब्दों में वर्णों का अपनी मूल अवस्था में रह जाना, विकारभाव को प्राप्त न होना प्रकृतिभाव है। उदाहरण स्वरूप (हरि एतौ) यहॉ स्वर सन्धि के नियमो के अनुसार हरी के अन्तिम वर्ण (ई) तथा (एतौ) के प्रथम वर्ण ए के मध्य सन्धि सम्भव है अर्थात् विकार हो सकता था, परन्तु ऐसा नही होता। यहॉ किसी भी प्रकार का विकार नही होते हुए ये अपने मूल रूप में ही उपस्थित रहते हैं। अतः यही उसका प्रकृतिभाव रूप है। पाणिनि से आप जान पाएंगे कि किन-किन परिस्थितियों में प्रकृतिभाव सम्भव है। यहॉ मुख्य रूप से आप प्रकृतिभाव सम्बन्धि चार सूत्रों का अध्ययन कर पाएंगे।

8.4 प्रकृतिभाव विधायक सूत्र

लघुसिद्धान्त कौमुदी में प्रकृतिभाव के विधायक चार सूत्र उपलब्ध होते हैं। आप यहॉ इन चार सूत्रों की सोदाहरण व्याख्या जानेंगे। ये चार सूत्र है - 1. सर्वत्र विभाषा गोः प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्, इकोऽस्वर्णे शकल्यस्य हस्वश्च तथा ऋत्यकः।

8.4.1 सर्वत्र विभाषा गोः 6.1.122

लेके वेदे चैङन्तस्य गोरति वा प्रकृतिभावःपदान्ते।गो अग्रम्. गोऽग्रम्। एङन्तस्य किम् - चित्रग्वग्रम्। पदान्ते किम् ? - गोः

अर्थ - लौकिक संस्कृत भाषा - साहित्य अथवा वैदिक संस्कृत भाषा -साहित्य में एङन्त (गो) शब्द के आगे (अकार) हो तो विकल्प से प्रकृतिभाव होता है । प्रकृतिभाव से तात्पर्य है कि वे वर्ण यथावत् रहेंगे वहॉ कोई विकार या परिवर्तन नहीं होगा। उदाहरण के लिए गो अग्रम् (गाय का अगला हिस्सा अथवा गाय के सामने) में गो के आगे अग्रम् का पहला वर्ण (अकार) है उपर्युक्त नियम के अनुसार गो के आगे अकार के रहने से यहॉ कोई विकार या परिवर्तन नही होता अर्थात् प्रकृतिभाव हो जाता है, जिससे गो अग्रम ऐसा ही रूप उपलब्ध होता है। यही प्रकृतिभाव की अवस्था है। क्योंकि यह नियम विकल्प से काम करता है, अतः इसका दूसरा रूप भी उपलब्ध होता है जहॉ विकार या परिवर्तन होता हुआ 'एङः पदान्तादति,'सूत्रों से 'गो अग्रम् = 'गोऽग्रम्' रूप निष्पन्न करता है। यह पूर्व रूप सन्धि का उदाहरण है। यहॉ यह ध्यान देने योग्य है कि नियम के अर्न्तगत 'एङन्त' 'गो' शब्द के रहने पर ही प्रकृतिभाव हो- ऐसा कहा गया है। तात्पर्य यह हैकि एड.न्त अर्थात् 'एङ्' हो अन्त में जिस 'गो' शब्द के वहीं प्रकृतिभाव हो। ' एङ्.' प्रत्याहार है और इसके अर्न्तगत ' ए ' ओ ' दो वर्ण आते है। इस प्रकार यदि ' गो ' शब्द के अन्त में ' ए ' या ' ओ हो तो तभी ' अकार ' के परे रहत प्रकृतिभाव होता है। यदि ऐसा न हो तो फिर प्रकृतिभाव भी सम्भव नही है। जैसे - ' चित्रग्वग्रम् ' मे ' चित्रगु अग्रम् ' है। ' चित्रगु ' में ' गु ' शब्द गो का ही रूप है परन्तु वह एङ.न्त नही है। अर्थात् ' ए ' अथवा ' ओ ' युक्त नहीं है अपितु ' ऽ ' से युक्त है। अतः उपर्युक्त नियम यहॉ काम नही करता , क्योकि ' ए ' या ओ वर्ण अन्त वाले गो (ओ इसके अन्त मे है) शब्द के आगे ' अकार 'रहने पर प्रकृतिभाव होगा। ' चित्रगु अग्रम् ' मे प्रकृतिभाव न होकर 'इको यणचि' से यण् सन्धि होती है तथा ' चित्रग्वग्रम् रूप बनता है।

आप यहॉ एक अन्य उदाहरण देखें। ' गोः - मे ' गो अः ' है। यहॉ भी उपर्युक्त नियम के अनुसार प्रकृतिभाव होना चाहिए, क्योकि एङःन्तः ' गो ' के आगे ' अकार ' है। अतः प्रकृतिभाव की स्थिति उपस्थित होती है। परन्तु ऐसा नहीं होता क्योकि यहॉ ' गो ' पद नहीं है, अपितु प्रातिपदिक हैं। पद वह होता है जिस के अन्त मे सु आदि अथवा तिप् आदि प्रत्यय हो। यहॉ उपस्थिति ' गो ' पद में ' ओ ' पदान्त नहीं है, जबकि नियम के अनुसार पदान्त ' ओ ' रहने पर ही उसके आगे ' अ ' के आने पर प्रकृतिभाव होता है। ' गो अः ' मे ' गो ' प्रातिपदक है, पदान्त तो 'अ ' के बाद आनेवाला विसर्ग हैं इस प्रकार पदान्त ' ओ ' नही होने के कारण ' सर्वत्र विभाषा गोः की प्रकृति यहॉ नही होगी, क्योकि ' गो 'एङन्त होने पर भी पदान्त नहीं है। परन्तु नियम की प्रकृति पदान्त ' ओ ' के रहने पर ही सम्भव है। निष्कर्षतः 'गो $अः ' में 'ङसिङसोश्च ' सूत्र से पूर्वरूप सन्धि होती है तथा ' अ ' का ' ओ ' मे मिल जाने से ' गोः' शब्द ही शेष रहता है।

8.4.2 प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम् 6.1.125

एतेऽचि प्रकृत्या स्युः आगच्छ कृष्ण ऽऽ अत्र गौश्चरति।

अर्थ - प्लुत संज्ञक और प्रगृह्य संज्ञक को अच् परे रहने पर प्रकृतिभाव होता है ,सामान्य रूप से तीन मात्राओं से युक्त स्वर प्लुत होता है। इस विषय मे कहा गया है।

एकमात्रा भवेद् ह्रस्वो द्विमात्रा दीर्घ उच्यते।

त्रिमात्रस्तु प्लुतो ज्ञेयो व्यंजन चार्धमात्रिकम्॥

अर्थात् ह्रस्व स्वर में एक मात्रा, दीर्घ स्वर में दो मात्रा, प्लुत स्वर में तीन मात्रा तथा व्यंजन में आधी मात्रा होती है। सामान्य रूप से चुटकी बजाने में पलक गिरने में जितना समय लगता है उसे मात्रा के रूप में जाना जाता है। इसके अतिरिक्त जिसको दूर से बुलाया जाता है उसके ' टि 'की भी विकल्प से प्लुत संज्ञा होती है। उदाहरण के लिए 'आगच्छ कृष्ण 3 अत्र गौश्चरति ' इस वाक्य मे कृष्ण को दूर से बुलाया जा रहा है अतः ' कृष्ण ' में ' टि ' की प्लुत संज्ञा होगी। ' टि ' की व्याख्या ' शब्दावली 'शीर्षक में देखें। यहॉ कृष्ण में ' ण् ' से पर ' अकार ' की प्लुत संज्ञा होती है। ऐसे प्लुत संज्ञक वर्ण से परे यदि ' अच् ' (कोई भी स्वर वर्ण हो) हो तो वहॉ प्रकृतिभाव होता है। प्रस्तुत उदाहरण आगच्छ कृष्ण 3 अत्र गौश्चरति मे ' कृष्ण ' में 'णकार ' के बाद आने वाला अकार प्लुत संज्ञक है। उसके परे ' अत्र ' का आदि वर्ण ' अ ' अच् है। अतः प्लुत प्रगृह्या अचि नित्यम् सूत्र से प्रकृतभाव होता है। प्रकृतिभाव होने से यहॉ किसी प्रकर का विकार या परिवर्तन नही होता है। यद्यपि ' ण् ' के परे आनेवाला ' अकार ' और 'अत्र' के आदि वर्ण अकार के मध्य अकः सवर्णे दीर्घः से दीर्घसन्धि सम्भव थी, किन्तु प्रकृतिभाव होने के कारण ऐसा नही हो पाया।

उपर्युक्त सूत्र में दूसरा नियम प्रगृह्य संज्ञक पद से सम्बद्ध है। अर्थात् यदि प्रगृह्य संज्ञक से परे अच् हो तो प्रकृतिभाव होता हैं सर्वप्रथम आप प्रगृह्य संज्ञक पदों को जानें। इसके लिए लघुसिद्धान्त

कौमुदी में निम्नलिखित सूत्र दिये गये है-

ईदूदेद्विवचनं प्रगृह्यम् ।.।.॥ ईदूदेदन्तं द्विवचनं प्रगृह्यसंज्ञं स्यात्। हरी एतौ। विष्णू

इमौ । गंगे अमू ।

अर्थ - ईकारान्त, ऊकारान्त और एकारान्त द्विवचन की प्रगृह्य संज्ञा होती है। यहॉ ' हरी ' ईकारान्त है, क्योकि उसके अन्त में ईकार है। ' विष्णु ' ऊकारान्त है , क्योकि उसके अन्त में ऊकार है। ' गंगे ' एकारान्त है, क्योकि उसके अन्त में एकार है।उसके अतिरिक्त तीनों हरी, विष्णु तथा गंगे , द्विवचन भी हैं । अतः इन तीनो की उपर्युक्त सूत्र से प्रगृह्य संज्ञा होती है। प्रगृह्य संज्ञक होने के कारण इनके परे अच् होने पर अर्थात् 'हरी ' के ईकार से परे ' एतौ ' का आदि वर्ण इकार अच् रहने पर तथा गंगे के एकार के परे ' अमू ' का आदि वर्ण अकार अच् परे रहने पर 'प्लुत प्रगृह्या अचि नित्यम् ' से तीनों उदाहरण में प्रकृति भाव होता है। अतः बिना विकार या परिवर्तन के केवल मूल स्वरूप में वे उपलब्ध होते हैं ।

2- अदसो मात् 1.1.12

अस्मात् परावीदूतौ प्रगृह्यौ स्तः। अमी ईशाः। रामकृष्णावमू आसाते ।

अर्थ -मकारान्त अदस् शब्द से परे पर ईकार और ऊकार की प्रगृह्य संज्ञा होती है। उदाहरण के लिए

' अमी ईशाः ' - यहॉ ' अमी ' पद मकारान्त 'अदस् ' है । ' अदस् ' का प्रथमा विभक्ति बहुवचन में ' अमी ' रूप बनता है । ऐसे मकारान्त अदस् अर्थात् अमी का अन्तिम वर्ण ' ईकार ' है, जिसकी प्रगृह्य संज्ञा होती है । इसी प्रकार रामकृष्णौ अमू = रामकृष्णावमू ' में मकारान्त अदस् सम्बन्धी ' अम् ' मे ' ऊकार ' की प्रगृह्य संज्ञा होती है । अतः ' अमी ईशाः ' में ' अमी ' का ईकार तथा ईशाः में आदि ईकार इन दोनो में ' प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम ' से प्रकृतिभाव होता है, क्योकि अमी मे ईकार की प्रगृह्य संज्ञा है तथा उसके परे ' ईशाः 'का आदि वर्ण ईकार अच् है । अतः उपर्युक्त नियम के कारण कोई अन्य सन्धि न होकर प्रकृतिभाव हुआ, इसी प्रकार ' रामकृष्णावमू ' आसाते में अमू का अन्तिम वर्ण ' ऊकार ' है उसकी प्रगृह्य संज्ञा है । उसके परे ' आसाते ' का आदि वर्ण आकार अच् है, अतः प्रकृतिभाव हो गया।

3. निपात एकाजनाङ् 1.1.14

एकोऽज् निपात आङ्. वर्जः प्रगृह्यः स्यात् । इ इन्द्रः । 3 उमेशः ।

अर्थ -आङ् को छोड़कर एक अच् वाले अथवा एक स्वर वाले नियात की प्रगृह्य संज्ञा होती है । निपात के विषय में ' शब्दावली ' विन्दू को देखें। उपर्युक्त उदाहरण में - इ इन्द्रः मे प्रथम 'दू ' एक स्वरवाला है तथा नियात है, अतः उसकी प्रगृह्य संज्ञा हुई। ठीक उसी प्रकार उ उमेशः मे प्रथम ' उ ' एक स्वरवाला है तथा निपात है, अतः उसकी भी प्रगृह्य संज्ञा हुई । ' इ इन्द्र 'में प्रथम ' इ ' के प्रगृह्य संज्ञा होने पर उसके परे अच् ' इ ' (इन्द्र का आदि वर्ण) के होने से दीर्घ प्राप्त था, परन्तु ' प्लुतप्रगृह्याऽनित्यम् ' से प्रकृतभाव हुआ, अर्थात् किसी भी प्रकार का विकार सम्भव न हो पाता। यहॉ यह ध्यान देना आवश्यक है कि ' आङ् ' पर यह नियम कार्य नही करेगा । ' आङ् ' मे ' आ ' शेष रहता है जिसका अर्थ है- ईषत् या अल्प । इस अर्थ वाले ' आ ' की प्रगृह्य संज्ञा नही होती

है, यद्यपि यह भी एक स्वरवाला है। अतः इस पर प्रकृतिभाव का नियम भी क्रियान्वित नही होता। उदाहरण स्वरूप- ' ओष्णम् ' में ' आ $ ऊष्णम् ' है। यहॉ ' आ 'का अर्थ - अल्प है। अतः एक स्वर वाला होने पर भी इसकी प्रगृह्य संज्ञा नहीं होती है। फलतः ' आ ऊष्णम् ' में गुण संधि होकर ' ओष्णम् ' सिद्ध होता है। 'ओष्णम ' में विकार या परिवर्तन हुआ है, प्रकृतिभाव की स्थिति यहॉ नही है। यदि ' आ ' का प्रयोग वाक्य में हो तो वह प्रगृह्य संज्ञक होगा। यथा - ' आ ' एवं नु मन्यसे में 'आ' ' का प्रयोग वाक्य में हुआ है। यहॉ ' आ ' आङ्. वाले ' आ ' से पृथक है, अतः उसकी प्रगृह्य संज्ञा होती है तथा ' आ एवं ' मे ' आ और ए ' मध्य किसी प्रकार का विकार नहीं होता। अपितु ' प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम् ' से प्रकृतिभाव हो जाता है। ध्यान रहे कि ' आ ' दो प्रकार के है - ' आङ् ' सम्बन्धि ' आ ' और दूसरा स्वतन्त्र ' आ ' आ. सम्बन्धि ' आ ' की प्रगृह्य संज्ञा नही होती है तथा स्वतंन्त्र ' आ ' की प्रगृह्य संज्ञा होती है। जहॉ प्रगृह्य संज्ञा होगी वहॉ **प्लतप्रगृह्याऽचि नित्यम्** का प्रयोग होगा एवं जहॉ प्रगृह्य संज्ञा नहीं होगी वहॉ सामान्य रूप से सन्धि होगी।

4. ओत् 1.1.15

ओदन्तो निपातः प्रगृह्यः स्यात्। अहो ईशाः

अर्थ- ओदन्त निपात की प्रगृह्य संज्ञा होती है।

ओत् अर्थात् ओ हो जिस निपात के अन्त में उसे ओदन्त निपात कहते हैं। ओदन्त निपात के अर्न्तगत अहो, ओर उताहो आते है। उपर्युक्त उदाहरण ' अहो ईशाः ' में ' अहो ' ओदन्त निपात है तथा इसकी प्रगृह्य संज्ञा है, अतः ' अहो ' के ' ओ ' के अनन्तर अच् (स्वर) ' ईशाः ' का ईकार है। ' प्लुत प्रगृह्या अचि नित्यम् ' से बिना किसी विकार या परिवर्तन के प्रकृतिभाव हो गया।

5. सम्बुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे 1.1.16

सम्बुद्धिनिमित्तक ओकारो वा प्रगृह्यो ऽवैदिके इतौ परे। विष्णो इति, विष्ण इति, विष्णविति।

सम्बुद्धिनिमित्तक ओकारो वा प्रगृह्यो ऽवैदिके इतौ परे । विष्णो इति विष्ण इति, विष्णविति।

अर्थ – सम्बुद्धिनिमित्तक ओकार को विकल्प से प्रगृह्य संज्ञक हो अवैदिक ' इति ' शब्द पर में हो तो।

प्रथमा के एक वचन को सम्बोधन में सम्बुद्धि कहते हैं। प्रस्तुत उदाहरण ' विष्णो इति ' में ' विष्णो ' का ओकार सम्बुद्धिनिमित्तक ओकार है, क्योंकि मूल शब्द ' विष्णु ' है इसका 'ह्रस्वस्य गुणः ' इस सूत्र से ' ऊकार ' का सम्बुद्धिनिमित्तक ओकार हो गया। तात्पर्य यह है कि सम्बोधन मे ' विष्णु ' का ' विष्णो 'हो जाता है। ऐसे ' विष्णो 'मे ' ओकार ' के परे ' इति ' शब्द, जो वेद का नहीं है अर्थात् इस प्रसंग को वेद से नहीं लिया गया है, वेद के रहने पर उसकी प्रगृह्य संज्ञा होती है तथा प्लुतप्रगृह्याऽचि नित्यम् ' से प्रकृतिभाव हो जाता है। क्योंकि यहॉ नियम के अनुसार प्रगृह्य संज्ञा विकल्प से होती है अर्थात् एक बार होती है तथा दूसरी बार नहीं होती है, अतः जब ' विष्णो ' के ओकार की प्रगृह्य संज्ञा नही होगी तब ' एचोऽयवायावः ' सूत्र से ' विष्णो ' के ' ओकार ' का अच् 'इ' परे रहते ' अव् ' आदेश होता है। फलतः ' विष्ण् अव् इति ' होगा। सभी

को एक साथ मिला देने पर ' विष्णविति ' दूसरा रूप बनेगा। इस प्रकार यहॉ प्रगृह्य संज्ञा सम्बन्धि सूत्र, उदाहरण एवं उन पर आधारित प्रकृतभाव का विधान - यह प्रकरण समाप्त हुआ।

8.4.3 इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च 6.1.127

पदान्ता इकोऽसवर्णे परे प्रकृत्या स्युर्ह्रस्वश्च वा। चक्रि अत्र। चक्रयत्र।

अर्थ - पदान्त ' इक् ' को सवर्ण भिन्न ' अच् ' परे रहते विकल्प से प्रकृतिभाव होता है और ह्रस्व भी होता है। इस नियम को आप उदाहरण के माध्यम से ठीक प्रकार से समझ पाएंगे। यथा - ' चक्रि अत्र ' में मूल शब्द ' चक्रि $ अत्र ' है। किन्तु ' चक्रि ' के अन्त में ' ईकार ' इक् है जिसके परे ' अत्र ' का आदि ' अकार ' है जो ' ईकार का सवर्ण नही है। तात्पर्य यह है कि ' ईकार ' और ' अकार ' का उच्चारण स्थान एवं प्रयत्न यह नही है , भिन्न - भिन्न है, अतः असवर्ण होने से उपर्युक्त नियम के द्वारा ' चक्रि ' के दीर्घ ईकार का ह्रस्व इकार हो गया। फलस्वरूप ' चक्रि अत्र ' यह रूप बना। परन्तु इस स्थिति में यहॉ यण् सन्धि प्राप्त है, परन्तु उपर्युक्त नियम से ही प्रकृतिभाव का भी विधान है। अतः ' चक्रि अत्र 'मे कोई परिवर्तन नहीं हुआ तथा प्रकृतिभाव की स्थिति निष्पन्न हुई। लेकिन क्योंकि यहा प्रकृतिभाव और ह्रस्व विकल्प से विहित है, अतः दूसरे पक्ष में ' चक्रि अत्र मे यण् सन्धि होकर चक्रयत्र रूप निष्पन्न हुआ। नियम में पदान्त कहने के कारण (गौरी औ) मे ह्रस्व और प्रकृतिभाव नहीं हुआ।

8.4.4 ऋत्यकः 6.1.128

ऋति परे पदान्ता अकः प्राग्वद् वा। ब्रह्मा ऋषि। ब्रह्मर्षिः पदान्ताः किम् - आर्च्छत्।
अर्थ - ह्रस्व ऋकार (ऋत्) परे रहते ' अक् ' (ह्रस्व या दीर्घ अ,इ,ऋ तथा लृ) के स्थान पर ह्रस्व तथा प्रकृतिभाव हो।
इसे आप उदाहरण के माध्यम से अच्छी प्रकार से समझ सकते हैं। ब्रह्म ऋषिः - इस उदाहरण में ' ब्रह्मा ' का अन्तिम वर्ण ' आ ' है जो अक् प्रत्याहार के अर्न्तगत आता है। उसके परे ऋषि सम्बन्धी ' ऋ ' ह्रस्व ऋकार है। ऐसी स्थिति में उपर्युक्त सूत्र से ' ब्रह्मा के 'आ ' का ह्रस्व 'अ ' होता है। साथ ही प्रकृतिभाव भी हो जाता है। फलतः ' ब्रह्मा ऋषिः यह रूप निश्चित होता है। लेकिन यहॉ ह्रस्व विधान तथा प्रकृतिभाव विकल्प से होता है, अतःदूसरी स्थिति में' ब्रह्मऋषिः ' = ब्रह्मर्षि रूप सिद्ध होता है।
पदान्त कहने से आ ऋच्छत् ' - इस उदाहरण में आ यद्यपि ' अक् ' के अर्न्तगत आता है, परन्तु पदान्त न होने से ' ऋकार ' के परे रहने पर भी ह्रस्व विधान तथा प्रकृतिभाव नही होता। आटश्च सूत्र से वृद्धि होकर आर्च्छत् ' रूप निष्पन्न हुआ।

1. अभ्यास प्रश्न-

1- निम्नलिखित में दो पदों के मध्य होने वाले प्रकृतिभाव को रेखांकित करें -

(क) आगच्छ हरे ऽअत्र क्रीडेम।

(ख) आगच्छ राम ऽअत्र लक्ष्मणः अस्ति।

(ग) आगच्छ सीते इह माता अस्ति।

(घ) बालक अत्र गौश्चरति।

(इ.) राधे ऽअत्र कृष्ण: भोजनं करोति।

2. निम्नलिखित में प्रगृह्य संज्ञक सम्बन्धि प्रकृतिभाव को रेखांकित करें तथा सूत्र का भी उल्लेख करें (क) कवी आगच्छतः।

(ख) पाणी उत्क्षिपति।

(ग) वटू उच्छलतः

(घ) नेत्रे आमृशति।

(ङ) ऋतू अतीतौ।

(च) अमी ईहन्ते।

(छ) अमी अशन्ति।

(ज) अमू आस्ताम्।

(झ) अम् अयोध्यायां दृष्टौ।

(य) मियो आगच्छतः।

(ट) अहो अद्य महोष्णता।

(ठ) अथो अपि।

(ड) इदं सत्यमुताहो इदम्।

(ढ) गौरी आह।

(न) नदी अवतरति।

(प) धनी उवाच।

(फ) नदी एधते।

8.5 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान चुके होगें कि -

1. वर्णों का अपनी मूल अवस्था में रह जाना, विकारभाव को प्राप्त न होना प्रकृतिभाव है।
2. लघुसिद्धान्त कौमुदी के सन्धि-प्रकरण प्रकृतिभाव- विधायक चार सूत्र है- सर्वत्र विभाषा गोः प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम् इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च तथा - ऋत्यकः क्या होता है।

3. सर्वत्र विभाषा गोः - लौकिक संस्कृत भाषा- साहित्य अथवा वैदिक संस्कृत भाषा- साहित्य मे एङन्तः (ए हो तो विकल्प से प्रकृतिभाव होता है।

4. प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम् - प्लुतसंज्ञक और प्रगृह्य संज्ञक को अच् परे रहने पर प्रकृतिभाव होता है।

5. प्रगृह्य संज्ञा विधायक पॉच सूत्र यहॉ उपलब्ध होते हैं।

6. - ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम् - ईकारान्त, ऊकारान्त और एकारान्त द्विवचन की प्रगृह्य संज्ञा होती है। अदसो मात् - मकारान्त अदस् शब्द से पर ईकार और ऊकार की प्रगृह्य होती है। - निपात् एकाजनाड. - आड. को छोड़कर एक अच् वाले अथवा एक स्वर वाले निपात की प्रगृह्य संज्ञा होती है । - ओत् - ओदन्त निपात की प्रगृह्य संज्ञा होती है। -

7. उपर्युक्त सूत्रों से विहित प्रगृह्य संज्ञक वर्णों का प्रकृतिभाव होता है।

8. इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च - पदान्त ' इक् ' को सवर्ण भिन्न अच् परे रहते विकल्प से प्रकृतिभाव होता है और ह्रस्व भी होता है।

9. ऋत्यकः - ह्रस्व ऋकार (ऋत्) परे रहते ' अक् ' के स्थान पर ह्रस्व तथा प्रकृतिभाव हो।

8.6 शब्दावली

1.**लौकिक संस्कृत भाषा**- साहित्य- वैदिक संस्कृत भाषा- साहित्य के अनन्तर प्रयुक्त संस्कृत भाषा तथा उसमे लिखित लौकिक संस्कृत भाषा-साहित्य के नाम से जाना जाता है। सामान्य रूप से वेदाङ साहित्य से अद्यावधि पर्यन्त प्रयुक्त् संस्कृत भाषा एवं उसमें लिखित साहित्य इस कोटि में है।

2. **वैदिक संस्कृत भाषा**,साहित्य ,मंत्र और ब्राह्मण साहित्य को वेद के नाम से जाना जाता है। मन्त्र के अर्न्तगत ऋक् संहिता, यजुः संहिता, साम संहिता तथा अथर्व संहिता हैं। ब्राह्मण , आरण्यक् तथा उपनिषत् सम्बन्धि ग्रन्थ आते हैं। इन सभी ग्रन्थों को वैदिक साहित्य तथा इनमें प्रयुक्त भाषा को वैदिक संस्कृत भाषा कहते हैं।

3**. पद** - सुबन्त और तिङन्त की पद संज्ञा होती है। सुप् आदि इक्कीस प्रत्यय जिस प्रातिपदिक के अन्त में हो उसे सुबन्त कहते हैं। तिप् आदि अठारह प्रत्यय जिस धातु के अन्त में हो उसे तिङन्त कहते हैं।

4. **प्रातिपदिक** - मूल शब्द प्रतिपदिक कहलाता है। पाणिनि के अनुसार धातु, प्रत्यय और प्रत्ययान्त को छोड़कर अर्थवान् शब्द स्वरूप की प्रतिपदिक संज्ञा होती है। इसके अतिरिक्त कृत्प्रत्ययान्त, तद्धितयुक्त और समास की भी प्रातिपदिक संज्ञा होती है।

5. **टि** - अचों या स्वरों में जो अन्तिम स्वर है, वह आदि में जिसके , उस समुदाय की टि संज्ञा होती है। यथा ' मनस् ' में ' म्, अ, स् ' के अर्न्तगत दो प्रकार है, परन्तु अन्तिम अकार ' स् ' से ठीक पहले है अर्थात् ' स 'के आदि मे है, अतः ' अस् ' की टि संज्ञा होती है।

6. **निपात** - द्रव्य भिन्न अर्थ में वर्तमान ' च ' आदि की निपात संज्ञा होती है। च, वा, ह इत्यादि चौवालिस शब्दों की गिनती संज्ञा प्रकरण में उपलब्ध है। इनके अतिरिक्त प्र आदि बाईस उपसर्ग की भी निपात संज्ञा होती है।

8.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. (क) हरे् अत्र (ख) राम् अत्र

(ग) सीते (घ) बालक अत्र

(इ.) राधे अत्र

2.(क) कवी आगच्छतः - ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम्' से प्रगृह्य संज्ञा तथा प्लुतप्रगृह्याऽचि नित्यम् से प्रकृतिभाव।

(ख) पाणी उत्क्षिपति- ,,

(ग) वटू आमृशति - ,,

(घ) नेत्रे आमृशति - ,,

(इ.) ऋतु अतीतौ - ,,

(च) अमी ईहन्ते - ' अदसो मात् ' से प्रगृह्य संज्ञा तथा ' प्लुतप्रगृह्याऽचि नित्यम् ' से प्रकृतिभाव।

(छ) अमी अश्नन्ति - ,,

(ज) अमू आस्ताम् - ,,

(झ) अमू अयोध्यायां दृष्टौ ,,

(ञ) मिथो आगच्छतः - ' ओत् ' से प्रगृह्य संज्ञा तथा ' प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम् ' से प्रकृतिभाव '

(ट) अहो अद्य महोष्णता - ,,

(ठ)अथो अपि - ,,

(ड.) इदं सत्यमुताहो इदम् - ,,

(ढ़)रगौरि आह - ' इको ऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च '

(ण) नदि अवतरति - ,,

(त) ध्वनि उवाच - ,,

(ध) नदि एधते - ,,

8.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वरदराज, लघुसिद्धान्त कौमुदी, व्याख्याकार एवं सम्पादक- श्री धरानन्द शास्त्री, (2000) मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली

2. वरदराज, लघुसिद्धान्तकौमुदी, व्याख्याकार- महेश सिंह कुशवाहा, (1994) चौखम्बा विद्याभवन,वाराणसी

8.9 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. मिश्र,कमलाकान्त,व्याकरण सौरभम्, (2002) एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली।

2. शास्त्री, चक्रधर नौटियाल ' हंस ', वृहद् अनुवाद चन्द्रिका, (1984) मोतीलाल बनारसीदास,नई दिल्ली

3. शास्त्री, नेमिचन्द्र, स्नातक संस्कृत व्याकरण, (संवत 2032) ज्ञानदा प्रकाशन, पटना

8.10 निबन्धात्मक प्रश्न

(क) प्रकृतिभाव पर एक निबन्ध लिखें।

(ख) निम्नलिखित विषयों पर टिप्पणी लिखें।

(ग) प्लुत सम्बन्धि प्रकृतिभाव।

(घ) प्रगृह्य संज्ञा विधायक सूत्र।

इकाई 9.सन्धि प्रकरण के अन्तर्गत संज्ञा सूत्रों की व्याख्या

इकाई की रूपरेखा

9.1 प्रस्तावना
9.2 उद्देश्य
9.3 सन्धि प्रकरण एवं संज्ञा सूत्र- अर्थ एवं प्रतिपाद्य
9.4 सन्धि प्रकरण के अन्तर्गत संज्ञा सूत्र
9.5 सारांश
9.6 शब्दावली
9.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
9.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
9.9 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री
9.10 निबन्धात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

नीतिशास्त्र व्याकरण एवं अनुवाद से सम्बन्धित यह नौवीं इकाई है। इससे पहले की इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप बता सकेंगे कि प्रकृतिभाव क्या है ? प्रकृतिभाव किन परिस्थितियों में होता है? प्लुत और प्रगृह्य क्या है ? इनका किस परिस्थित में प्रकृतिभाव हो जाता हैं ? सन्धि और प्रकृतिभाव में क्या अन्तर है ? प्रकृतिभाव विधायक सूत्र कितने हैं तथा उनका प्रयोग किस प्रकार किया जा सकता है ?

प्रकृतिभाव एवं प्रकृतिभाव विधायक सूत्रों की व्याख्या एवं प्रयोग जान लेने के पश्चात् आप सन्धि प्रकरण के अन्तर्गत आने वाले सूत्रों का विधिवत् अध्ययन कर पाएंगे। इस इकाई में मुख्य रूप से स्वर, व्यंजन एवं विसर्ग सन्धि के अन्तर्गत आने वाले संज्ञा सूत्रों की व्याख्या प्रस्तुत की जाएगी।

इस इकाई के अध्ययन के अनन्तर आप सन्धि-प्रकरण के अन्तर्गत आने वाले संज्ञा सूत्रों को व्याख्या सहित समझा पाएंगे।

9.2 उद्देश्य

1. सामान्य रूप से संज्ञा सूत्रों को जान पाएंगे।
2. संस्कृत व्याकरण में अनेक प्रकार के संज्ञा सूत्रों का निर्माण पाणिनि ने क्यों किया? इसको समझ पाएंगे।
3. भाषा की संरचना के नियम को समझने में संज्ञा की क्या उपयोगिता है- इसको जान पाएंगे।
4. स्वर, व्यंजन और विसर्ग सन्धि के प्रकरण में संज्ञा सूत्रों की उपयोगित को जान पाएंगे।
5. संज्ञा सूत्रों के कथन के अनन्तर ही उनका प्रयोग सम्भव है- उसको समझ पाएंगे।
6. प्रमुख सन्धि यथा यण्, गुण, वृद्धि आदि की अपनी-अपनी संज्ञा है- उसे जान पाएंगे।
7. उपर्युक्त संज्ञा सूत्रों के प्रयोग में अन्य संज्ञा सूत्र किस प्रकार सहायक सिद्ध हो रहे हैं- उसे समझ पाएंगे।
8. सन्धि- प्रकरण के अन्तर्गत कुल कितने संज्ञा सूत्र हैं- उसे जान पाएंगे।
9. संज्ञा सूत्र एवं विधि सूत्र में भेद को समझ पाएंगे।
10. अन्य भाषा सम्बन्धी व्याकरण में ऐसे संज्ञा सूत्रों का निर्माण कर पाएंगे।
11. आधुनिक भाषा विज्ञान की तकनीकी शब्दावली को सरलता पूर्वक हृदयंगम कर पाएंगे

9.3 सन्धि प्रकरण एवं संज्ञा सूत्र - अर्थ एवं प्रतिपाद्य

संज्ञा प्रकरण की इकाई और स्वर सन्धि' में आप जान चुके हैं कि संज्ञा एवं स्वरों से क्या तार्त्पय है। संज्ञा का अर्थ अभिधान या नाम हैं व्याकरण शास्त्र की रचना के आरम्भ में कुछ तकनीकी शब्दावली का नाम निर्धारित कर दिया जाता है ऐसा अष्टाध्यायी के आरम्भ में ही

उपलब्ध हो जाता है। परन्तु सिद्धान्तकौमुदी, लघु सिद्धान्तकौमुदी आदि प्रक्रिया परक व्याकरण के ग्रन्थों में संज्ञा सूत्र सम्पूर्ण ग्रन्थ में आवश्यकता के अनुरूप उपलब्ध होते हैं। इसी क्रम में आप देखेंगे कि सन्धि-प्रकरण में भी संज्ञा सम्बन्धी अनेक सूत्र उपलब्ध होते हैं। यथा- यण् गुण वृद्धि आदि के अलग-अलग संज्ञा सूत्र दिये गये हैं। इनके द्वारा एक बार जब आप किसी एक संज्ञा-सूत्र के अन्तर्गत कितने वर्णों का अभिधान होता है-उसको जान लेंगे तब उन वर्णों का विधि सूत्र के द्वारा किस प्रकार विधान होता है- उसे भी सहजता पूर्वक जान पाएंगे। यथा- अदेङ् गुणः- संज्ञा सूत्र है। इसका अर्थ है- अ, ए तथा ओ की गुण संज्ञा होती है। इसे जानने के बाद ' आद्गुणः ' से इन वर्णों का विधान हो पाता है। इन संज्ञा सूत्रों के अतिरिक्त सन्धि प्रकरण में अन्य संज्ञा सूत्र भी है यथा - टि , प्रगृहय् इत् इत्यादि जो सन्धि प्रक्रिया के क्रम में अपना योगदान देते हैं। प्रस्तुत इकाई में आप 'सन्धि -प्रकरण' के अन्तर्गत आने वाले ऐसे ही संज्ञा सूत्रों का अध्ययन करेंगे।

9.4 सन्धि प्रकरण के अन्तर्गत संज्ञा सूत्र

प्रस्तुत प्रसंग में आप सन्धि प्रकरण के अन्तर्गत उल्लिखित संज्ञा सूत्रों को सम्यक् प्रकार से जानेंगे। ये क्रमश: निम्नलिखित है-

1.अदेङ् गुण: 1.1.2

अत् एङ् च गुण संज्ञः स्यात्।

अर्थ- **अत्** (ह्रस्व अकार) तथा एङ् (ए तथा ओ) की गुण संज्ञा होती है। यहाँ ध्यान देने योग्य विषय यह है कि 'अत्' से तात्पर्य केवल ह्रस्व आकर का है। जिस भी स्वर के साथ 'त्' जुड़ जाता है उससे केवल उसी का बोध होता है। यहाँ 'अत्' में 'अ' के साथ 'त्' जुड़ा है, अतः केवल ह्रस्व अकार का बोध होगा। किन्तु यदि 'आत्' शब्द का प्रयोग होता है तब 'दीर्घ आ' का बोध होगा ह्रस्व अकार का नहीं। इसी बात को पाणिनी ने 'तपरस्तत्कालस्य' सूत्र के माध्यम से समझाया हैं इस सूत्र के अनुसार जिस स्वर से परे तकार हो तथा जो स्वर तकार से परे हो ऐसा उच्चारण किया गया स्वर केवल अपने उसी रूप की संज्ञा का बोधक होता है। उदाहरण के लिये उपर्युक्त सूत्र 'अदेङ् गुणः' में 'अ' के परे तकार है अतः 'अत्' से केवल ह्रस्व अकार का बोध होगा, दीर्घ या प्लुत का नहीं। इसी प्रकार 'त्' के परे 'एङ्' है, अतः केवल 'ए' और 'ओ' को ही बोध होगा, 'ऐ' और 'औ' का नहीं निष्कर्षतः सूत्रार्थ है कि अ,ए तथा ओ की गुण संज्ञा होती है।

2. उपदेशेऽजनुनासिक इत् 1.3.2

उपेदेशेऽनुनासिकोऽज् इत्संज्ञः स्यात् । प्रतिज्ञानुनासिक्याः पाणिनीयाः। लण् सूत्र स्थावर्णेन सहोच्चार्यमाणो रेफो रलयो: संज्ञा।

अर्थ- **जो** अच् (स्वर) उपदेश अवस्था में अनुनासिक हो, उसकी इत्संज्ञा होती हें अनुनासिक का बोध पाणिनि के कथन से ही सम्भव होता है। ' लण् ' सूत्र में स्थित अवर्ण के साथ उच्चारित 'र्' और ' ल् ' की अनुनासिक संज्ञा है।

यहाँ तात्पर्यार्थ यह है कि अनुनासिक अच् (स्वर) की इत्संज्ञा होती है। परन्तु इस अनुनासिक स्वर का ज्ञान कैसे हो? इसका उपचार यह है पाणिनि के द्वारा जिस स्वर को अनुनासिक कह दिया गया है, वही अनुनासिक माना जाता है।

अतः उपदेश से यहाँ तात्पर्य पाणिनि के द्वारा कहे गये अनुनासिक स्वर। उदाहरण के लिये 'र' प्रत्याहार में ' र्+अ ' है इसके माधम से 'रकार' और 'लकार' का बोध होता है। ' र ' प्रत्यहार में 'हयवरट्' से 'रकार' तथा 'लण्' से लकारोत्तरवर्ती अकार लिया गया। क्योंकि पाणिनि ने 'ल् अ ण्' में अकार को अनुनासिक मान है, अतः इसकी अर्थात् 'अ' की इत्संज्ञा होती हैं सूत्र के अनुसार यहाँ 'अ' उपदेश है, क्योंकि पाणिनि के द्वारा प्रोक्त है तथा अनुनासिक स्वर भी हैं इसी प्रकार 'राम$सु' में 'स् उ' का उकार अनुनासिक है तथा 'राम सुप् में सकार का उकार अनुनासिक नहीं है पहले 'उकार' की इत्संज्ञा होती है तथा दूसरे 'उकार' की इत्संज्ञा नहीं होती है। ऐसा इसलिये सम्भाव हुआ है, क्योंकि पाणिनि ने सुनिश्चित कर दिया है कि पहला 'उकार' अनुनासिक है तथा दूसरा उकार अनुनासिक नहीं है।

3.वृद्धिरादैच् 1.1.1 आदैच् वृद्धि संज्ञः स्यात्।

अर्थ- आत् (आकार) तथा ऐच् (ऐ तथा औ) की वृद्धि संज्ञा होती है। यहाँ की 'आत्' में 'आ' के साथ 'त्' है अतः केवल दीर्घ आकार का ही बोध होगा, ह्रस्व आदि का नहीं। इसके साथ ही 'त्' से परे 'ऐच्' प्रत्याहार है, अतः केवल ऐ तथा औ का ही बोध होगा, निष्कर्षतः सूत्र के अनुसार आ, ऐ तथा औ की वृद्धि संज्ञा होती है।

एक विशेष सूचना उपेक्षित है कि उपर्युक्त सूत्र पाणिनि रचित महान् ग्रन्थ 'अष्टाध्यायी' का प्रथम सूत्र है तथा इसके आदि में प्रयुक्त 'वृद्धि' शब्द मंगल कारक भी है।

4.उपसर्गाः क्रियायोगे 1.4.59

प्रादयः क्रियायोगे उपसर्गसंज्ञाः स्युः।

अर्थ - प्र, परा आदि की क्रिया के योग में उपसर्ग हो। प्र आदि की संख्या बाईस है जो इस प्रकार है -

प्र, परा, अप, सम्, अनु, अव, निस् निर्, दुस्, दुर्, वि, आङ्. नि, अधि, अपि, अति, सु, उत्, अभि, प्रति, परि तथा उप। इन सभी की क्रिया के योग में उपसर्ग संज्ञा होती है। उदाहरण के लिये 'प्र ऋच्छति' = प्राच्छति। यहाँ 'ऋच्छति' क्रिया है जिसके आदि योग से 'प्र' की 'उपसर्गाः क्रियायोगे' से उपसर्ग संज्ञा की गयी।

5.भूवादयो धातवः 1.3.1

क्रियावचिनो भ्वादयो धातुसंज्ञाः स्युः।

अर्थ- **क्रि**यावाचक भू आदि की धातु संज्ञा हो। 'भू' आदि को धातुपाठ में परिगणित किया गया है। क्योंकि धातुपाठ का पहला धातु 'भू' है, इसीलिये यहाँ सूत्र में 'भू' आदि कहा गया है। क्रियावाची कहने से पृथिवी वाचक 'भू' आदि शब्दों की धातु संज्ञा नहीं होती। आप सामन्य रूप

से जानते है कि 'भू' का एक अर्थ क्रियावाची 'सता' अर्थात् 'होना' है जिसकी धातु संज्ञा होती हैं। परन्तु 'भू' का एक अर्थ 'पृथ्वी' है जो क्रिया वाची न होकर प्रातिपदिक है, इसलिये इसकी धातु संज्ञा संभव नहीं है। 'भू' आदि में 'आदि' से तात्पर्य है पठ्, गम् इत्यादि।

6.अचोऽन्त्यादि टि 1.1.64

अचां मध्ये योऽन्त्यः, स आदिर्यस्य त संज्ञं स्यात्।

अर्थ- अचों (स्वरों) में जो अन्तिम स्वर है वह है आदि में जिसके, उस समुदाय की टि संज्ञा हो। आप इसे उदाहरण के माध्यम से अच्छी प्रकार समझ पाएंगे। जैसे- 'मनस्' शब्द में ' म् अ न् अ स्' के अन्तर्गत दो प्रकार है - ' म् ' के बाद अकार तथा 'न्' के बाद अकार। ' न् ' के बाद वाला अकार अन्तिम स्वर है वह 'स्' के आदि में स्थित है। अतः यहाँ 'अस्' की टि संज्ञा होगी। यदि अन्तिम स्वर किसी व्यंजन के आदि में न हो तो केवल उसी की टि संज्ञा हो जाएगी। 'यथा- 'मार्त अण्ड' यहाँ 'मार्त' में अन्तिम स्वर 'त्' के बाद 'अकार ' है। वह किसी व्यज्जन के आदि में नहीं है। अतः यहाँ केवल 'अकार' की टि संज्ञा होती है। 'मनीषा' में 'मनस् ईषा' मनस् के 'अस्' की टि संज्ञा होगी तथा शकन अन्धुः' में 'शक' का अन्तिम 'अकार' की टि संज्ञा होगी। आप इसी प्रकार अभ्यास करें।

7.चादयोऽ सत्त्वे 1.4.57

अद्रव्यार्थाश्चादयों निपाताः स्युः।

अर्थ- द्रव्यभिन्न अर्थ में वर्तमान 'च' आदि की निपात संज्ञा हो। 'लिङ्गसंख्यान्वयित्वं द्रव्यत्वम् ' - अर्थात् जिनमें लिंग् और संख्या का अन्वय होता है उन्हें द्रव्य कहते हैं। ऐसे द्रव्य भिन्न अर्थ में वर्तमान 'च' आदि की निपात संज्ञा हो। इससे स्पष्ट है कि निपात में लिंग और संख्या का अभाव होता है। यही कारण है कि निपात अव्यय की कोटि में आते हैं। 'च' आदि निपात निम्नलिखित है-

1. च - और
2. वा- विकल्प
3. ह- प्रसिद्धि
4. अह- पूजा
5. एव - ही
6. एवम् - ऐसा
7. नूनम् - निश्चय
8. शाश्वत् - निरन्तर

9. युगपद् - एकदम
10. भूमस् - फिर
11. कूपत् - प्रश्न, प्रशंसा
12. कुवित् - अधिक प्रशंसा
13. नेत् - शग्, अन्यथा, नही तो,
14. चेत् - यदि
15. चण् - यदि
16. यत्र - जहाँ
17. कच्चित् - प्रश्न
18. नह - निषेध पूर्वक प्रारम्भ
19. हन्त - हर्ष, विषाद;
20. माकिः - वर्जन
21. माकिम् - वर्जन
22. नकिः - वर्जन
23. नकिम् - वर्जन
24. माङ् - निषेध
25. नञ - निषेध
26. यावत् - जितना
27. तावत् - उतना
28. त्वै - वितर्क न्वै- वितर्क
29. द्वै - वितर्क
30. रै - दान आदर
31. श्रौषट् - हविर्दान
32. वौषट् - हविर्दान

33. स्वाहा - देवदान

34. स्वधा - पितृदान

35. वषट् - हविर्दान

36. नुम् - नुम्

37. तथापि - तो भी

38. खलु - निषेध, निश्चय

39. किल - प्रसिद्धि

40. अथो - प्रारम्भ

41. अथ- प्रारम्भ

42. सुष्ठु - अच्छा

43. स्म - भूत काल

44. आदह - प्रारम्भ, निन्दा।

8. प्रादयः 1.4.58 एतेऽपि तथा।

अर्थ- प्र, परा आदि बाईस की भी निपात संज्ञा हो। प्र, परा आदि की गणना इसी इकाई की सूत्र संख्या में की गयी है।

9. तस्य परमाम्रेडितम् 8.1.2 द्विरूक्तस्य परमाम्रेडित संज्ञं स्यात्।

अर्थ- जिसको दो बार कहा गया है उसके पर भाग की आम्रेडित संज्ञा हो। यथा- कान्$कान् ' यहाँ 'कान्' का दो बार प्रयोग हुआ है, अतः दूसरे 'कान्' की आम्रेडित संज्ञा होती है।

10. दूराद्धूते च 8.2.84 दूरात् सम्बोधने वाक्यस्य टेः प्लुतो वा।

अर्थ- दूर से संबोधन (पुकारने) में (प्रयुक्त) वाक्य की 'टि' को प्लुत संज्ञा हो विकल्प से। यहाँ दूर से तात्पर्य है जहाँ से सुनाने के लिये जोर से बोलना पड़े। उदाहरण के लिये 'आगच्छ कृष्णः अत्र गौश्चरति' - यह वाक्य दूर से पुरकारने के लिये प्रयुक्त हुआ है। इसमें भी 'आगच्छ कृष्णः 3 ' यह एक वाक्य है जिसमें 'कृष्ण' का णकारोत्तरवर्ती 'अ' उपर्युक्त सूत्र से प्लुत संज्ञक हुआ, क्योंकि वह टि संज्ञक है। टि संज्ञा के विषय में आप इसी इकाई के छठे सूत्र की व्याख्या जान चुके हैं। उपर्युक्त संज्ञा विधायक सूत्रों के अतिरिक्त कुछ अन्य सूत्र भी संज्ञा का विधान करते हैं, यथा- 'ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम्,' 'अदसो मात"निपात् एकाजनाङ्,' 'ओत्' तथा 'सम्बुद्धौ शाकत्यस्येतावनार्षे। इन सूत्रों के द्वारा प्रगृह्य संज्ञा का विधान होता है। इन सभी की व्याख्या

विस्तृत रूप से इकाई नौ में उपलब्ध है । यहाँ पुनः इन सभी की व्याख्या उचित नहीं होगी, पिष्टपेषण मात्र होगा ।

अभ्यास प्रश्न -

1- निम्नलिखित वर्णों की संज्ञा को बतायें-

1. अ
2. आ
3. ऐ
4. औ
5. च
6. खलु
7. ए
8. ओ
9. भू
10. कान्कान्
11. चेत्
12. नूनम्

2- किन्हीं आठ-आठ निपातों एवं उपसर्गों का निम्नलिखित में से चयन करें-

1. सुष्ठु
2. प्र
3. परा
4. वा
5. निस्
6. ह
7. तथापि
8. अभि
9. प्रति
10. नञ
11. शश्वत्
12. अनु
13. अव
14. माङ्
15. तावत्
16. दुर्

3- निम्नलिखित में प्रगृह्य संज्ञक वर्णों का चयन करें-

1. हरी

2. उ
3. गंगे
4. अहो

9.5 सारांश

1. संज्ञा का अर्थ नाम या अभिधान है।
2. सन्धि-प्रकरण के अन्तर्गत अनेक संज्ञा विधायक सूत्र है।
3. अत् (ह्रस्व अकार) तथा एङ् (ए तथा ओ) की गुण संज्ञा होती है।
4. जो अच् (स्वर) उपदेश अवस्था में अनुनासिक हो, उसकी इत्संज्ञा होती है
5. अनुनासिक का विधान पाणिनि की प्रतिज्ञा पर आधारित है।
6. आत् (आकार) तथा ऐच् (ऐ तथा औ) की वृद्धि संज्ञा होती है।
7. प्र, परा आदि की क्रिया के योग में उपसर्ग संज्ञा होती है।
8. क्रियावाचक 'भू' आदि की धातु संज्ञा होती है।
9. अचों (स्वरों) में जो अन्तिम स्वर है वह है आदि में जिसके ,उस समुदाय की टि संज्ञा होती हैं
10. द्रव्यभिन्न अर्थ में वर्तमान 'च' आदि की निपात संज्ञा होती है।
11. प्र, परा आदि बाईस की भी निपात संज्ञा होती है।
12. जिसको दो बार कहा गया है उसके पर भाग की आम्रेडित संज्ञा होती है।
13. दूरी से सम्बोधन में प्रयुक्त वाक्य की 'टि' को प्लुत संज्ञा हो।
14. प्रगृह्य सम्बन्धी संज्ञा विधायक सूत्रों का सारांश आप इकाई नौ के 'सारांश' में जान चुके हैं। पुनः एक वहीं अवलोकन करें।

9.6 शब्दावली

1.**अव्यय** - जो तीनों लिंगे , सब विभक्तियों और सभी वचनों में विकार को प्राप्त नहीं होता। सतत एक जैसा रहता है वह अव्यय कहलाता है। यथा सभी निपात अव्यय होते हैं क्योंकि उनका तीनों लिगें, सभी विभक्तियों तथा सभी वचनों में प्रयोग नहीं होता। वे सदैव ही अवस्था में रहते हैं।

2. **अष्टाध्यायी**- पाणिनि के द्वारा विरचित महान् ग्रन्थ अष्टाध्यायी भाषा-संरचना सम्बन्धी विश्व का प्रथम ग्रन्थ है। इसकी रचना लगभग छठी शताब्दी (सब्) में हुई। इसमें कुल आठ अध्याय है। प्रत्येक अध्याय में चार-चार पाद है। इस ग्रन्थ में सूत्रों की संख्या लगभग चार हजार के आस पास है।

3.**विधि सूत्र**- 'कर्तव्यत्वेनोपदेशो विधिः' अर्थात् कर्तव्य या प्रयोग का विधान जिस सूत्र के द्वारा हो उसे विधि सूत्र कहते हैं। यथा- 'इको यणचि' में इक् के स्थान में यण् का आदेश होता है अच् परे रहते- यह विधि सूत्र का उदाहरण है।

9.7अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

उत्तर-

1. गुण
2. वृद्धि
3. वृद्धि
4. वृद्धि
5. निपात
6. निपात
7. गुण
8. गुण
9. धातु
10. आम्रेडित
11. निपात

2. 1. निपात 2. उपसर्गनिपात

3- निपात 4- उपसर्गनिपात

4- निपात 5- उपसर्गनिपात

6- निपात 7- उपसर्गनिपात

8- निपात 9- उपसर्गनिपात

10- निपात 11- उपसर्गनिपात

12- निपात 13- उपसर्गनिपात

14- निपात 15- उपसर्गनिपात

3- ' हरी' का ' ई '

2-उ

3-गंगे का 'ए'

4-अहो का 'ओ'

9.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वरदराज, लघुसिद्धान्कौमुदी, व्याख्याकार एवं सम्पादक- श्री धरानन्द शास्त्री, (2000) मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली2.वरदराज, लघुसिद्धान्तकोमुदी, व्याख्याकार- महेश सिंह कुशवाह, (1994) चौरवम्बा विद्याभवन, वाराणसी

9.9 सहायक / उपयोगी पाठ्यसामग्री

1. मिश्र, कमलाकान्त, व्याकरणसौरभम्, (2002) एन0सी0ई0 आर0टी0 नई दिल्ली

2. शास्त्री, चक्रधर नौटियाल 'हंस' बृहद् अनुवाद् चिन्द्रका, (1984) मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।

3. शास्त्री, नेमिचन्द्र, स्नातक संस्कृत व्याकरण, (संवत् 2032) ज्ञानदा प्रकाशन , पटना।

9.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. सन्धि के अन्तर्गत संज्ञा विधायक सूत्रों पर विस्तृत निबन्ध लिखें।

2. टिप्पणी लिखें।

1. प्रगृह्य संज्ञा

4. गुण एवं वृद्धि संज्ञा

तृतीय खण्ड

अनुवाद - सामान्य नियम , लकार विभक्ति , कारक एवं वाच्य

इकाई 10 . सामान्य नियम - शब्द रूप

इकाई की रूपरेखा

10.1 प्रस्तावना
10.2 उद्देश्य
10.3 कारक का चिह्न
10.3.1 पुंल्लिङ्ग राम शब्द-
10.3.2 लिंग और वचन
10.4 सारांश
10.5 शब्दावली
10.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
10.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
10.8 सहायक उपयोगी सामग्री

10.1 प्रस्तावना

व्याकरण शास्त्र से सम्बन्धित तृतीय खण्ड की यह दशवीं इकाई है। इस इकाई का विषय है- सामान्य नियम- शब्द रूप-राम, हरि, सखि, पितृ, राजन रमा अर्थ सहित। इसके विषय में विशेष रूप से वर्णन किया गया है।

व्याकरण शास्त्र के प्रणेताओं ने बड़े ही स्पष्ट रूप से और विस्तार से शब्द रूप के विषय में चर्चा की है कि शब्द रूप क्यों पढ़ा-लिखा जाता है तथा शब्द रूप की रचना क्यों होती हैं, प्रस्तुत इकाई में विस्तार से शब्द रूप के बारे में चर्चा की गयी है।

10.2 उद्देश्य

आप इस इकाई में सामान्य नियम- शब्द रूप- राम, हरि, सखि, पितृ, राजन, रमा अर्थ सहित अध्ययन करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप -

* शब्द रूप से परिचित हो सकेंगे।
* शब्द क्या है इसके बारे में आप समझ सकेंगे।
* संज्ञा, सर्वनाम क्या है इसके बारे में परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
* राम शब्द का रूप कैसे चलाया जाय इसका वाक्य में परिवर्तन कैसे किया जाय, इससे परिचित हो सकेंगे।
* हरि शब्द का रूप एवं वाक्य में कैसे परिवर्तन किया जाय इससे परिचित हो सकेंगे।
* सखि, पितृ, राजन, रमा अर्थ सहित इनको वाक्य में परिवर्तन कैसे किया जाय इससे परिचित हो सकेंगे।

10.3 कारक का चिह्न

विभक्तियाँ	**कारक**	**अर्थ (चिन्ह)**
प्रथमा	कर्ता	ने
द्वितीया	कर्म	को
तृतीया	करण	से के द्वारा,
चतुर्थी	सम्प्रदान	के लिए।
पंचमी	अपादान	से अलग।
षष्ठी	सम्बन्ध	का, के, की।
सप्तमी	अधिकरण	मे, पै, पर।

सम्बोधन सम्बोधन हे,भो,अरे।

नाम या सुबन्त शब्दों के साथ सात विभक्तियों के तीन वचनों में 21 प्रत्यय लगते हैं। इन विभक्तियों के साधारण ज्ञान प्राप्त करने के लिए हम यहा पर 'राम' शब्द के रूप दे रहे हैं।

10.3.1 पुंल्लिङ्ग राम शब्द

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	रामः	रामौ	रामाः
द्वितीया	रामम्	रामौ	रामान्
तृतीया	रामेण	रामाभ्याम्	रामैः
चतुर्थी	रामाय	रामाभ्याम्	रामेभ्यः
पंचमी	रामात्	रामाभ्याम्	रामेभ्यः
षष्ठी	रामस्य	रामयोः	रामाणाम्
सप्तमी	रामे	रामयोः	रामेषु
सम्बोधन	हे राम	हे रामौ	हे रामाः

सुबन्त के 21 प्रत्यय

एकवचन	द्विवचन	बहुवचन	
प्रथमा (ने)	सु	औ	जस्
द्वितीया (को)	अम	औट्	शस्
तृतीया (से के द्वारा)	टा	भ्याम्	भिस
चतुर्थी (के लिए)	ङे	भ्याम्	भ्यस्
पंचमी (से अलग)	ङसि	भ्याम्	भ्यस्
षष्ठी (का,की, के)	ङस्	ओस्	आम्
सप्तमी (मे,पै,पर)	ङि	ओस्	सुप्

वाक्य रचना का नियम

वाक्य रचना वाक्य रचना में भाषा का प्रयोग होता है। भाषा ही एक एसा साधन है जिसके द्वारा मानव समाज अपने भाव और दूसरों को प्रगट कर सकता है। भाषा अनेक प्रकार की मानी गयी

है,जैसे- संकृत हिन्दी, अंग्रजी आदि । संस्कृत भाषा उस भाषा को कहते है जो शुद्ध एवं परिमार्जित हो । भाषा वाक्यों से बनती है । एक वाक्य में अनेक शब्द होते हैं और प्रत्येक शब्द में अनेक वर्ण होते हैं । उदाहरणार्थ-

" सुरेश पुस्तक पढ़ता है । " इस वाक्य में चार शब्द है और प्रत्येक शब्द मे पृथक् पृथक् वर्ण है ।'सुरेश' शब्द में स्+उ+र्+ए+श्+अ छः वर्ण है यह लिपि जिसमें हम इन अक्षरों को लिख रहे है उसे हम देवनागरी लिपि कहते है । आजकल संस्कृत तथा हिन्दी इसी लिपि में लिखि जा रही है। प्राचीन काल में संस्कृत भाषा ब्राह्मी लिपि में लिखि जाती थी ।

वर्ण के भेद- वर्ण दो प्रकार के माने गये है **।** स्वर और व्यन्जन । स्वर अच् प्रत्याहार को कहते है अच् प्रत्याहार में वर्ण होते हैं अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए,ओ, ऐ,औ, और व्यंजन में वर्ण होते है-

क वर्ग- क ख ग घ ।

च वर्ग-च छ ज झ ञ

ट वर्ग- ट ठ ड ढ ण ।

तवर्ग- त थ द ध न ।

प वर्ग-प फ ब भ म ।

यण -य व र ल ।

शल्- श ष स ह ।

ये सम्पूर्ण तैतीस व्यंजन माने गये है । हिन्दी वर्ण माला में क्ष, त्र , ज्ञ भी वर्ण माना गया है किन्तु ये वर्ण संयुक्ताक्षर हैं, जैसे-

क्ष- क+ष = क्ष ।

त्र- त+र = त्र ।

ज्ञ- ज+य = ज्ञ ।

अनुवाद - किसी भाषा के शब्दार्थ को दूसरी भाषा के शब्दों में अनुवाद कहते है । अनुवाद प्रणाली के वर्णन करने से पूर्व वाक्य में जो सुबन्त तिङन्त आदि शब्द रहते हें उनका विवेचन तथा कारकों का संक्षिप्त वर्णन करना आवश्यक है ।

कारक (कर्ता, कर्म आदि) - " गोपाल गॉव जाता है । इस वाक्य में जाने वाला गोपाल है "कृष्ण ने कंस को मारा ।" इस वाक्य में मारने वाला कृष्ण है । 'जाना' और 'मारना' ये दो क्रियाएं हैं । इन क्रियाओं को करने वाला गोपाल और कृष्ण है । क्रिया को करने वाले कर्ता कहते है । अतः इन दो वाक्यों में गोपाल और कृष्ण कर्ता हैं । प्रथम वाक्य में जाने का विषय गॉव है और द्वितीय वाक्य में मारने का विषय कंस है । गॉव और कंस के लिए ही कर्ताओं ने क्रियाऍ की । अतःजिस वस्तु के लिए कर्ता क्रिया को कर्ता है उसको कर्म कहते है । 'यजमान ने अपने हाथो से ब्राह्मणों

को दान दिया। इस वाक्य में दान क्रिया की पूर्ति हाथ से हुई। अतः हाथ करण हुआ। इसी वाक्य में दान रूपी जो क्रिया हुई, वह ब्राह्मणों के लिए हुई है। अतः ब्राह्राण सम्प्रदान हुआ। "आम के वृक्षो से भूमि पर फल गिरे।" इस वाक्य में वृक्षों से फल अलग हुए अतः वृक्ष अपादान कारक हुआ। फल भूमि पर गिरे, अतः भूमि अधिकरण हुई। और आम का सम्बन्ध वृक्षां से है अतः 'आम' सम्बन्ध कारक हुआ। ऊपर दिये गये इन चार वाक्यों में माना मारना, देना और गिराना क्रियाओं के करने में जिन कर्ता कर्म आदि शब्दों को उपयोग हुआ है, उन्हें कारक कहते हैं। कारक वह वस्तु है, जिसका उपयोग क्रिया की पूर्ति के लिए किया जाता है। करकों को जोड़ने के लिए हिन्दी में 'ने' 'को' आदि चिन्ह काम मे आते है, ये विभक्ति (कारक चिन्ह)कहलाते हैं। संस्कृत में सात विभक्तियॉ एक सम्बोधन होता है। शब्द का नियम जो शब्द रूप राम हरि सखि राजन रमा अर्थ सहित दिया गया है इन रूपों का वाक्य में परिवर्तन किया गया है।

अव्यय शब्द

जिन शब्दों में किसी प्रकार का परिवर्तन न हुआ हो उसे अव्यय कहते है, यथा-राम: सदा पुस्तकं पठति। (राम हमेशा पुस्तक पढ़ता है।) राम: सदा पुस्तकानि पठति।(राम हमेशा पुस्तकें पढ़ता है।) बालकाः सदा पुस्तकानि पठन्ति। (बालक हमेशा पुस्तकें पढ़ते है।) इन तीनों वाक्यों में सभी शब्दों का परिवर्तन हुआ। किन्तु 'सदा' जो अव्यय पद है उसका परिवर्तन नहीं हुआ है इस लिए यह अव्यय पद कहा गया है।

संज्ञा- किसी नाम, व्यक्ति, वस्तु को संज्ञा कहते है, यथा- राम, नदी, लता, अश्व आदि।

सर्वनाम-जो किसी संज्ञा के बदले बोला जाता है उसे सर्वनाम कहते है, यथा-त्वम् (तुम) अहम् (मैं) सः (वह) आदि।

विशेषण - जो विशेषता को बताता है उसे विशेषण कहते हैं,यथा- सुन्दर रक्त , कृष्ण (काला) दुष्ट आदि। जिन शब्दों के रूपों में परिवर्तन होता है उसे विकारी शब्द कहते है। विकारी शब्द अनेक प्रकार के होते हैं।

विकारी शब्दों के उदाहरण

"कुलपतिः तुभ्यं सुन्दरं पारितोषिकम् अददत् (कुलपति ने तुम्हारे लिए सुन्दर इनाम दिया।)" इस वाक्य में 'कुलपति शब्द संज्ञा या नाम है, तुभ्यं (तुम्हारे लिए) संज्ञा के स्थान पर आया है, अतः सर्वनाम है; सुन्दरम् शब्द पारितोषिक (इनाम) की विशेषता बतलाता है, अतः विशेषण है; अददत् (दिया) शब्द किसी कार्य का करना बतलाता है, अतः क्रिया है।

10.3.2 लिंगऔर वचन-

सीता ने राम को पुष्प दिया (सीता रामाय पुष्पं अददत्) इस वाक्य में सीता एक ऐसा शब्द है जिससे स्त्री जाति का बोध होता है अतः यह शब्द स्त्रीलिंग है और एक वचन भी है। 'पुष्प' शब्द से न तो पुरूष जाति का बोध होता है और न स्त्री जाति का, बोध है, अतः यह शब्द नपुंसक लिंग है और एक वचन भी है। ' रामाय ' शब्द एक ऐसा नाम है जिसे पुरूष जाति का बोध होता

है, अतः पुंलिंग है तथा एकवचन भी है। 'अददात्' जो शब्द है वह क्रिया है और एकवचन है। संस्कृत में एक ही शब्द के वाचक शब्द भिन्न-भिन्न लिङ्गों के है, यथा-तटः, तटी, तटम्, (तीनों का अर्थ किनारा है)।

पुरूष

संस्कृत भाषा में तीन पुरूष होते हैं- प्रथम पुरूष, मध्यम पुरूष तथा उत्तम पुरूष। प्रथम पुरूष का प्रयोग वह, वे दोनों वे लोग जहाँ ऐसा वाक्य होता है वहाँ पर किया जाता है, जैसे वे लोग पढ़ते है, (ते पठन्ति)। मध्यम पुरूष का प्रयोग तुम, तुम दोनों, तुम लोग जहाँ पर होता है वहाँ पर मध्यम पुरूष का प्रयोग किया जाता है। जैसे त्वं पठसि। (तुम पढ़ते हो)। उत्तम पुरूष का प्रयोग वहाँ पर किया जाता है जहाँ हम, हम दोनों, हम लोग रहता है। जैसे- अहं पुस्तकं पठामि (मैं पुस्तक पढ़ता हूँ) इन पुरूषों का प्रयोग आगे वाच्य प्रकरण में दिया गया है। संस्कृत में तीन वचन होते हैं- एकवचन, द्विवचन, बहुवचन।

भिन्न भिन्न कारकों को बतलाने के लिए प्रातिपदिकों में जो प्रत्यय जोड़े जाते हैं उन्हे 'सुप'कहते है। इसी प्रकार भिन्न भिन्न काल की क्रियाओं का अर्थ बतलाने के लिए धातुओं में जो प्रत्यय जोड़े जाते है उन्हे तिङ् कहते हैं। सुप और तिङ् को विभक्ति कहते हैं। सुबन्त और तिङन्त शब्दों को ही पद कहते हैं।

विभक्तियों के मूल स्वरूप

विभक्ति	अर्थ	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	ने	सु	औ	जस् (अः)
द्वितीया	को	अम्	औट् (औ)	शस् (अः)
तृतीया	से, के द्वारा	टा (इन)	भ्याम्	भिस् (भिः)
चतुर्थी	के लिए	ङे (ए)	भ्याम्	भ्यस् (भ्यः)
पंचमी	से अलग	ङसि (आत्	भ्याम्	भ्यस(भ्यः)
षष्ठी	का, के, की	ङस् (स्य)	ओस् (ओः)	आम्
सप्तमी	में, पै, पर	ङि (इ)	ओस् (ओः)	सुप्

इन सात विभक्तियों तथा 21 प्रत्ययों को क्रमशः जोड़कर के रूप बनाये जाते हैं, यथा-राम शब्द से प्रथमा के एकवचन में रूप बनाना है तो सबसे पहले प्रथमा के एक वचन सु प्रत्यय लायेंगे, सु में उकार की उपदेशेऽजनुनासिक इत् इस सूत्र से इत्संज्ञा तस्य लोपः से लोप करते है और स् के स्थान में विसर्ग करते हैं तो रामः ऐसा प्रयोग बनता है। अन्य भी रूप ऐसे जोड़कर चलाया जाता है। इसे शब्द रूप कहते हैं।

राम शब्द का वाक्य में परिवर्तन

अकारान्त पुंल्लिङ्ग राम शब्द

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा विभक्ति	रामः (राम)	रामौ (दो राम)	रामौ (रामो ने)
द्वितीया विभक्ति	रामम् (राम को)	रामौ (दो राम को)	रामान् (रामों को)
तृतीय विभक्ति	रामेण (राम से)	रामभ्याम् (दो रामसे	रामै: (रामो से)
चतुर्थी विभक्ति	रामाय (राम के लिए)	रामाभ्याम् (दो राम केलिए)	रामेभ्य: (रामो के लिए)
पंचमी विभक्ति	रामात् (राम से)	रामाभ्याम्(दो राम से)	रामेभ्य : (रामो से)
षष्ठी विभक्ति	रामस्य (राम का)	रामयो: (दो राम का)	रामाणाम् (रामो के)
सप्तमी विभक्ति	रामे (राम में)	रामयो:(दो राम में)	रामेषु(रामो में)
सम्बोधन विभक्ति	हे राम (हे राम)	हे रामौ (हे दो राम)	हे रामा (हे रामों)

जितने भी अकारान्त पुल्लिंग रूप होंगे सब राम के समान होंगे। यथा रमेश, सुरेश, उमेश, दिनेश आदि। कुछ अकारान्त शब्द एवं अर्थ दिये जा रहे हैं -

नरः- मनुष्य	कृषकः - किसान
बालः - बालक	विद्यालय: - विद्यालय
पुत्रः - पुत्र	सज्जनः - सज्जन
जनकः - पिता	दुर्जनः - दुर्जन
नृपः - राजा	खलः - दुष्ट
भक्तः- भक्त	करः- हाथ
शिष्यः- शिष्य	अनिल:- हवा
सूर्यः - सूर्य	वृकः - भेडिया
चन्द्रः - चन्द्रमा	रासभ - गदहा
सुरः - देवता	उपहारः - भेट
रवगः -पक्षी	पिकः - कोयल
मयूरः- मोर	वंशः- वंश (कुल)

प्रश्नः- प्रश्न	गजः- हाथी
कोशः- कोस	आलयः- घर
लोकः- संसार	आपणिकः- दुकानदार
धर्मः- धर्म	असुरः- दैत्य
अनलः- अग्नि	आतपः-धूप
ग्रन्थः- ग्रन्थ	आभीरः- अहिर
कृष्णः- काला	नाकः- स्वर्ग
वानरः- वानर	पड़क- कीचड
आम्रः- आम	रूद्रः- शिव

वाक्य में परिवर्तन

शब्द	**अर्थ**
रामः गृहं गच्छति।	राम घर जाता है।
रामाः पुस्तकालये पठन्ति।	बहुत से राम विद्यालय में पढ़ते हैं।
त्वं रामं पश्य।	तुम राम को देखों।
तौ रामौ पश्यतः।	वे दोनों दो राम को देखो।
ते रामान् पश्यन्ति।	वे लोग रामों को देखते हैं।
यूयं रामेण क्रीडथ।	तुम लोग राम से खेलते हो।
स तस्मै रामाय धनं ददाति।	वह उस राम को धन देता है।
तौ रामाभ्यां धनं दत्तः।	वे दोनों दो राम को धन देते हैं।
सः बालकः रामाभ्यां जुगुप्सत।	वह बालक राम से घृणा करता है।
सः बालकः रामाभ्यां विभेति।	वह बालक दो राम से डरता है।
बालकाः रामेभ्यः पठन्ति।	लड़के बहुत राम से पढ़ते हैं।
रामस्य गृहम् अस्ति।	राम का घर है।
रामयोः गृहे स्तः।	दो राम का दो घर है।

रामाणां विद्यालयाः सन्ति।	बहुत रामों का विद्यालय हैं।
मम चित्त : रामे अस्ति।	मेरा चित्त राम में हैं।
तव चित्त : रामे अस्ति।	तुम्हारा चित्त राम में है।
तेषां चित्तः रामेषु सन्ति।	उन लोगों की चित्त रामों में है।

1 .अभ्यास के प्रश्न

(1) बहुविकल्पात्मक प्रश्नाः

1. वाक्य रचना में किसका प्रयोग किया जाता है-

अ. शब्द ब. भाषा स. शब्द भाषा दोनों, द. शब्द भाषा दोनों नहीं

2. पुरूष कितने होते हैं-

अ. पाँच ब. चार स. तीन द. एक

3. लिंग कितने होते है-

अ. चार ब. एक स. तीन द. दो

4. वचन कितने होते हैं-

अ. चार ब.एक स. दो द. तीन

5. विभक्तियाँ कितनी होती है-

अ. चार ब. एक स. सात द. आठ

6. सम्बोधन कितने होते हैं -

अ. एक ब. तीन स. दो द. चार

हरि शब्द का वाक्य में परिवर्तन

इकारान्त पुल्लिङ्ग हरि (विष्णु अथवा बन्दर)

इकारान्त पुंल्लिंग विभक्तियों के मूल रूप

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सु (:)	औ (ई)	जस् (अः)

द्वितीया	अम्	औट् (ई)	शस् (ईन्)
तृतीया	टा (ना)	भ्याम्	भिस् (भिः)
चतुर्थी	ङे (ए)	भ्याम्	भ्यस् (भ्यः)
पंचमी	ङसि (अः)	भ्याम्	भ्यस् (भ्यः)
षष्ठी	ङस् (अः)	ओस् (ओः)	आम्
सप्तमी	ङि (इ)	ओस् (ओः)	सुप्

10.3.3 हरि शब्द का रूप

इन सात विभक्तियों तथा 21 प्रत्ययों को जोड़ कर क्रमशः रूप बनाये जाते हैं,

यथा - हरि शब्द के प्रथमा विभक्ति के एक वचन में सु प्रत्यय होकर हरि+ सु,बाना सु के उकार की इत्संज्ञा तस्य लोपः से लोप होकर हरि+स् बना। स को विसर्ग होकर हरि: ऐसा रूप बनता है। क्रमशः इसी प्रकार 21 प्रत्ययों को जोड़कर रूप बनाइये -

हरिः	हरी	हरयः
हरिम्	हरी	हरीन्
हरिणा	हरिभ्याम्	हरिभिः
हरये	हरिभ्याम्	हरिभ्यः
हरेः	हरिभ्याम्	हरिभ्यः
हरेः	हर्योः	हरीणाम्
हरौ	हर्योः	हरिषु
हे हरे	हे हरी	हे हरयः

इसी प्रकार अन्य ह्रस्व इकारान्त पुंल्लिंग का रूप चलाये जाते हैं -

शब्द - अर्थ	अरि - शत्रु
अग्नि - आग	अलि - भ्रमर
अङ - चरण	अवधि - सीमा
अन्जलि - जुड़े हुए हाथ	असि - तलवार

अद्रि - पहाड़ अहि - सर्प

आराति - शत्रु आधि - मानसिक पीड़ा

हरये - हरि के लिये सुरभि- बसन्त

उडुपति - चन्द्र सुमति - श्रेष्ठ बुद्धिवाला

उदधि - समुन्द्र सारथि - रथ वाहक

उपाधि - उपाधि समाधि - समाधि

उषापति - सूर्य सभापति - सभा का प्रधान

उर्मि - लहर सप्नि - घोड़ा

ऋषि - मन्त्र द्रष्टा सन्धि - मेल

कपि-बानर भकुनि -पक्षि

कलानिधि-चन्द्र व्रीहि-चावल

कलि- झगड़ा व्याधि - शारीरिकरोग

कवि - कविताकार विधि-दैव

कुक्षि-पेट वाल्मीकि-प्रसिद्ध मुनि

कृमि - कीड़ा वारिराशि- समुद्र

गिरि-पहाड़ वारिधि - सागर

ग्रन्थि - गाँठ वाक्पति - वृहस्पति

चक्रपाणि - विष्णु वद्धि - आग

चुड़ामणि - शिरोरत्न वकवृत्ति - स्वार्थी

जठराग्नि - पेट की आग्नि राशि-ढ़ेर

जलधि - समुद्र राश्मि - किरण

ज्ञाति - रिस्तेदार रवि - सूर्य

तरणि - सूर्य रमापति - विष्णु

दिनमणि - सूर्य ययाति - प्रसिद्ध राजा

दिवाकीर्ति- नापित	यति- सन्यासी
दुन्दभि- नगारा	मौलि- सिर
दुर्मति- दुष्ट बुद्धि	मृगपति- शेर
धन्वन्तरि- प्रसिद्ध वैद्य	मुनि- मुनि
धूर्जति- शिव	मारूति- हनुमान
ध्वनि - आवाज	मणि- मणि
नमुचि - एक दैत्य	भूपति- रा जा
निधि- खजाना	पाणिनि -प्र सिद्ध मुनि
निशापति- चन्द्र	प्रजापति- ब्रह्मा
नृपति- राजा	पाणि- हाथ
पत्ति-पैदल सेना	पशुपति- शिव
हिमगिरि- हिमालय	परिधि - घेरा
सेनापति - सेनानायक	वालधि - पुंछ

।। हरि शब्द का वाक्यादि में प्रयोग।।

हरिः वने क्रीडति।	हरि वन में खेलता है।
हरिः पुस्तिकायां लिखतः।	दो हरि कापी पर लिखते है।
हरयः स्नानं कुर्वन्ति।	बहुत से हरि स्नान करते है।
हरि वयम् अर्चनं कूर्मः।	हरि को हम लोग पूजा करते है।
तौ हरी पश्यतः।	वे दोनों दो हरी को देखते है।
ते हरीन् पश्यन्ति।	वे लोग बहुत से हरि को देखते है।
तौ हरिभ्यां सह गृहं गमिष्यतः।	वे दोनों दो हरि के साथ स्वर्ग जायेंगे।
हरिभिः मया सेव्यते।	बहुत से हरि के द्वारा हमारी सेवा की जाती है।
हरये मोदकं रोचते।	हरि को मोदक अच्छा लगता है।
हरिभ्यां मोदकं रोचेते।	दो हरि को मोदक अच्छा लगता है।

सः हरेः विभेति। वह हरि से डरता है।

तौ हरिभ्यां त्रायेते। वे दोनों दो हरि से रक्षा किये जाते है।

ते हरिभ्यां त्रायन्ते। वे लोग बहुत से हरि से रक्षा किये जाते है।

इदं पुस्तकं हरेः अस्ति। यह पुस्तक हरि का है।

इमानि पुस्तकानि हरीणां सन्ति। ये पुस्तके बहुत से हरि का है।

इमानि पुस्तकानि हरीणां सन्ति। ये पुस्तके बहुत से हरि का है।

वयं सर्वे हरौ सन्ति। हम सभी लोग हरि में है।

2. अभ्यास के प्रश्न

(1) बहुविकल्पात्मक प्रश्नाः

1. - हरि शब्दस्य द्वितीया एकवचने रूपम् अस्ति-

अ. हरिः ब. हरिम स. हरी द. हरीन

2. हरि शब्दस्य चतुर्थी एकवचने रूपम् अस्ति-अ. हरिणा ब. हरिभ्याम् स. हरये द. हरिभि

3. हरि शब्दस्य पंचमी एकवचने रूपम् अस्ति-

अ. हरिभ्याम् ब. हरिभ्यः स. हरेः द. हर्योः

4. हरि शब्दस्य षष्ठी बहुवचने रूपम् अस्ति-

अ. हरेः ब. हर्योः स. हरीणाम् द. हरिभ्याम्

5. हरि शब्दस्य सप्तमी एकवचने रूपम् अस्ति-

अ. हरौ ब. हर्योः स. हरिषु द. हरिभ्यः

(2) संस्कृत भाषा में अनुवाद बनाइये।

1. हरि ने सज्जनों की रक्षा की।

2. हरि को हम लोगों ने देखा।

3. हरि के साभ हम लोग स्वर्ग गये।

4. हरि को मोदक अच्छा लगता है ।

5. हम सभी लोग हरि से पढ़ते है।

6. ब्रह्मा ने हरि से वेद पढ़ा।

7. हरि का घर वहाँ पर है।

8. यह पुस्तक हरि का है।

9. हरि में हम लोग समाहित हैं।

सखि शब्द का वाक्य में परिवर्तन

सखि (मित्र) इकारान्त पुंल्लिङ्ग

विभक्ति	एक वचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सखा	सखायौ	सखायः
द्वितीय	सखायम्	सखायौ	सखीन्
तृतीया	सख्या	सखिभ्याम्	सखिभिः
चतुर्थी	सख्ये	सखिभ्याम्	सखिभ्यः
पंचमी	सख्युः	सखिभ्याम्	सखिभिः
षष्ठी	सख्युः	सख्योः	सखीनाम्
सप्तमी	सख्यौ	सख्योः	सखिषु
सम्बोधन	हे सखे !	हे सखायौ	हे सखायः!

सुरेशः रामस्य सखा अस्ति।	सुरेश रमेश का मित्र है।
तौ रामस्य सखायौ स्तः।	वे दोनों राम के सखा है।
सखा त्वं कुत्र गच्छसि।	मित्र तुम कहा जाते हो?
सखायं पुस्तकं लिखेत्।	मित्र को पुस्तक लिखना चाहिए
सखीन् ग्रामं गच्छेयु :।	मित्रों को गाँव जाना चाहिए।
सख्या सह रामः पठति।	मित्र के साथ राम पढ़ता है।
सखिभिः सह ते बालकाः पठन्ति।	मित्र के साथ वे बालक पढ़ते है।
भक्तः सख्ये हरिं भजति।	भक्त मित्र के लिए हरि को भजता है।
सखिभ्यः पुस्तकम् अस्ति।	मित्रों के लिए पुस्तक है।

वयं सख्यु: पुस्तकं पठामः ।	हम लोग मित्र से पुस्तक पढते है ।
यूयं सखिभ्य: पुस्तकं पठथ ।	तुम लोग मित्रो से पुस्तक पढते हो ।
इदं मन्दिरं सख्युः अस्ति ।	यह मदर मित्र का हैं
तौ पुस्तके सख्योः स्तः।	वे दोनों पुस्तके दोनो मित्रों का है।
तेषां सखीनां वस्त्राणि मम पार्श्वे सन्ति।	उन मित्रों का वस्त्र मेरे पास हैं।
वयं सर्वे सख्यौ स्मः।	हम सभी लोग मित्र में है।
यो सखे! मम उद्धरः।	हे सखा हम को उद्धार करों ।

10.3.4 पितृ शब्द ऋकारान्त पुंल्लिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	पिता (आ)	पितरौ (अरौ)	पितरः (अरः)
द्वितीया	पितरम् (अरम्)	पितरौ(अरौ)	पितॄन् (ऋन)
तृतीया	पित्रा (रा)	पितृभ्याम्(ऋभ्याम्)	पितृभिः (ऋभि)
चतुर्थी	पित्रे (रे)	पितृभ्याम् (ऋभ्याम्)	पितृभ्यः (ऋभ्यः)
पंचमी	पितुः (उः)	पितृभ्याम् (ऋभ्याम्)	पितृभ्यः (ऋभ्यः)
षष्ठी	पितु: (उः)	पित्रोः (रोः)	पितृणाम् (ऋणाम्)
सप्तमी	पितरि (अरि)	पित्रोः (रोः)	पितृषु (ऋषु)
सम्बोधन	है पितः!	हे पितरौ!	हे पितरः

पितृ शब्द के समान अन्य रूप् भी देखें-

भातृ (भाई) जामातृ (दामाद) देवृ (देवर) इत्यादि पुंल्लिग ऋकारान्त शब्दों के रूप इसी भाँति चलते हैं।

पिता पुत्रं प्रश्नं पृच्छति।	पिता पुत्र से प्रश्न पुछता है।
पितरः पुत्रान् धर्ममुपदिशति।	पिताओं ने पुत्रों को धर्म का उपदेश देते हैं।
पितरं मन्दिरं गच्छेत्।	पिता को मन्दिर जाना चाहिए।
पितॄन् पुस्तकै: पाठयेयुः।	पिताओं को पुस्तकों के द्वारा पढ़ाना चाहिए।
पित्रा सह पुत्रं गच्छति।	पिता के साथ पुत्र जाता है।
पितृभ्यां सह ते पठन्ति।	दो पिताओं के साथ वे लोग पढ़ते हैं।

पितृभिः पुत्रा भूयन्ते। पिताओं के द्वारा पुत्र होते हैं।

पित्रे पुष्पाणि सन्ति। पिता के लिए पुष्प हैं।

पितृभ्यां पुस्तकानि सन्ति। दो पिताओं के लिए पुस्तकें है।

पितृभ्यः ते गताः। पिताओं के लिए वे लोग गये।

पितुः सः पठति। पिता से वह पढ़ता है।

वयं पितृणां वस्त्राणि प्रक्षालयेम। हम लोगों को पिताओं के वस्त्रों को धोना चाहिए।

पितु: वस्त्रं सुन्दरम् अस्ति। पिता का वस्त्र सुन्दर है।

अस्माकं चित्तः पितरि अस्ति। हम लोगों का चित्त पिता में है।

भो पितः! माम् पाठयतु । हे पिता मुझको पढ़ाइये।

3 .अभ्यास प्रश्न

(1) बहुविकल्पात्मक प्रश्नाः

1. पितृ शब्दस्य प्रथमा बहुवचने रूपमस्ति-

अ. पिता ब. पितरौ स. पितर: द. पितृन्

2. पितृ शब्दस्य द्वितीया एकवचने रूपमस्ति-

अ. पितरम् ब. पितरौ स. पितरः द. पितृन्

3. पितृ शब्दस्य तृतीया बहुवचने रूपमस्ति-

अ. पित्रा ब. पितृभ्याम् स. पितृभि: द. पितरौ

4. पितृ शब्दस्य चतुर्थी एकवचने रूपमस्ति-(अ)

अ. पित्रे ब. पितृभ्याम् स.पितृन् द. पितृभ्यः

5. पितृ शब्दस्य षष्ठी बहुवचने रूपमस्ति-

अ. पितृणाम् ब. पितुः स. पितृभ्याम् द. पितृभ्यः

(2) संस्कृत भाषा में अनुवाद बनाइये-

1. तुम्हारा पिता कहाँ है ?

2. तुम्हारे पिता ने मुझको फल दिया।

3. पिता को पुस्तक दिखाओं।

4. पिता के साथ वे लोग घर गये।

5. पिता के लिए मैं फल लाऊँगा।

6. पिता से वे लोग पुस्तक पढ़े।

7. पिता का यह लेखनी है।

8. हम लोगों का चित्त पिता में है।

राजन् (राजा) शब्द का रूप एवं वाक्य में परिवर्तन

10.3.5 अजन्तपुल्लिंग राजन् शब्द

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	राजा	राजानौ	राजानः
द्वितीय	राजानम्	राजानौ	राज्ञः
तृतीया	राज्ञा	राजभ्याम्	राजभिः
चतुर्थी	राज्ञे	राजाभ्याम्	राजभ्यः
पंचमी	राज्ञः	राजभ्याम्	राजभ्यः
षष्ठी	राज्ञः	राज्ञोः	राज्ञाम्
सप्तमी	राज्ञि राजनि	राज्ञोः	राजसु
सम्बोधन	हे राजन्!	हे राजानौ!	हे राजानः!

इसी प्रकार निम्न शब्दों के रूप होते हैं...

अकिंचनिमन् - निर्धनता

अणिमन् - अणुपना

अम्लिमन् - अम्लता खट्टापन

आशिमन् - शीघ्रता

अष्णिमन् - गरमी

ऋजिमन् - सरलता

कालिमन् - कालापन

प्रेमन् - प्रेम स्नेह

बधिरिमन् - बहरापन

बहिमन् – बाहुलय, आधिकय

बालिमन् - बालपन लड़कपन

भूमन् - बहुत अधिक्य

मधुरिमन् - मिठापन

मन्दिमन् - मन्दत्व, मन्दपना

कृष्णिमन्- कृष्णता, कालापन	महिमन् - महत्व, गौरव
क्रशिमन् - दुबलापन	मुकिमन् - मुकता, गूंगापन
क्षेणिमन् - शीघ्रता	भ्रदिमन् - मृदुता, कोमलता
गरिमन् - गौरव	रक्तिमन् - रक्तता लाली
चण्डिमन् - चण्डता तीव्रता	लधिमन् - लघुता हल्कापन
जडिमन - मूर्खता	लवणिमन् - लवणता नमकीनपन
तनिमन् - पतलापन	लोहितमन् - लोहितत्त्व वाली
द्रढ़िमन् - कठोरता	वरिमन् - उरूत्व विशालता
द्राधिमन् - लम्बाई	शीतिमन् - शीतत्व ठण्डक
पठिमन् - चतुरता	शुक्लिमन् - शुक्लता
पण्डितिमन - विद्धता	श्वेतिमन्-श्वेतता
परिव्रढ़िमन् - स्वामित्व	साधिमन् - सज्जनता
प्रथिमन् - विस्तार	स्थेमन् - स्थिरता दृढता
ह्रसिमन् - ह्रस्वत्व	स्वादिमन् - स्वादुपन

इसी प्रकार अश्व स्थामन् उक्षन्, तक्षन, वृषन् यूर्धन प्रमुति शब्दों के रूप् होते है।

अत्र एकः राजा अस्ति।	यहॉ एक राजा हैं।
अत्र दौ राजानः सन्ति।	यहॉ दो राजा हैं।
राजानं क्षमां याचते।	राजा से क्षमा मांगता है।
राजानं धर्म ब्रवीति शास्ति वा।	राजा को धर्म तबलाता है।
राज्ञः अन्य राज्ये गच्छेयुः	राजाओं को अन्य राज्य में जाना चाहिए-
राज्ञा सह गच्छति।	राजा के साथ जाता है।
राजभिः सह सेनापति चरति।	राजाओं के साथ सेनापति चलता है।
इदं प्रसादं राज्ञे अस्ति।	यह महल राजा के लिए है।
इमे वस्त्रं राजभ्यां स्तः।	ये दोनों वस्त्र दो राजाओं के लिए है।

राजभ्यः इमानि वस्त्राणि सन्ति। राजाओं के लिए ये वस्त्र है।

ते राजभ्यः अपठन्। वे लोग राजाओं से पढ़े।

ते राज्ञां पुत्राः सन्ति। वे लोग राजाओं के पुत्र हैं।

4.अभ्यास प्रश्न

(1) बहुविकल्पात्मक प्रश्नाः-

1. राजन् शब्दस्य प्रथमा बहुवचने रूपमस्ति-

अ. राजा ब. राजानः

स. राजानौ द. राजानम्

2. राजन् शब्दस्य द्वितीया द्विवचने रूपमस्ति-

अ. राजानम् ब. राजानौ

स. राजानः द. राज्ञः

3. राजन् शब्दस्य तृतीया बहुवचने रूपमस्ति-

अ. राज्ञा ब. राजभ्याम्

स. राजभिः द. राज्ञः

4. राजन् शब्दस्य पंचमी एकवचने रूपमस्ति-

अ. राज्ञः ब. राजभ्याम्

स. राजभ्यः द. राज्ञे

5. राजन् शब्दस्य सप्तमी एकवचने रूपमस्ति-

अ. राज्ञि ब. राज्ञोः

स. राजसु द. राज्ञाम्

(2) संस्कृत भाषा में अनुवाद बनाइये-

1. राजा वन में गया।

2.राजाओं ने आपस में लड़े।

3. राजा को तुम लोग देखों।

4. राजाओं को वे लोग देखेंगे।

5. राजा के साथ रानियाँ जाती हैं।

6. राजाओं के साथ सारथी भी जाते हैं।

7. राजा के लिए यह फल है।

8. राजाओं के लिए ये वस्त्र है।

9. राजा से वे लोग पढेगें।

10. राजाओं का राज्य बड़ा है।

10.3.6 रमा (लक्ष्मि) आकारान्त स्त्रीलिंग

रमा शब्द का रूप

विभक्ति	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	रमा	रमे	रमाः
द्वितीया	रमाम्	रमे	रमाः
तृतीया	रमया	रमाभ्याम्	रमाभिः
चतुर्थी	रमायै	रमाभ्याम्	रमाभ्यः
पंचमी	रमायाः	रमाभ्याम्	रमाभ्यः
षष्ठी	रमायाः	रमयो:	रमाणाम्
सप्तमी	रमायाम्	रमयोः	रमासु
सम्बोधन	हे रमे!	हे रमे!	हे रमाः!

बालकों को समझने के लिए कुछ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण शब्दों का संग्रह यहा दे रहे हैं। इनका उच्चारण रमा के समान होता है।

शब्द	**अर्थ**	**शब्द**	**अर्थ**
जया	स्त्री	उपमा	सादृश्य
जालौका	जोंक	उमा	पार्वति
जनता	जन समूह	उषा	सवेरा
जड़ता	मूर्खता	अजा	बकरी
जटा	जटा	एला	इलायची

दुर्गा	दुर्गा	कन्या	कुँवारी कन्या
अम्बिका	अम्बिका	कुलटा	व्यभिचारिणी
जिज्ञासा	ज्ञानेच्छा	कुत्सा	निन्दा
छुरिका	छुरी	कशा	चाबुक
छाया	छाया	कविका	लगाम
छटा	चमक	कान्ता	मनोहरा
चेष्टा	हरकत	काष्ठा	दिशा
चेतना	समझ	कृपा	दया
चूड़ा	चोटी	आत्मजा	पुत्री
चिन्ता	फिकर	आपगा	नदी
चपला	विद्युत	ईप्सा	पाने की इच्छा
चिकित्सा	इलाज	क्षपा	रात्रि
चन्द्रिका	चादनी	आख्या	नाम
घृणा	अरूचि	अवस्था	हालत
ग्रीवा	गर्दन	अचला	पृथ्वी
गोशाला	गोस्थान	अनुज्ञा	आज्ञा

रमा शब्द का वाक्य में परिवर्तन

रमा गृहे भोजन पचति। रमा घर में भोजन पकाती है।

ते रमे गृहे भोजनं पचतः। वे दोनों रमा घर में भोजन पकाती है।

ताः रमाः विद्यालये पठिष्यन्ति। वे सब रमा विद्यालय में पढ़ेगीं।

रमा भोजनं पचेत्। रमा को भोजन पकाना चाहिए।

ताः रमाः भोजनं पचेयुः। उन रमाओं को भोजन पकाना चाहिए।

तया रमया सह बालिकाः गमिष्यन्ति। उस रमा के साथ वे लड़कियॉ जायेगीं।

ताभिः रमाभिः सह ता बालिकाः पठिष्यन्ति। उन रमाओं के साथ वे लड़कियॉ पढ़ेगीं।

रमायै जलम् आनय। रमा के लिए जल लाओं।

रमायाः ताः बालिका पठिष्यन्ति। रमा से वे लड़कियॉ पढेगीं।

रमाणाम् आभूषणानि सन्ति।	रमाओं का आभूषणे हैं।
रमायां तस्याः बालिका चित्तमस्ति।	रमा में उस बालिका का चित्त है।

10. 4 सारांश

इस इकाई में शब्द रूप तथा लिंग और वचन का विशेष रूप से वर्णन किया गया है स्त्री जाति का बोध कैसे होता है इनका विशेष रूप से वर्णन किया गया है यथा सीता पुष्प चुनती है इस वाक्य में सीता शब्द स्त्रीलिंग है और एक वचन भी है। ' पुष्प' शब्द से न तो पुरूष जाति का बोध होता है और न स्त्री जाति का, बोध है, अतः यह शब्द नपुंसक लिंग है और एक वचन भी है। संस्कृत में एक ही शब्द के वाचक शब्द भिन्न-भिन्न लिङ्गों के है, यथा-तटः, तटी, तटम्, (तीनों का अर्थ किनारा है)।

10.5 अभ्यास प्रेश्नों के उत्तर

बहुविकल्पात्मक प्रश्नाः

अभ्यास 1 . 1. स 2.स 3. स 4. स 5. स 6.अ

अभ्यास 2 . 1. ब 2. स 3. स 4. स 5. अ

संस्कृत अनुवाद -1. हरिः सज्जनानां रराक्ष। 2. हरिं वयम् अपश्याम। 3. हरिणा सह वयं स्वर्गं अगच्छाम। 4. हरये मोदकं रोचते। 5. वयं हरेः पठामः। 6. ब्रह्मा हरेः वेदं पपाठ।7. हरेः गृहं तत्र अस्ति। 8. इदं पुस्तकं हरेः अस्ति। 9. हरौ वयं सर्वे समाहिताः।

अभ्यास 3 . 1. स 2. अ 3. अ 4. अ 5. अ
संस्कृत अनुवाद - 1. तव पिता कुत्र अस्ति। 2. तव पिता मह्यं फलम् अददत्।
3. पितरं पुस्तकं दर्शय। 4. पित्रा सह ते गृहं अगच्छन् 5. पित्रे अहं फलं अनेष्यामि
6. पितुः ते पुस्तकं अपठत् 7. पितुः इयं लेखनी अस्ति। 8. अस्माकं चित्तं पितरि अस्ति
अभ्यास 4 . 1. ब 2. ब 3. स 4. द 5. अ
संस्कृत अनुवाद -1. नृपः वनम् अगच्छत् 2. राजनं यूयं पश्यथ 3. राज्ञां ते द्रक्ष्यन्ति।
4. राज्ञा सह राज्ञः गच्छन्ति 5. राजभिःसारथिनोपि गच्छन्ति 6. राज्ञे इदं फलम् अस्ति।
7. राजभ्यः इमानि वस्त्राणि सन्ति 8. राज्ञः ते पठिष्यन्ति

10.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

क्रम सं0	ग्रन्थनाम	लेखक	टीकाकार	प्रकाशक
1.	वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी	भट्टोजिदीक्षित	गोपाल दत्त	चौखम्भा सुरभारती

2.	लघुसिद्धान्त कौमुदी	वरदराजाचार्य	भीमसेन शास्त्री	भैमीप्रकाशन लाजपतनगर दिल्ली
3.	अनुवादचन्द्रिका	हरेकान्त मिश्र	हरेकान्त मिश्र	चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वारासी
4.	प्रौढ़मनोरमा	भट्टोजि दीक्षित	द्वारिकाप्रसाद द्विवेदी	चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी
5.	अनुवाद चन्द्रिका	श्री कपिल द्विवेदी	कपिल द्विवेदी	चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी

10.8 उपयोगी पुस्तकें

क्रम सं0	ग्रन्थनाम	लेखक	टीकाकार	प्रकाशक
1.	वैयाकरण सिद्धान्त	भट्टोजिदीक्षित	गोपाल दत्त	चौखम्भा सुरभारती।
2.	लघुसिद्धान्त कौमुदी	वरदराजाचार्य	भीमसेन शास्त्री	भैमीप्रकाशन लाजपतनगर दिल्ली

10.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1- रमा शब्द के रूपों को दर्शाते हुए वाक्य में प्रयोग करें।

2. राजा शब्द का रूप लिखते हुए उदाहरण देकर वाक्य में प्रयोग बनायें।

इकाई 11 लकार विभक्ति - धातु रूप

इकाई की रूपरेखा

11.1 प्रस्तावना
11.2 उद्देश्य
11.3 लकार विभक्ति लट्लकार
11.3.1 लट्लकार
11.3.2 लिट् लकार
11.3.3 लुट् लकार
11.3.4 लृट् लकार
11.3.5 लोट् लकार
11.3.6 लङ् लकार
11.3.7 लिङ् लकार
11.3.8 आशी र्लिङ् लकार
11.3.9 लुङ् लकार
11.3.10 लृङ्लकार
11.4 सारांश
11.5 शब्दावली
11.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
11.7 सन्दर्भ ग्रन्थ
11.8 सहायक सामग्री
11.9 निबन्धात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

व्याकरण शास्त्र से सम्बन्धित तीसरे खण्ड की यह पहले ब्लाक का बारहवाँ इकाई का शार्षक है इस इकाई का विषय है, लकार विभक्ति-धातु रूप-भू, अस, डुकृञ् अर्थ एवं उदाहरण सहित व्याख्या किया गया है। व्याकरण शास्त्र के महत्त्व को जानते हुए व्याकरण शास्त्र के धातुओं का वाक्य में प्रयोग किया गया है। व्याकरण शास्त्र के प्रणेताओं ने बड़े ही स्पष्ट रूप से और विस्तार से धातु रूप के बारे में चर्चा की है। कि धातु रूप क्यों पढ़ा लिखा जाता है तथा धातु रूप की रचना क्यों होती है, प्रस्तुत इकाइ में विस्तार से चर्चा की गयी है।

11.2 उद्देश्य

आप इस इकाई में लकार विभक्ति का अध्ययन करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

* लकार क्या है ,इसकी विशेषता क्या है आप बता सकेंगे।
* विभक्ति क्या है, इसकी विशेषता क्या है आप बता सकेंगे।
* सकर्मक क्या है, इसकी विशेषता बता सकेंगे।
* अकर्मक क्या है ,इसकी विशेषता बता सकेंगे।
* भूत काल क्या है ,इसकी विशेषता बता सकेंगे।
* भविष्य काल क्या है,इसकी विशेषता बता सकेगे।
* वर्तमान काल क्या है, इसकी विशेषता बता सकेंगे।

11.3 लकार विभक्ति ,लट् लकार

अब सर्वप्रथम काल के बारे में जानना चाहिए। काल तीन प्रकार के होते है। भूत, भविष्य, वर्तमान इन तीनों कालों में से वर्तमान काल का वर्णन हो रहा है।

11.3.1 लट्लकार

वर्तमाने लट् 3/2/123।। वर्तमान क्रिया वृत्तेर्धातोर्लट् स्यात्।

वर्तमान काल की क्रिया के वाचक धातु से लट् लकार होता है। वर्तमान काल किसे कहते हैं ? जिस प्रथम क्षण से आरम्भ होकर कोई कार्य जिस अन्तिम क्षण में समाप्त होता है, इस काल का वर्तमान काल कहते हैं यथा- राम गांव जाता है (रामः ग्रामं गच्छति) राम ग्राम चलना प्रारम्भ कर दिया, किन्तु जबतक पहुँच नहीं जाता है चाहे एक दिन में पहुँचे या एक महीना में , उस समग्र काल को वर्तमान काल कहते है।

भू धातु , वर्तमान काल का रूप

भू सत्तायाम् (होना)

पुरूष	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथम पुरूष	भवति	भवतः	भवन्ति
मध्यम पुरूष	भवसि	भवथः	भवथ
उत्तम पुरूष	भवामि	भवावः	भवामः

अस् भवि होना अर्थ में प्रयोग होता है।

पुरूष	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथम पुरूष	अस्ति	स्तः	सन्ति
मध्यमपुरूष	असि	स्थः	स्थ
उत्तमपुरूष	अस्मि	स्वः	स्मः

डुकृञ् (कृ) धातु

पुरूष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरूष	करोति	कुरूतः	कुर्वन्ति
मध्यम पुरूष	करोसि	कुरूतः	करूथ
उत्तम पुरूष	करोमि	कुर्वः	कुर्मः

अनुवाद बनाने के लिए सबसे पहले पुरूष का ज्ञान किया जाता है ये वाक्य प्रथम पुरूष का है कि मध्यम पुरूष या उत्तम पुरूष का है।

प्रथमपुरूष

जहाँ पर वह, वे दोनों, वे लोग का प्रयोग हुआ हो वहाँ पर प्रथम पुरूष का प्रयोग किया जाता है। यदि कर्ता एकवचन है तो क्रिया एकवचन या कर्ता बहुवचन है तो क्रिया भी बहुवचन रहेगा।

उदाहरण - सः पुस्तकं पठति यहाँ पर कर्ता "स"? (वह) है। क्रिया पढ़ना है। कर्म पुस्तक है। अतः कर्ता एक वचन है इस लिए क्रिया एकवचन का प्रयोग किया गया है।

मध्यम पुरूष - मध्यम पुरूष का प्रयोग वहाँ किया जाता है जहाँ पर तुम, तुम दोनों, तुम लोग का प्रयोग किया गया है। यथा त्वं भवसि (तुम हो रहे हो) यहाँ पर कर्ता 'त्वं' है। और क्रिया भवसि है और वर्तमान काल एकवचन है इस लिए मध्यम पुरूष का प्रयोग वहाँ पर किया जाता है जहाँ हम, हम दोनों, हम लोग का प्रयोग किया गया हो। यथा- अहम् अस्मि (मैं हूँ) यहाँ पर कर्ता 'मैं' और क्रिया 'अस्मि (हूं) है। अतः वर्तमान काल के एक वचन का प्रयोग किया गया है।

उत्तम पुरूष- उत्तम पुरूष का प्रयोग वहाँ किया जाता है जहाँ पर हम, हम दोनों, हम लोग का प्रयोग किया गया है। यथा अहं भवामि (हम हो रहे है) यहाँ पर कर्ता 'अहम्' है और क्रिया भवामि है और वर्तमान काल एकवचन है इसलिए उत्तम पुरूष का प्रयोग यहाँ पर किया गया है।

सः भवति। (वह होता है)

तौ भवतः। (वे दोनों होते हैं)

ते भवन्ति। (वे लोग होते हैं)

त्वं भवसि। (तुम हो रहे हो)

युवां भवथः। (तुम लोग हो रहे हो)

अहं भवामि। (मैं होता हूँ)

आवां भवावः। (हम दोनों होते है)

वयं भवामः। (हम लोग होते हैं)

सः अस्ति। (वह होता है)

तौ स्तः। (वे दोनों है)

ते सन्ति। (वे लोग है)

त्वम् अस्ति। (तुम हो)

युवां स्थः। (तुम दोनों हो)

यूयं स्थ। (तुम लोग हो)

सः पुस्तकं करोति। वह पुस्तक करता है।

तौ पुस्तके कुरूतः। वे दोनों दो पुस्तके करते हैं।

ते पुस्तकानि कुर्वन्ति। वे लोग पुस्तकों को करते हैं।

त्वं पुस्तिका करोषि। तुम पुस्तिका को करते हो।

युवां पुस्तिके कुरूथः। तुम दोनों पुस्तिका को करते हो।

युवां कार्ये कुरूथः। तुम दोनों दो कार्यो को करते हो।

यूयं कार्याणि कुरूथ। तुम लोग कार्यो को करते हो।

अहं तं कार्य करोमि । मैं उस कार्य को करता हूँ।

आवां तौ कार्ये कुर्वः। हम दोनों उन दो कार्यों को करते हैं।

वयं तानि कार्याणि कुर्मः। हम लोग उन कार्यों को करते हैं।

अभ्यास प्रश्न 1

(1) बहुविकल्पात्मक

1. लकार कितने होते हैं-

अ. दश ब. पाँच स. तीन द. सात

2. पुरूष कितने होते हैं

अ. पाँच ब. तीन स. दो द. एक

3. रामः शेते (राम सोता है) सकर्मक है कि अकर्मक है -

अ. सकर्मक ब. अकर्मक स. दोनों द. दोनों नही

(2) संस्कृत में अनुवाद बनाइये-

1. हम लोग विद्यालय में होते हैं।

2. वे दोनों कहाँ होते हैं।

3. तुम लोग उन कार्यो को करते हो ।

4. हम लोग उन कार्यो को करते हैं।

5. हम लोग हैं।

11.3.2 लिट् लकार

अब लिट् लकार का प्रयोग कहा किया जाय,इसके लिए सर्वप्रथम लिट् लकार का अर्थ सुत्र के द्वारा प्रतिपादन किया जा रहा है।

परोक्षे लिट् 3 /2 /115 ।। भूताऽनद्यतन परोक्षार्थवृत्तेर्धातोर्लिट् स्यात्।

अनद्यतन परोक्ष भूत अर्थ में स्थित धातु से लिट् लकार होता है। अद्य भवम् अद्यतनम् जो आज का हो उसे अद्यतन कहते है। न अद्यतनम् अनद्यतनम् आज न होने वाले को अनद्यतन कहते हैं। लिट् लकार का ऐसे में प्रयोग किया जाता है जो आज का न हो। **देवदत्त ने आज प्रातः भोजन किया**- यहाँ भूतकाल तो है पर वह भूतकाल आज का होने से अद्यतन है, अनद्यतन नहीं हैं अतः इसमें लिट् लकार का प्रयोग नहीं होगा। सामान्य बात यह है कि वक्ता से जो परोक्ष (अक्ष्णः परम् इति परोक्षम्) अर्थात् नेत्रादि इन्द्रियों के ज्ञान से दूर हो उसे परोक्ष कहते हैं, फिर चाहे वह अतीत में कभी हुआ हो।

भूतकाल की क्रिया को प्रगट करने के लिए व्याकरणशास्त्र में लङ्, लिट, और लृङ् लकार का प्रयोग होता है। यथा - हुआ था, रहा था, किया था के लिए। यथा पपाठ (उसने पढ़ा) श्रीकृष्ण: कंसं जघान (श्री कृष्ण ने कंस को मारा)।

यदि भूत काल का सूचक वाक्य में आज का प्रयोग हुआ हो तो लुङ् लकार का प्रयोग होता है, यथा अद्य दशरथः राजा अभूत् (आज दशरथ राजा हुआ)।

परोक्ष भूत काल में (इन्द्रिय से अगोचर होने पर) लिट् लकार का प्रयोग होता है, यथा नारद उवाच (नारद मुनि बोले) किन्तु उत्तम पुरूष में लिट् लकार का प्रयोग नहीं होता है। यथा अहं वनं जगाम (मैं जंगल गया) यह प्रयोग ठिक नहीं है।

भूतकाल में प्रश्न बोधक जहाँ वाक्य होगा, वहाँ पर बोधक कराने के लिए लङ् और लिट् लकार को बोध होता है यथा अभाषत किम् ? जगाम किम ? (गया क्या ?)

किन्तु विप्रकृष्ट भूतकाल में (जो देर से बीत चुका) उसको बोध कराने के लिए लिट् लकार का प्रयोग किया जाता हैं यथा कंस: जघान किम्? (कंस को मारा क्या) लिट् लकार का रूप एवं **वाक्यादि उदाहरण -**

भू धातु लिट् लकार-

बभूव	बभूवतुः	बभूवु:
बभूविथ	बभूवथुः	बभूव
बभूव	बभूविव	बभूविम

अस् धातु लिट् लकार-

अस् धातु को लिट् या जितने आर्धधातुक लकार हैं उनके स्थान में भू आदेश होता है।

बभूव	बभूवतुः	बभूवु:
बभूविथ	बभूवथुः	बभूव
बभूव	बभूविव	बभूविम

डुकृञ् (कृ) धातु लिट् लकार-

चकार	चक्रतुः	चक्रु:
चकर्थ	चक्रथुः	चक्र
चकार-चकर	चकृव	चकृम

वाक्य में प्रयोग

अयोध्यायाः नृपः रामः बभूव। अयोध्या के राजा राम थे।

दशरथस्य चत्वारः पुत्राः बभूवुः। दशरथ के चार पुत्र हुए।

दुष्यन्तः कार्य चकार। दुष्यन्त ने कार्य किया था।

रामः कार्याणि चकार। राम ने कार्यों को किये।

वानराः लंकायां कार्याणि चक्रुः। वानरों ने लंका में कार्यों को किया।

लवकुशौ कार्यं चक्रतुः। लव कुश ने कार्य किया।

अभ्यास प्रश्न 2

(1) बहुविकल्पात्मक प्रश्नाः

1. भू धातुः लिट् लकारे मध्यम पुरूषस्य एक वचनस्य रूपमस्ति-

अ. बभूविथ ब. बभूवथुः स. बभूव द. बभूविम

2. अस्धातोः लिट् लकारे उत्तमपुरूषस्य एकवचनस्य रूपस्ति-

अ. बभूव ब. बभूविथ स. बभूविव द. बभूविम

3. कृ धातोः प्रथम पुरूषबहुवचनस्य रूपमस्ति-

अ. चकार ब. चक्रतुः स. चकृव द. चक्रुः

(2) संस्कृत में अनुवाद बनाइये-

1. सीता के पति राम थे।

2. राम ने लंका में अनेक कार्य किये।

3. रावण ने सीता को चुराया।

4. राम ने रावण को मारा।

5. शकुन्तला के पुत्र भरत हुए।

11.3.3 लुट् लकार

अनद्यतने लुट् 3/3/15 ।। भविष्यत्यनद्यतनेऽर्थे धातोर्लुट् स्यात्।

अनद्यतन भविष्यति क्रिया में वर्तमान धातु से लुट्लकार होता है। हिन्दी में जहाँ पर गा, गे, गी का प्रयोग होता है वहाँ पर भविष्यत् काल में लृट् लकार का प्रयोग किया जाता है। यद्यपि लुट् तथा लृट् इन दोनों ही लकारों से भविष्यत् काल का बोध होता है। फिर भी इन दोनों लकारों में भेद है कि दूरवर्ती भविष्यत् के बोध के लिए लुट् लकार का प्रयोग होता है और समीप वर्ती भविष्य के लृट्लकार का प्रयोग होता है।

रूप एवं वाक्यादि उदाहरण-

भू धातु लुट्लकार

भविता	भवितारौ	भवितारः
भवितासि	भवितास्थः	भवितास्थ
भवितामि	भवितस्वः	भवितास्मः

अस् धातु के रूप को लृट् लकार में भू आदेश होता है।

भविता	भवितारौ	भवितारः
भवितासि	भवितास्थः	भवितास्थः
भवितामि	भवितस्वः	भवितास्मः

डुकृञ् (कृ) धातु

कर्ता	कर्तारौ	कर्तारः
कर्तासि	कर्तास्थः	कर्तास्थ
कर्तास्मि	कर्तास्वः	कर्तास्मः

रमेशः स्व विद्यालये भविता। रमेश कल विद्यालय में होगा।

युवां स्व विद्यालये भवितास्थः। तुम दोनों कल विद्यालय होंगे

ते स्व विद्यालये भवितारः। वे लोग कल विद्यालय में होगें।

यूयं स्व कार्य कर्तास्थ। तुम लोग कल कार्य करोगें।

आवां स्व कर्तास्वः। हम लोग घर में कार्य करेंगे।

युवां कदा कर्तास्वः। हम दोनों कब करोगे।

युवां कदा कर्तास्थः। तुम दोनों कब करोगे।

यूयं अग्रिमे मासे भवितास्थ। तुम लोग अगले महीने में होगें।

अभ्यास प्रश्न 3

(1) बहुविकल्पात्मक प्रश्नाः

1. भू धातोः प्रथम पुरूष एक वचने रूपमस्ति-

अ. भविता ब. भवितारौ स. भवतिस्म द. भवितारः

2. अस् धातोः प्रथम पुरूष एकवचने रूपमस्ति

अ. भवितास्मि ब. भतितास्वः स. भविता द. भवितास्मः

3. कृ धातोः उत्तमपुरूष बहुवचने रूपमस्ति-

अ. कर्ता ब. कर्तारौ स. कर्तास्मः द. कर्तारः

(2) संस्कृत भाषा में अनुवाद बनाइये।

1. दो दिन बाद मैं घर के कार्यों को करूगा।

2. पाच छः दिनों मैं वहा जऊगाँ।

3. तुम लोग कल घर जाओगे।

4. तुम दोनों परसों विद्यालय में होगे।

5. वे लोग कल में होगे।

6. तुम लोग कल घर के कार्य करोगे।

7. कल दो बालक घर के कार्य करोगे।

11 .3.4 लृट् लकार

लृट् शेषे च ।। भविष्यतदर्थाद् धातो र्लृट् स्यात् क्रियार्थायां क्रियायां सत्यामसत्यां च।

भविष्यत् अर्थ में धातु से लृट् लकार का प्रयोग होता है। क्रियार्थ चाहे विद्यमान हो या न हो। लृटलकार में बताया गया है कि जहाँ पर गा,गे,गी, रहेगा वहाँ पर लृट् लकार किन्तु जहाँ पर समीपवर्ती भविष्य रहेगा, वहाँ पर लृट् लकार का प्रयोग किया जा रहा है-

भू धातु

भविष्यति	भविष्यतः	भविष्यन्ति
भविष्यसि	भविष्यथः	भविष्यथ
भविष्यामि	भविष्यावः	भविष्यामः

अस् धातु

भविष्यति	भविष्यतः	भविष्यन्ति
भविष्यसि	भविष्यथः	भविष्यामः
भविष्यामि	भविष्यावः	भविष्यथ

डुकृञ् (कृ) धातु

करिष्यति	**करिष्यतः**	**करिष्यन्ति**
करिष्यसि	करिष्यथः	करिष्यथ
करिष्यामि	करिष्यावः	करिष्यामः

तव मातु: दौ पुत्रौ भविष्यतः। (तुम्हारे माता को दो पुत्र होंगे)

ते भविष्यन्ति। वे लोग होगें।

त्वं भविष्यसि। तुम होगे।

युवां वने भविष्यथ। (तुम दोनों विद्यालय में जाकर होंगे)

यूयं वने भविष्यथ। तुम लोग वन में होंगे।

अहं मन्दिरे भविष्यामि। मैं मन्दिर में होऊगाँ।

आवां चिकित्सालये भविष्यावः। हम दोनों चिकित्सालय में होगें।

वयं सर्वे गृहे भविष्यामः। हम सभी लोग घर में होगें।

ते धर्मस्य निर्माणं करिष्यन्ति। वे लोग धर्म का निर्माण करेंगे।

तौ ग्रन्थस्य निर्माणं करिष्यतः। वे दोनों ग्रन्थ का निर्माण करेंगे।

ते सर्वे विद्यालयस्य कार्य करिष्यन्ति। वे सभी विद्यालय का कार्य करेंगे।

त्वं गृह गमिष्यसि। तु घर जाओगे।

युवां विद्यालयस्य कार्यं करिष्यथः तुम दोनों विद्यालय का कार्य करोगे।

युवां विद्यालयस्य कार्यं करिष्यथः। तुम लोग गृह कार्य करोगे।

अहं विद्यालयस्य कार्य करिष्यामि। मै विद्यालय का कार्य करूगा।

आवां गृहस्य कार्यं करिष्यावः हम दोनों गृह कार्य करेंगे।

वयं विद्यालयस्य कार्याणि करिष्यामः। हम सभी विद्यालय के कार्यों को करेंगे।

अभ्यास प्रश्न. 4

1. बहुविकल्पात्मक प्रश्नाः

1. भू धातोः लृट्लकारस्य प्रथमपुरूष बहुवचनस्य रूपमस्ति-

अ. भविष्यति ब. भविष्यन्ति स. भविष्यतः द. भविष्यामि

2. अस् धातोः मध्यम पुरूष एकवचनस्य रूपमस्ति-

अ. भविष्यसि ब. भविष्यामि स. भविष्यतः द. भविष्यन्ति

3. कृ धातोः लृट् लकारस्य उत्तमपुरूष बहुवचनस्य रूपमस्ति-

अ. करिष्यामि ब. करिष्यामः स. करिष्यन्ति द. करिष्यसि

(2) संस्कृत में अनुवाद बनाइये-

1. तुम लोग घर में होगे।
2. तुम विद्यालय में होगे।
3. तुम घर का कार्य करोगे।
4. तुम दोनों विद्यालय का कार्य करोगे।
5. हम सभी पुस्तकालय में पुस्तक पढ़ेगें।
6. रमा कार्य नहीं करेगी।
7. लड़कियॉ घर का कार्य करेगी।
8. वे दोनों बालिका वन में जायेगीं।
9. हम दोनों घर में भोजन करेंगे।

11.3.5 लोट्लकार

लोट् च 3/3/162

विध्यादिष्वर्थेषु धातोर्लोट् स्यात्। विधि आदि अर्थों में धातु से लोट् लकार होता है। अनुमति, निमन्त्रण, आमन्त्रण , अनुरोध, जिज्ञासा और सामर्थ्य अर्थ में लोट्लकार का प्रयोग होता है , यथा-

अनुमति अर्थ में - अद्य भवान् अत्र पाठयतु। (आज आप यहाँ पढ़ाइये।)

आमन्त्रण अर्थ में- विद्यालयेऽस्मिन यथेच्छ पठ। (इस विद्यालय में इच्छानुसार पढ़ सकते हो) माम् अस्याः विपदः रक्षतु भवान् (आप इस विपत्ति से मेरी रक्षा कीजिए) आशीर्वाद अर्थ में मध्यम तथा अन्य पुरूष में लोट्लकार का प्रयोग किया जाता है, यथा - गच्छ विजयी भव (जाओ विजय प्राप्त करो), पन्थानः सन्तु ते शिवा (तुम्हारे मार्ग कल्याणकारी होवे) 'प्रश्न और सामर्थ्यों 'आदि का बोध होने पर उत्तम पुरूष में लोट्लकार का प्रयोग होता है, यथा- किं करवाणि ते प्रियं देवि। देवि तेरे लिए मैं क्या करूँ। अहं सिन्धुमपि शोषयाणि। मैं समुद्र भी सुखा सकता हूँ।

भू धातु लोट् लकार

भवतु	भवताम्	भवन्तु
भव	भवतम्	भवत्
भवानि	भवाव	भवाम

अस् धातु लोट् लकार

अस्तु	स्ताम्	सन्तु
एधि	स्तम्	स्त
आसानि	आसाव	आसाम

डुकृञ् (कृ) धातु लोट् लकार

करोतु	करूताम्	कुर्वन्तु
कुरू	कुरूतम्	करूत
करवाणि	करवाव	करवाम

ते श्रमशीलाः भवन्तु। वे लोग श्रमशील होंवे।

मेघाः जलदाः भवन्तु। मेघजल देने वाले होंवे।

वयं सत्यवादिन: भवाम। हम लोग सत्यवादी होवें।

सः अस्तु। वह है।

तौ स्ताम्। तुम दोनों हो

मंगलानि सन्तु। मंगल होंवे।

यूयं विद्यालये स्त। तुम सब विद्यालय में होवे।

सः विद्यालयस्य कार्यं करोतु। वह विद्यालय का कार्य करे।

महेशः विद्यालये पाठं स्मरणं करोतु। महेश विद्यालय में पाठस्मरण करे।

तौ विद्यालये ग्रन्थस्य निर्माणं कुरूताम्। वे दोनों विद्यालय में ग्रन्थ का निर्माण करें।

अहं विद्यालयं गत्वा किं करवाणि। मै विद्यालय में जाकर क्या करूँ। वयं गृहं गत्वा किं करवाम। हम लोग घर में जाकर क्या करें। वयं रामायणष्य पाठं करवाम। हम लोग रामायण का पाठ करें

अभ्यास प्रश्न. 5

(1) बहुविकल्पात्मक प्रश्नाः

1. भू धातुः लोट्लकारस्य मध्यमपुरूष बहुवचने रूपमस्ति

अ. भवतु ब. भवताम् स. भवत द. भवन्तु

2. अस् धातो लोट्लकारस्य प्रथम पुरूष बहुवचने रूपमस्ति-

अ. अस्तु ब. स्ताम् स. सन्तु द. एधि

3 कृ धातोः उत्तमपुरूष बहुवचने रूपमस्ति-

अ. करोतु ब. करवाणि स. करवाव द. करवाम

(2) संस्कृत में अनुवाद बनाइये।

1. वे लड़के अध्ययन शील होवे।

2. उन छात्रों को मंगल होवें।

3. उन लोगों का कल्याण हो।

4. वे सब घर का कार्य करें।

5. वे दोनों पाठ याद करें।

6. वे लोग ग्रन्थ का निर्माण करें।

7. मैं वहाँ जाकर क्या करूँ।

8. हम लोग वहा जाकर कार्य करें।

11.3.6 लङ् लकार

अनद्यतने लङ् 3/2/111।। अनद्यतन भूतार्थ वृत्तेर्धातोर्लङ् स्यात्।

अनद्यतन भूतकाल में धातु से लङ् लकार का प्रयोग होता है। भूतकाल का सूचक वाक्य में यदि ह्य: (विता हुआ) का प्रयोग हो तो लङ् लकार का प्रयोग होता है। **यथा**- ह्य: वृष्टिरभवत्(कल वर्षा हुई थी)।

रूप एवं वाक्यादि विचारः-

भू धातु लङ् लकार

अभवत्	अभवताम्	अभवन्
अभवः	अभवतम्	अभवत
अभवम्	अभवाव	अभवाम

अस् धातु लड् लङ् लकार-

आसीत्	आस्ताम	आसन्
आसीः	आस्तम्	आस्त
आसम्	आस्व	आस्म

डुकृञ् (कृ) धातु लङ् लकार

अकरोत्	अकरूताम्	अकुर्वन्
अकरो:	अकुरूतम्	अकरूत
अकरवम्	अकरवाव	अकरवाम

रमेशः वैज्ञानिकम् अभवत्। रमेश वैज्ञानिक हुआ।

तौ योग्यम् अभवताम्। वे दोनों योग्य हुए।

ते बालिकाः विदुषी अभवन्। वे लड़किया विदुषी हुई।

त्वं कुत्र अभवः? तुम कहाँ हुए ?

यूयम् अध्यापकाः अभवत। तुम लोग अध्यापक हुए।

आवां छात्रौः अभवाम्। हम दोनों छात्र हुए।

वयं गुरवः अभवाम्। हम लोग गुरू हुए।

महाराणाप्रतापः उदय सिंहस्य पुत्र आसीत्

महाराणाप्रतापः उदय सिंह के पुत्र थे।

महाराणाप्रतापः निर्भिकः दयालुश्च आसीत्।

महाराणाप्रताप निर्भिक और दयालु थे।

तौ कुत्र आस्ताम्। वे दोनों कहाँ थे।

तौ गृहे आस्ताम्। वे दोनों घर में थे।

ते भ्रमणार्थं कुत्र आसन ? वे लोग भ्रमण करने के लिए कहाँ थे

त्वं पठनार्थं कुत्र आसी ? तुम पढ़ने के लिए कहाँ था?

वयं वने मन्दिरस्य समीपे आस्म। हम लोग वन में मन्दिर के पास थे।

महाराणाप्रताप: भारतस्य स्वतन्त्रतायै महान्त प्रयत्नम् अकरोत्

महाराणाप्रताप भारत के स्वतन्त्रता के लिए महान प्रयत्न किये।

मुगल शासक: देहल्यां शाससनम् अकरोत्।

मुगल शासक देहली पर शासन किया।

इमां प्रतिज्ञामकरोत। इस प्रतिज्ञा को किया।

ते जनाः किम् अकुर्वन्। वे लोग क्या किये।

यूयं देहल्यां शासनम् अकुरूत। तुम लोग देहली पर शासन किये।

वयं तानि कार्याणि अकुर्म। हम लोग इन कार्यों को किये।

अभ्यास प्रश्न. 6

(1) बहुविकल्पात्मक प्रश्नाः

1. भू धातोः लङ् लकारस्य प्रथम पुरूष द्विवचनस्य रूपमस्ति

अ. अभवत् ब. अभवताम् स. अभवन् द. अभवः

2. अस् धातोः लङ् लकारस्य उत्तमपुरूषद्विवचनस्य रूपमस्ति-

अ. आसीत् ब. आस्व स. आस्तम् द. आस्म

3. कृ धातोः लङ् लकारस्य मध्यमपुरूष एकवचनस्य रूपमस्ति-

अ. अकरोत् ब. अकुर्वन् स. अकरोः द. अकुरूत

(2) संस्कृत भाषा में अनुवाद बनाइये-

1. श्याम राजा हुआ।
2. वे लोग योग्य हुए।
3. तुम लोग कार्य करने में दक्ष हुए।
4. हम लोग कुशल अध्यापक हुए।
5. महाराणाप्रताप भारत की रक्षा के लिए अनेक प्रयास किये।
6. दिल्ली के मुगल शासकों के साथ युद्ध किये।
7. वे लोग कहाँ पर थे।

11.3.7 लिङ् लकार

विधिनिमन्त्रणाऽमन्त्रणाऽधीष्ट सम्प्रश्न प्रार्थनेषु लिङ् 3/3/161।।

एष्वर्थेषु धातोर्लिङ् स्यात्।

विधि निमन्त्रण, आमन्त्रण, अधीष्ट सम्प्रश्न और प्रार्थना इन अर्थो में धातु से परे लिङ् लकार होता है।

1. विधि - अपने से छोटे अर्थात् नौकर या सेवक आदि को आज्ञा या हुक्म देना विधि कहलाता है। कोई अपने नौकर से कहे-भवान् जलम् आनयेत् (आप जल लायें), वस्त्राणि भवान् प्रक्षालयेत् (आप वस्त्रों को धो दें) आदि विधि कहलाता है।

2. निमन्त्रण - अवश्य कर्तव्य प्रेरणा को "नियन्त्रण' कहते है। यथा इह भवान् भुंजीत्- (आप यहां खायें)

3.आमन्त्रण ऐसी प्रार्थना का नाम आमन्त्रण होता है जिसमें कामचारिता होती है। अर्थात् करना न करना अच्छा पर निर्भर होता है, इहासीत् भवान् (आप यहा बैठें) बैठना, न बैठना इच्छा पर निर्भर करता है। ऐसे आशीर्वाद अर्थ जहा पर होगा वहाँ पर लिङ् और लोट् दोनों लकारों का प्रयोग किया जाता है।

4. अधीष्ट-अधीष्टं नाम सत्कार पूर्वको व्यापार। किसी बड़े गुरू आदि को सत्कार पूर्वक किसी कार्य की करने की प्रेरणा देना अधीष्ट कहलाता है। यथा पुत्रमध्यापयेत् भावन् (आप मेरे पुत्र को पढ़ावे)।

सम्प्रश्न - किसी बड़े के समीप किसी वात का सम्प्रसारण निश्चय करना 'सम्प्रश्न' कहलाता है। किसी विषय से पूंछे - भे किं वेदमधीयीय उततर्कम् ? (निश्चयार्थ) पूछा गया है।

प्रार्थना- मांगने का नाम प्रार्थना है। यथा- भो भोजनं लभेय (मैं भौजन पाना चाहता हूँ)
सम्भावना अर्थ जहा पर होगा, वहाँ पर भी लिङ् लकार का प्रयोग होता है। यथा-सम्भाव्यतेऽद्य पिताआगच्छेत् (शायद आज पिता जी आ जायँ) कदाचिदाचार्यः श्वः वाराणसी गच्छेत् (शायद कल गुरू जी वाराणसी जावें)

रूप एवं वाक्यादि विचार

भू धातु

भवेत	भवेताम्	भवेयुः
भवेः	भवेतम्	भवेत
भवेयम्	भवेव	भवेम

अस् धातु लिङ्लकार

स्यात्	स्याताम्	स्युः
स्याः	सयातम्	स्यात्
स्याम्	स्याव	स्याम

डुकृञ् (कृ) धातु लिङ् लकार

कुर्यात्	कुर्याताम्	कुर्युः
कुर्याः	कुर्यातम्	कुर्यात
कर्याम्	कुर्याव	कुर्याम

1. तं रामायणं पठनार्थम् अभ्यस्तं भवेत्

2. तौ ग्रन्थाऽध्ययनात् कुशलं भवेताम्

3. तान् पाठाभ्यासार्थं कुशलं भवेयु:

4. युस्मान बालिकान् पाठ् पठनार्थं दक्षः भवेत

5. अस्मान्नपि पाठ पठनार्थं कुशलं भवेम

6. तौ गृहे स्याताम्

7. तस्मिन् विद्यालये पुस्तकानि स्युः

8. ते पुस्तकानि अस्मान् स्याम

9. तानि कार्याणि तान् जनान् कुर्युः

10. युष्मान् तेषां ग्रन्थानाम् अध्ययनं कुर्यात

11. अस्मान् ग्रन्थानां निर्माणं कुर्याम

हिन्दी-

1. उस समायण को पढ़ने के लिए अभ्यस्त होना चाहिए।
2. तुम दोनों को ग्रन्थाध्ययन के लिए कुशल होना चाहिए।
3. उन लोगों को पाठ के अभ्यास के लिए कुशल होना चाहिए।
4. तुम बालिकाओं को पाठ पढ़ने के लिए दक्ष होना चाहिए।
5. हम लोगों को भी पाठ पढ़ने के लिए कुशल होना चाहिए।
6. तुम दोनों को घर में होना चाहिए।
7. विद्यालय में पुस्तकें होनी चाहिए।
8. वे पुस्तकें हम लोगों की होनी चाहिए।
9. उन लोगों को उन ग्रन्थों का अध्ययन करना चाहिए।
10. हम लोगों को ग्रन्थों का निर्माण करना चाहिए।
11. हम लोगों को ग्रन्थों का निर्माण करना चाहिए।

11.3.8 आशी र्लिङ् लकार

आशिषि लिङ् लोटौ 3/3/163।।

आशीर्वाद अर्थ में धातु से लिङ् और लोट् लकार होते हैं।

उपदेश- उपदेश में भी आशीर्लिङ् का प्रयोग किया जाता है। सत्यं बूयात् प्रिय बूयात् (सत्य विचारे बोले) सहसा विदधीत न क्रियाम् (विना विचारे कार्य न करें)

रूप एवं वाक्यादि विचार:-

भू धातु आ0 लिङ् लकार -

भूयात्	भूयास्ताम्	भुयासुः
भूया:	भूयास्तम्	भूयास्त
भूयासम्	भूयास्व	भूयास्म

अस् धातु आ0 लिङ् लकार यहाँ पर आर्धधातुक होने से अस् के स्थान में भू आदेश होता है।

भूयात्	भूयास्ताम्	भूयासुः
भूया:	भूयास्तम्	भूयास्त
भूयासम्	भूयास्व	भूयास्म

डुकृञ् ´ कृ धातु आ0 लिङ् लकार -

क्रियात्	क्रियास्ताम्	क्रियासुः
क्रियाः	क्रियास्तम्	क्रियास्त
क्रियासम्	क्रियास्व	क्रियास्म

वाक्यादि उदाहरण-

ते शतं चिरायुः भूयासुः (वे लोग सौ वर्ष तक चिरायु होवे)।

तव पुत्रो भूयात्	तुम्हारा पुत्र होवे ।
त्वं चिरायुः भूयाः	तुम चिरायु हो।
वयं भूयास्म सर्वदा	हम लोग भी सर्वदा हो।
तौ गृहे भूयास्ताम्	वे दोनों घर में रहे।
ते कार्यं क्रियासुः	वे लोग कार्य करते रहे।

ईश्वरः करोतु वयं कार्य क्रियास्म। ईश्वर करे हम लोग कार्य करते रहें।

11.3.9 लुङ् लकार

लुङ् 3 / 2 / 110 ।।

भूतार्थे धातोर्लुङ् स्यात्

भूत काल में धातु से लुङ् लकार होता है।

कल यदि भूतकाल का सूचक वाक्य में आज का प्रयोग हो तो लुङ् लकार का प्रयोग होता हैं। यथा अद्य रामो राजा अभूत् (आज राम राजा हुआ)।

भू धातु लुङ् लकार -

अभूत्	अभूताम्	अभूवन्
अभूः	अभूतम्	अभूत
अभूवम्	अभूव	अभू

अस् धातु का रूप भू के समान होगा।

अभूत्	अभूताम्	अभूवन्
अभूः	अभूतम्	अभूत
अभूवम्	अभूव	अभूम

डुकृञ् ´ कृ धातु लुङ्लकार

अकार्षित्	अकार्ष्टाम्	अकार्षुः
अकर्षीः	अकार्ष्टम्	अकार्ष्ट
अकार्षीः	अकार्ष्व	अकार्ष्म

रूप एवं वाक्यादि विचारः-

1. ते अद्य परीक्षायामुत्तीर्णम् अभूवन्।
2.यूयं प्रतियोगितायाम् उत्तीर्णम् अभूत।
3. वयम् अद्य कार्यकरणार्थं कुशलम् अभूम्।
4. ते अद्य गृहे अभूवन्।
5. यूयं कार्यम् अद्य अकार्ष्ट।
6. वयम् अद्य कार्यकरणार्थं प्रयासम् अकार्ष्म।
1. वे लोग आज परीक्षा में उत्तीर्ण हुए।
2. तुम लोग आज प्रतियोगिता में सफल हुए।
3. हम लोग आज कार्य करने के लिए कुशल हुए।
4. वे लोग आज घर में रहें।
5. तुम लोग आज कार्य को किये।
6. हम लोग आज कार्य करने के लिए प्रयास किये।

11.3.10 लृङ्लकार

लिङ् निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ 3/3/139।।

हेतु- हेतु मद् भावादि लृङ् लिङ्निमित्तम्, तत्र भविष्यत्यर्थे लृङ् स्यात्। क्रियाया अनिष्पत्तौ गम्यमानायाम्।

हेतु-हेतु मद्भाव आदि जो लिङ् के निमित्त कहे गये है उनमें यदि भविष्यत् कालिक क्रिया कहीं

जाय तो धातु से परे लृङ् लकार होता है। क्रिया की अनिष्पत्ति (असिद्धि) गम्यमान हो तो।

"यदि ऐसा होता तो ऐसा हो तो" इस प्रकार के भविष्यत् के अर्थ में धातु से लृङ् लकार होता हैं यथा-सुवृष्टि श्चेद् अभविष्यत् सुभिक्षमभविष्यत् (यदि अच्छी वर्षा होती तो अच्छा अन्न होता)।

रूप एवं वाक्यादि विचारः-

भू धातु

अभविष्यत्	अभविष्यताम्	अभविष्यन्
अभविष्यः	अभविष्यतम्	अभविष्याम
अभविष्यम्	अभविष्याव	अभविष्याम

अस् धातु यहाँ भी अस् के स्थान में भू आदेश होता है।

अभविष्यत्	अभविष्यताम्	अभष्यन्
अभविष्यः	अभविष्यतम्	अभविष्यत
अभविष्यम्	अभविष्याव	अभविष्याम

डुकृञ् ´ (कृ) धातु

अकरिष्यत्	अकरिष्यताम्	अकरिष्यन्
अकरिष्यः	अकरिष्यतम्	करिष्यत
अकरिष्यम्	अकरिष्याव	अकरिष्याम

संस्कृत-

1. पश्चिमेन चेद् अयास्यत् न वाहनं पर्याभविष्यत्।
2. यदि बालकाः अभविष्यन्-तर्हि अपाठयिष्यम्।
3. यदि भोजनम् अभविष्यत् तर्हि सः अगमिष्यत्।
4. यदि अगमिष्यत् तर्हि अभविष्यत्।
5. यदि ते विद्यालयम् अगयिष्यन् तर्हि ते अभविष्यन्।
6. यदि वयं तत्र अगमिष्यम तर्हि कार्याणि अभविष्याम।
7. वयं अगमिष्याम तर्हि कार्याणि अकरिष्याम।

हिन्दी -

1. यदि पश्चिम मार्ग से जायेगा तो वाहन नहीं उलटेगा।
2. यदि भोजन होगा, तो वह जायेगा।
3. यदि जायेगा तो होगा।
4. यदि वे लोग विद्यालय में जायेंग तो वे लोग होंगे।

5. यदि हम लोग जायेंगे तो कार्य करेंगे।

11.4 सारांश

लकार दश प्रकार के माने गये हैं 1. लट् 2. लिट् 3. लृट् 4. लृट 5. लेट् 6. लोट् 7. लङ् 8. लिङ् 9. लुङ् 10 लृङ् इन दश लकारों में से पाचवाँ जो लकार 'लेट्' लकार है उनका प्रयोग वेद में होता है। आगे नव लकारों का प्रयोग किया जायेगा, परन्तु लिङ् लकार के दो (विधिलि और आशीर्लिङ्) होने से पुनः लोक में भी दशलकार माने गये हैं। अब इन लकारों का प्रयोग कहाँ पर किया जाय, इनका वर्णन सूत्र के माध्यम से किया जा रहा है -

लः कर्मणि च भावे चाऽकर्मकेभ्यः 3/4/69।। लकाराः सकर्मकेभ्य कर्मणि कर्तरि च स्युरकर्मकेभ्यो भावे कर्तरि च।

लकार सकर्मक धातुओं से कर्म और कर्ता में तथा अकर्मक धातुओं से भाव और कर्ता अर्थ में होते हैं। इन दोनों वाक्यों का भाव यह है कि लकार के तीन अर्थ होते है। कर्ता, कर्म, भाव। यदि धातु सकर्मक हो तो लकारों का प्रयोग कर्ता और कर्म में होता है और यदि अकर्मक होतो भाव और कर्ता में लकारों का प्रयोग किया जाता है। सकर्मक- अकर्मक जिस धातु में कर्म होता है। उस धातु को सकर्मक कहते हैं और जिस धातु में कर्म नहीं होता हैं। उस धातु को अकर्म कहते है और जिस धातु में कर्म नहीं होता है उस धातु को अकर्मक कहते है। यथा- रामः पुस्तकं पठति (राम पुस्तक को पढ़ता है) यहाँ पर कर्ता राम क्रिया पढ़ना और कर्म पुस्तक है, पठ् धातु का कर्म पुस्तक है। इस लिए पठ् धातु को सकर्मक कहते है। और जहाँ कर्म नहीं होता है। उसे अकर्मक कहते है। रामः शेते (राम सोता है।) यहाँ पर शयनानुकूल जो व्यापार हो रहा है वह राम में हो रहा है। इस लिए यहा कोई कर्म नहीं हैं अतः शी धातु अकर्मक है। सकर्मक से लकार कर्ता और कर्म में होता हैं जिसे कर्तृवाच्य या कर्मवाच्य कहा जाता है। और अकर्मक से लकार कर्ता और भाव में होता है। इन तीनों (कर्तृवाच्य कर्मवाच्य भाववाच्य) का विस्तृत वर्णन आगे वाच्य प्रकरण में दिया गया है। इन दशो लकारों का वर्णन सामान्य रूप से किया गया है।

11.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास 1 - 1 . अ 2. ब 3. ब

संस्कृत अनुवाद - 1.वयं विद्यालये भवाम:

2. तौ कुत्र भवत:।

3. यूयं तानि कार्याणि कुरुथ

4. वयं तानि कार्याणि कुर्म:

5. वयं स्म:

अभ्यास 2 - 1. अ 2. अ 3. द

संस्कृत अनुवाद -

1. सीताया: पति राम: आसीत् ।

2. राम: लंकायाम् अनेकानि कार्याणि चकार ।

3. रावण: सीतां चोरयति

4. राम: रावणं जघान

5. शकुन्तलाया: पुत्र: भरत: बभूव

अभ्यास 3 - 1 . अ 2. स 3 .स

संस्कृत अनुवाद -

1.दिनद्वयं परमहम् गृहस्य कार्याणि करिष्यामि ।

3. यूयं स्व गृहं गमिष्यथ ।

4. युवां परश्व:विद्यालये बभुवथु:

6. यूयं स्व गृहस्य कार्यं करिष्यथ

7. श्व: बालकौ गृहस्य कार्यं करिष्यत

अभ्यास 4 - 1 .ब 2. अ 3 . ब

संस्कृत अनुवाद -

1. यूयं गृहे भविष्यथ।

2.त्वं विद्यालये भवसि।

3. त्वं गृहस्य कार्यं करिष्यथ

4. युवां विद्यालयस्य कार्यं करिष्यथ:।

5. वयं सर्वे विद्यालये पुस्तकं पठिष्याम:

6. रमा कार्यं न करिष्यति।

7. बालिका: गृहस्य कार्यं न करिष्यन्ति

8. ते बालिके वनं गमिष्यत:

9.आवां गृहे भोजनं करिष्याव:

अभ्यास 5 - 1 . स 2. स 3 . द

संस्कृत अनुवाद -

1. ते बालका: अध्ययनशीला: भवन्तु।

2. तेभ्य: छात्रेभ्य: मंगलं भवतु।

3. तेभ्य: कल्याणं भूयात्।

4. ते गृहस्य कार्यं कुर्वन्तु।

5. वे दोनों पाठ याद करें। तौ पाठं स्मरणं कुर्यात्।

6. वे लोग ग्रन्थ का निर्माण करें। ते ग्रन्थस्य निर्माणं कुर्यात्।

7. मैं वहाँ जाकर क्या करूँ। अहं तत्र गत्वा किं करवाणि

8. हम लोग वहा जाकर कार्य करें। वयं तत्र गत्वा कार्यं करवाम

अभ्यास 6 - 1 . ब 2. ब 3 .स

संस्कृत अनुवाद -

1.श्याम: नृप: बभूव।

2. ते योग्या बभूवु:।

3. यूयं कार्यकरणार्थं कुशलं बभूव।

4. वयं कुशलाध्यापका: बभूविम

5. महाराणाप्रताप: भारतस्य रक्षायै अनेके प्रयास: कृत:।

6. देहल्या: मुगलशासकै: सह युद्धम् अकरोत्

7. ते कुत्र आसीत्

11 .6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

क्रमसं0	ग्रन्थनाम	लेखक	टीकाकार	प्रकाशक
1.	वैयाकरण सिद्धान्त	भट्टोजिदीक्षित	गोपाल दत्त	चौखम्भा सुर
2.	लघु सिद्धान्त	वरदराजाचार्य	भीमसेन शास्त्री	भैमीप्रकाशन लाजपत नगर दिल्ली

	कौमुदी			
3.	परम लघु मंजूषा	नागेश भट्ट	भीमसेन शास्त्री	चौखम्भा सुर भारती
4.	वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी	कौण्ड भट्ट	चन्द्रिका प्रसाद द्विवेदी	प्रकाशन वाराणसी

11 .7 उपयोगी पुस्तकें

क्रमसं0	ग्रन्थनाम	लेखक	टीकाकार	प्रकाशक
1	वैयाकरण सिद्धान्त	भट्टोजिदीक्षित	गोपाल दत्त	चौखम्भा सुर
2.	लघु सिद्धान्त कौमुदी	वरदराजाचार्य	भीमसेनशास्त्री	भैमी प्रकाशन लाजपत नगर दिल्ली

11.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. लिङ् निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ इस सूत्र की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिये

2. आशी र्लिङ् लकार का वर्णन कीजिए

इकाई 12 - कारक एवं वाच्य

इकाई की रूपरेखा

12.1 प्रस्तावना
12.2 उद्देश्य
12.3 अथ कारक प्रकरणम् प्रथमा विभक्तिः
12.3.2 द्वितीया विभक्ति(कर्मकारक)
12.3.3 तृतीया विभक्ति
12.3.4 चतुर्थी विभक्तिः (सम्प्रदान कारक)
12.3.5 पंचमी विभक्तिः
12.3.6 षष्ठी विभक्ति (सम्बन्धः)
12.3.7 सप्तमी विभक्ति: (अधिकरण कारकम्)
12.4 वाच्य एवं वाच्य परिवर्तन
12.5 सारांश
12.7अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
12.8 सन्दर्भ ग्रन्थ
12.9 निबन्धात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

व्याकरण शास्त्र के अध्ययन क्रम से सम्बन्धित तीसरे खण्ड की यह संख्या में बारहवीं इकाई है, इस इकाई का विषय है कारक एवं वाच्य। व्याकरण शास्त्र के महत्व को जानते हुए व्याकरण शास्त्र के प्रणेता पाणिनि, कात्यायन एवं पतंजलि हैं। इन प्रणेताओं ने बड़े स्पष्ट रूप से और विस्तार से कारक एवं वाच्य के बारे में चर्चा की है कि कारक एवं वाच्य क्यों पढ़ा - लिखा जाता है तथा कारक की रचना क्यों होती है ? प्रस्तुत इकाई में आप के अध्ययनार्थ इन्हीं विषयों की विस्तार से चर्चा की गयी है।

12.2 उद्देश्य

इस इकाई में आप कारक एवं वाच्य का अध्ययन करेंगे। कारक एवं वाच्य के अन्तर्गत छः कारकों से परिचित होंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः-

* कारक किसे कहते है ? इनकी विशेषता क्या है आप बता सकेंगे।

* कारक कितने प्रकार के होते हैं ? इनकी विशेषता क्या है आप बता सकेंगे।

* कर्ता कारक क्या है ? इनकी विशेषता क्या है आप बता सकेंगे।

* कर्म कारक क्या है ? इनकी विशेषता क्या है आप बता सकेंगे।

* करण कारक क्या है ? इनकी विशेषता क्या है आप बता सकेंगे।

* सम्प्रदान कारक क्या है ? इनकी विशेषता क्या है आप बता सकेंगे।

* अपादान कारक क्या है ? इनकी विशेषता क्या है आप बता सकेंगे।

* अधिकरण कारक क्या है ? इनकी विशेषता क्या है आप बता सकेंगे।

* वाच्य क्या है इनकी विशेषता क्या है ? आप बता सकेंगे।

12.3 अथकारकप्रकरणम् ,प्रथमा विभक्तिः

(कर्ता कारकम्)

क्रियाजनकत्वम् कारकत्वम्।

जो क्रिया का जनक हो उसे कारक कहते है। कारक छः प्रकार के माने गये है इसमें

सबसे पहले कर्ता कारक का वर्णन हो रहा है-

प्रातिपदिकार्थ लिङ्गपरिमाण वचन मात्रे प्रथमा 2/3/46।।

नियतोपस्थितिकःप्रातिपदिकार्थः, मात्र शब्दस्य प्रत्येक योगः। प्रातिपदिकार्थ मात्रे लिङ्गमात्राद्याधिक्ये परिमाणमात्रे संख्यामात्रे च प्रथमा स्यात्।

प्रतिपादिकार्थमात्रे - उच्चैः। नीचैः।कृष्णः/श्री/ज्ञानम्/लिङ्गमात्रे-तटः,तटी,तटम ।

परिमाणमात्रे-द्रोणो व्रीहिः। वचनं सङ्ख्या-एकः, द्वौ,बहवः।

प्रातिपदिकार्थ मात्र में, लिंग मात्र की अधिकता होने पर, परिमाणमात्र में और वचन में प्रथमा विभक्ति होती है ।

नियतोपस्थितिकः प्रातिपदिकार्थः-

किसी शब्द के उच्चारण करने पर निश्चित रूप से जिस अर्थ की उपस्थिति अर्थात् प्रतीति होती है उसे प्रातिपादिकार्थ कहते है । जिस शब्द के उच्चारण करने से यह पता चले कि यह शब्द इस अर्थ का ज्ञान कराता है अथवा इस शब्द का यह अर्थ है, ऐसी प्रतीति जिस शब्द के विषय में होता है उसे प्रातिपादिकार्थ कहते है जिस शब्द का सीधा-सीधा अर्थ मात्र उपस्थित है, ऐसे शब्द से प्रथमा विभक्ति होती है अर्थात् किसी शब्द के उच्चारण करने पर नियतरूप से जिस अर्थ की उपस्थित होती है अर्थात्-प्रतीति होती है ऐसे प्रातिपदिकार्थ से प्रथमा विभक्ति होती है। इसका **उदाहरण है-** उच्चैः नीचैः, कृष्णः श्रीः, ज्ञानम् इस शब्दों के उच्चारण मात्र से क्रमशः उपर, नीचे, भगवान कृष्ण, लक्ष्मी जी और ज्ञान ये अर्थ अपने आप किसी अन्य शक्ति के बिना भी उपस्थित होते है इसलिए प्रातिपदिकार्थ माना गया है और प्रातिपदिकार्थलिंगपरिमाणवचनमात्रे इस सूत्र से प्रथमा विभक्ति होती है ।

लिंगमात्राद्याधिक्ये-

कोई शब्द अपने लिंग नहीं कह सकता अपितु लिंगविशिष्ट प्रातिपदिकार्थ को ही कहता है जैसे- पुरूषशब्द पुल्लिंग युक्त मनुष्यरूप प्रातिपदिकार्थ को नारी - शब्द स्त्रीलिंगयुक्त नारीरूप् प्रातिपदिकार्थ को तथा फल शब्द नपुंसकलिंगयुक्त फल रूप अर्थ को अवश्य कहते हैं।

किन्तु तट शब्द उसमें रहने वाला बहुत लिंगों में से किसी एक अर्थ को तो कह रहा है। किन्तु अनेक को नहीं कह रहा है। इस लिए प्रातिपदिकार्थ में प्रथमा विभक्ति नहीं हो सकती है। अतः प्रातिपदिकार्थ होते हुए लिंग मात्र की अधिकता होतो भी प्रथमा विभक्ति होती है, इसके लिए इस सूत्र में लिंग ग्रहण किया गया है।

ततः, तटी, तटम्। अकारान्त तट शब्द से प्रातिपदिकार्थ सहित लिंगमात्र की अधिकता में प्रथमा विभक्ति हुई। पुल्लिंग में राम शब्द की तरह स्त्रीलिंग में नदी शब्द के समान तथा नपुंसकलिंग में फल शब्द के समान प्रयोग किया गया है ।

परिमाणमात्राधिक्ये. परिमाण मात्र की अधिकता होने पर प्रथमा विभक्ति होती है जैसे-द्रोणों व्रीहिः। द्रोण प्राचीन काल का एक परिमाणवाचक शब्द है, जैसे आजकल किलो कुन्तल आदि है। द्रोण का अर्थ नापने वाला मापक है और व्रीहि उससे नापी जाने वाली माप्य वस्तु है। द्रोण परिमाण और व्रीहि द्रव्य कभी भी एक नहीं हो सकते। अतः उभ्दान्वय को बाधकर परिच्छेद्य-परिच्छेदक भाव रूप सम्बन्ध में अन्वय करने के लिए परिमाण अर्थ में प्रथम विभक्त् होती है ।

संख्यामात्रे - संख्यामात्र में प्रथम विभक्ति होती है एकः दौ बहबः। जैसे एक शब्द से एकत्व

संख्या, द्वि शब्द द्वित्व संख्या बहु शब्द से बहुत्व संख्या अर्थ का बोध होता है। तात्पर्य यह है कि एक, द्वि, बहु आदि शब्दों से संख्या अर्थ जो प्रातिपदिकार्थ है, वह उक्त है उस उक्त अर्थ को बताने के लिए सु औ आदि प्रत्यय नही किये जा सकते क्यों कि उक्तार्थानामप्रयोग उक्त कहा गया है जिन शब्दों का प्रयोग नहीं किया जा सकता ऐसा नियम है। अतः एक द्वि आदि से एकत्व, द्वित्व आदि संख्या रूप अर्थ के उक्त होने पर भी वचन-ग्रहण सामर्थ्य से उक्तार्थानामप्रयोगः इस नियम को बाधकर सु आदि प्रत्यय होते है। इस लिए संख्यामात्रे का उच्चारण किया। एक, द्वि, बहु ये स्वतः संख्यावाचक होते हुए भी प्रथमा विभक्ति होनी चाहिए जिससे ये पद बन सकें। इन तीनों शब्दों से प्रतिपदिकार्थ मात्र होते हुए संख्यामात्र की विशेषता में प्रतिपदिकार्थ लिंग परिमाणवचनमात्रे प्रथमा से प्रथमा विभक्ति हुई।

सम्बोधन अर्थ में प्रथमा विभक्ति विधायक विधिसूत्र -

सम्बोधने च 2/3/47//

प्रथमा स्यात्। हे राम।

सम्बोधन अर्थ में प्रथमा विभक्ति होती है। उदाहरण हे राम! राम से सम्बोधन अर्थ में प्रथमा विभक्ति हुई।

प्रथम पुरूष (प्रथमा विभक्ति) उदाहरणानि

एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
(बालक)बालकः	बालकौ	बालकाः(पुल्लिंगे)
(बालिका)बालिका	बालिके	बालिकाः(स्त्री0)
(यह) अयम्	इमौ	इमे (पुल्लिंगे)
(यह) इयम्	इमे	इमाः (स्त्री0)
(यह) इदम	इमे	इमानि (नपं0)
(वह) सः	तौ	ते (पु0)

मध्यम पुरूषः (प्रथमाविभक्ति)

एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
(तुम) त्वं	युवाम्	युयम

उत्तम-पुरूष (प्रथमाविभक्ति)

(मै) अहम्	आवाम्	वयम्

वाक्य निर्माण प्रकारः-

बालकः विद्यालयं गच्छति।

(बालक विद्यालय जाता है)

बालकौ विद्यालयं गच्छतः।

(दो बालक विद्यालय जाते है)

बालकाः विद्यालयं गच्छन्ति।

(बालक विद्यालय जाते हैं)

मध्यम-पुरूष

त्वं कस्य चित्रं पश्यसि

(तुम किसका चित्र देख रहे हो)

युवां कयोः चित्रे पश्यथ:

(तुम दोनों किसके चित्र को देख रहे हो)

यूयं केषां चित्राणि पश्यथ

(तुम लोग किसके चित्रों को देख रहे हो)

उत्तम पुरूषः

अहं तत् चित्रं पश्यामि (मैं उस चित्र को देखता हूँ)

आवां ते चित्रे पश्याव: (हम दोनो उन दोनों चित्रों को देख रहे हैं)

वयं तानि चित्राणि पश्यामः (हम लोग उन चित्रों को देख रहे हैं)

अभ्यास प्रश्न 1.

(1.) बहुविकल्पात्मक प्रश्नाः। (बहुविकल्पक प्रश्न)

1.युष्यद् शब्दबहुवचनस्य रूपमस्ति-

(अ) वयम् (ब) यूयम्

(स) त्वम् (द) आवाम्

2.अस्मद् शब्दस्य एकवचनस्य रूपमस्ति-

(अ) तव (ब) अस्माकम्

(स) आवाम् (द) अहम्

(3) संस्कृते अनुवादो विधेयः

1. माता भोजन पकाती है।

2. गीता पत्र लिखती है।

3. वे लड़के दौड़ रहे है।

4. मैं जा रहा हूँ।

5. तुम दोनों जाते हो।

12.3.2 द्वितीया विभक्ति(कर्मकारक)

कर्मसंज्ञा विधायकं सूत्रम्

कर्तुरीप्सिततमं कर्म 1/4/49

कर्तुः क्रियया आप्तुमिष्टतमं कारकं कर्म संज्ञं स्यात्।

कर्ता को जो अपनी क्रिया के द्वारा अत्यन्त इष्ट अर्थात् जिसको विशेष रूप से अपना चाहता है, उस कारक की कर्म संज्ञा होती है। एकवाक्य में कर्ता, कर्म और क्रिया ये तीन या तीन से अधिक भी होते है। इसमें कर्म कौन सा है ? यह जानने के लिए इस सूत्र की आवश्यकता होती है। जैसे रामः ग्रामं गच्छति इस वाक्य में गच्छति क्रिया है और राम यह कर्ता है को गच्छन् क्रिया द्वारा अत्यन्त इष्ट है ग्राम। अतः ग्राम की कर्मसंज्ञा होती है। इसी प्रकार 'देवदत्तः पत्रं लिखति' में कर्ता देवदत्त को लेखन क्रिया द्वारा अत्यन्त अभीष्ट है पत्र। अतः पत्र की कर्म संज्ञा हुई। कर्मसंज्ञा का फल कर्मणि द्वितीया से द्वितीया विभक्ति होती है।

कर्मणि द्वितीया 2/3/2 ।।

अनुक्ते कर्मणि द्वितीया स्यात्

अनुक्त कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है। **हरिं भजति।** इस उदाहरण में हरि अनुक्त कर्म है, उसमे द्वितीया विभक्ति होती है। क्योकि 'भजति' क्रिया के द्वारा साक्षात् सम्बन्ध भक्तादि कारक का है कर्म का नहीं। इसी प्रकार सुरेशः पत्रं लिखिति, रमेशः गृहं गच्छति, वटुर्वेदं पठति, इत्यादि उदाहरण जानना चाहिए। अभिहिते तु कर्मणि अर्थात् क्रिया से साक्षात् सम्बन्ध रखने वाले कर्म में (कर्मवाच्य) प्रतिपदिकार्थमात्र में प्रथमा विभक्ति होती है जैसे **हरिः सेव्यते** इस उदाहरण में सेव् धातु से कर्म अर्थ में प्रत्यय हुआ। अतः उक्त होने से कर्म में प्रथमा विभक्ति हुआ। इसी प्रकार लक्ष्म्या सेवितो हरिः इत्यादि समझना चाहिए।

अकथितं च 1/4/51।।

अपादानादि विशेषैरविवक्षितं कारकं कर्म संज्ञं स्यात् ।

दुह्-याच्-पच्-दण्ड्-रूधि-प्रच्छि-चि-ब्रू-शासु-जि-मथ-मुषाम्

कर्मयुक् स्यादकथितं तथा स्यान्नी-ह्-कृष् वहाम्।

अपादान आदि कारकों के द्वारा अविवक्षित कारक की कर्म संज्ञा होती है ।

इस सूत्र के द्वारा जितने भी अकथित (अविवक्षित) जो कारक है उन सभी की कर्म संज्ञा प्राप्त है किन्तु इस श्लोक के द्वारा दुह्, याच् पच्, दण्ड रूध, प्रच्छ चि, बू, शास, जि, मथ् मुष, नी, ह कृष्, वह्, इन सोलह धातुओं के योग में ही जो अकथित अर्थात् वक्ता के द्वारा अपादानादि विभक्ति के रूप में अविवक्षित जो कारक उनकी कर्म संज्ञा होती है इन सोलह धातुओं को द्विकर्मक कहते हे क्योकि इसमें दो कर्म है। इन सभी सोलह धातुओं को उदाहरण दिया जा रहा है-

रामः गां दोग्धि पयः। (राम गाय से दुध को दुहता है) इस वाक्य में कर्ता राम है क्रिया पद दोग्धि (दुह, धातु लट् प्र0एकचन) दोहन क्रिया द्वारा कर्ता को अत्यन्त अभिष्ट जो कारक है वह पय दूध है । अत:पयस् को अत्यन्त इप्सित कर्म मानकर कर्म संज्ञा होकर द्वितीया विभक्ति पहले हो चुकी है । यहा वक्ता गो को अपादान के रूप में होने के कारण गो यह अविवक्षित हुआ । उसकी अकथितं च सूत्र से कर्म संज्ञा होकर कर्मणि द्वितीया से द्वितीया विभक्ति हुई ।

बलिं याचते वसुधाम् । (भगवान् वामन बलि से पृथ्वि माँगते हैं) कर्ता वामन हुआ, क्रिया याचते इष्टतम् कर्म वसुधा और अकथित कर्म बलि है यहाँ पर पंचमी विभक्ति प्राप्त है । किन्तु कर्ता के दारा अपादान के रूप में न विवक्षा होने के कारण बलि की कर्म संज्ञा तथा द्वितीया विभक्ति हुई । इसी प्रकार अन्य उदाहरण समझना चाहिए जो दिया जा रहा है ।

रमेशः तण्डुलान् ओदनं पचति । (रमेश चावल से भात पकाता है ।)
गर्गान् शतं दण्डयति । (गर्गों से सौ रूपये जुर्माना लगाता है)
कृष्णः ब्रजमवरूणद्वि गाम् (भगवान् श्री कृष्ण गौ को रोकते है)
रमेशः माणवकं पन्थानं पृच्छति । (रमेश बालक से मार्ग पुछता है)
गीता वृक्षमवचिनोति फलानि (गीता वृक्ष से फल को तोड़ती हैं)
पिता माणवकं धर्म ब्रुते शास्ति वा । (पिता बालक को धर्म का उपदेश देता हैं)
उमेशः शतं जयति देवस्तम् । (उमेश देवदत्त से सौ रूपये जीतता है)
देवसुरा: सुधां क्षीरनिधिं मथ्नन्ति ।(देव दान व समुद्र से अमृत मथते हैं)
यज्ञदत्त: देवस्तं शतं मुष्णाति । (यज्ञस्त देवस्त से सै रूपये चुराता है) रमेशः ग्रामम् अजां नयति हरति कर्षति वहति वा । (रमेश ग्राम से बकरी को ले जाता हे, खिचता है, ढ़ोता है) (और विशेष सूत्रों के ज्ञान के लिए सिद्धान्त कौमुदी कारक प्रकरण को देखें)

द्वितीया विभाक्ति का उदाहरण-

एकवचन	द्विवचन	बहुवचन	मूलशब्दः
बालकम्	बालकौ	बालकान्	(पु0) बालक
इमम्	इमौ	इमान्	(पु0) इदम्
तम्	तौ	तान्	(पु0) तत
कम्	कौ	कान्	पु0 किम्
इमाम्	इमे	इमाः	स्त्री इदम्
ताम्	ते	ताः	स्त्री तत्
काम	के	का:	स्त्री किम्
त्वाम्	युवाम्	युष्मान्	युष्मद्
माम्	आवाम्	अस्मान्	अस्मद्

गुरूः कं छात्रं पृच्छति। गुरू किस छात्र से पुछता है।

अयं बालकः चित्रं पश्यति। यह बालक चित्र को देखता है।

सा तं ग्रामं गच्छति। वह उस ग्राम में जाती है।

सुरेश तं पुस्तकं पश्यति। सुरेश उस पुस्तक को देखता है।

त्वं सुरेशं प्रश्न पृच्छ। तुम सुरेश से प्रश्न पूछो।

अहं का विद्या पठानि। मै किस विद्या को पढ़ूँ।

पिता तान् छात्रान् ताड़यति। पिता उन छात्रों को मारते हैं।

अभ्यास प्रश्न 2.

(1) बहुविकल्पात्मकाः प्रश्नाः

1-बालक शब्दस्य द्विवचनस्य रूपमस्ति-

अ. बालकम् ब. बालकेन स. बालकैः द. बालकौ

2-इदं शब्दस्य द्वितीया बहुवचनस्य रूपमस्ति-

अ. इमम् ब. अनेन स. इमौ द. इमान्

(3) संस्कृत में अनुवाद बनाइये-

1. राम गाय से दूध दूहता है।

2. सुरेश राम से प्रश्न पूछता है।

3. गणेश चावल से भात पकाता है।

4. राम गर्गों से सौ रूपये दण्ड लगाता है।

5. सुरेश गॉव से बकरी को ले जाता है।

12.3.3 तृतीया विभक्ति

(करण कारकम्)

स्वतन्त्रः कर्ता 1/4/54 ।।

क्रियायां स्वातन्त्र्येण विवक्षितोऽर्थः कर्ता स्यात्।

क्रिया में स्वतन्त्र रूप विवक्षित अर्थ कर्तृ संज्ञक होता है, अनुवाद बनाने के लिए कर्ता, कर्म, क्रिया इन तीनों की आवश्यकता होती है ये पहले ,द्वितिया विभक्ति में कहाँ जा चुका है। कर्ता किसे कहते है इस सूत्र में विशेषरूप से बताया जायेगा।

कर्ता, कर्म, क्रिया इन तीनों में जो प्रधान है या क्रिया की सिद्धि जिससे होती है वह कर्ता कहा जाता है। कर्ता ही क्रिया का जनक होता है। कर्ता के अनुसार क्रिया का प्रयोग किया जाता है **जैसे-** रामः पठति (राम पढ़ता है) इस वाक्य में पठति क्रिया है राम कर्ता है। क्योंकि कर्ता के बिना क्रिया की सिद्धि नहीं हो सकती। इस लिए राम को कर्ता माना गया है।

साधकतमं करणम् 1**/4/42। 1**

क्रिया सिद्धौ प्रकृष्टोपकारकं करणसज्ञं स्यात।

क्रिया की सिद्धि में अत्यन्त सहायक कारक की करण संज्ञा होती है। जैसे रमेश साईकिल से घर जाता है।(रमेशः द्विचक्रिकया गृहं गच्छति) इस वाक्य में रमेश के घर जाने का सहायक द्विचक्रिका है। अतः द्विचक्रिका की करण संज्ञा हुई। और जहाँ-जहाँ करण संज्ञा होगी वहाँ-वहाँ कर्तृकरणयोस्तृतीया से तृतीया विभक्ति होती है।

कर्तृकरणयोस्तृतीया 2/3/18।

अनभिहिते कर्तरि करणे च तृतीया स्यात-। रामेण बाणेन हतो बाली।

अनुक्त कर्ता और अनुक्त करण में तृतीया विभक्ति होती है। उदाहरण-रामेण बाणेन हतो बाली (राम ने बाण से बाली को मारा) यहा रामेण इस अनुक्त कर्ता में तथा बाण इस अनुक्त करण में तृतीया विभक्ति होती है। यहा हनन् क्रिया का साक्षात् वाच्य न तो राम कर्ता है और नही बाण करण ही अपितु साक्षात् क्रिया का बाली कर्म है। अतः उस उक्त करण में प्रथमा विभक्ति होती है। राम के द्वारा बाण रूप साधन से बाली मारा गया। यह अर्थ है। शेष सूत्रों का वर्णन सिद्धान्त कौमुदी में देखें।

तृतीया विभक्ति का उदाहरण

एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्	मूलशब्दः
बालकेन	बालकाभ्याम्	बालकैः	पु0 बालक
अनेन	आभ्याम्	एभिः	पु0 इदम्
तेन	ताभ्याम्	तैः	पु0 तद
केन	काभ्याम्	कैः	पु0 किम्
अनया	आभ्याम्	एभिः	स्त्री इदम्
तया	ताभ्याम्	ताभिः	स्त्री तत्
त्वया	युवाभ्याम्	युष्माभिः	युष्मद
मया	आवाभ्याम्	अस्माभिः	अस्मद्

बालकः केन पत्रं लिखति। बालक किससे पत्र लिखता है।

बालकः कलमेन पत्रं लिखति। बालक कलम से पत्र लिखता है।

रमेश अनेन सह पठति। रमेश इसके साथ पढ़ता है

दिनेशः तेन सह गच्छति। दिनेश उसके साथ जाता हे।

लोके पुरूषः केन एधते। लोक में पुरूष किससे बढ़ता है।

लोके पुरूषः धर्मेण एधते। लोक में पुरूष धर्म से बढ़ता है।

त्वया सह क्रीडति। तुम्हारे साथ खेलता है।

मया सह गच्छति। मेरे साथ जाता है।

अभ्यास प्रश्न 3.

(1) बहुकलात्मकाः प्रश्नाः

1. किम् शब्दस्य तृतीया बहुवचनस्य रूपमस्ति-

अ. केन ब. कैः स. कस्मै द. केभ्यः

2. तत् शब्दस्य तृतीया बहुवचनस्य रूपमस्ति-

अ. तस्मै ब. ताभ्याम् स. तैः द. तेभ्यः

3. अस्मद् शब्दस्य तृतीया बहुवचनस्य रूपमस्ति-

अ. मया ब. महयम् स. आवाभ्याम् द. अस्माभिः

(3) संस्कृत भाषा में अनुवाद बनाइये-

1. रमेश पुस्तक से पढ़ता है।

2. वे दोनों साइकिल से घर जाते है।

3. मैं कलम से लिखता हूँ।

4. सुरेश वाहन से घर जाता है।

5. तुम किससे लिख रहे हो ?

12.3.4 चतुर्थी विभक्तिः (सम्प्रदान कारक)

कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम् 1/4/32।।

दानस्य कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानसंज्ञः स्यात्

दान रूपी कर्म के द्वारा कर्ता को जो अभिष्ट हो उसकी सम्प्रदान संज्ञा होती है

सम्प्रदान का अर्थ है सम्यक् प्रदानं सम्प्रदानम् जिसको अच्छी तरह से दे दिया गया हो, और देने बाद वापस न लिया जाय, उसी का नाम दान या सम्प्रदान है। जैसे विप्राय गां ददाति (विप्र को गाय देता है) यहा पर विप्र को गाय देता है कर्ता यजमान क्रिया ददाति, दान क्रिया के द्वारा अभिष्ट कारक गो है उसकी कर्म संज्ञा हुई। सम्प्रदान संज्ञा जहा पर होती है वहाँ पर चतुर्थी विभक्ति होती है चतुर्थी सम्प्रदाने सूत्र से। रजकस्य वस्त्रं ददाति यहाँ पर धोबी को कपड़ा देता है क्योंकि धोबी को कपड़ा वापस लेने के लिए देता है न कि सर्वदा के लिए। इसलिए सम्बन्ध सामान्य में षष्ठी विभक्ति हुई, चतुर्थी विभक्ति नहीं हुई।

चतुर्थी सम्प्रदाने 2/3/13

सम्प्रदाने चतुर्थी स्यात्

सम्प्रदान अर्थ में चतुर्थी विभक्ति होती है। विप्राय गां ददाति यहॉ पर विप्र की सम्प्रदान संज्ञा होने के बाद चतुर्थी सम्प्रदाने सूत्र से चतुर्थी विभक्ति हुई है ।

नमस्स्वस्ति स्वाहास्वधालंवषड्योगाच्च 2/3/16 ।।

एभियोंगे चतुर्थी स्यात् । हरये नमः। प्रजाभ्यः स्वस्ति। अग्नये स्वाहा। पितृभ्यः स्वधा। अलमिति पर्याप्त्यर्थ ग्रहणम्, दैत्येभ्यो हरिरलं प्रभुः समर्थः शक्त इत्यादि ।।

नमः, स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, अलंवषट् के योग में चतुर्थी विभक्ति होती है। इस सूत्र से सम्प्रदान संज्ञा कारक संज्ञा की अपेक्षा नहीं होती है। नमस आदि जो ये छः शब्द जिस शब्द के साथ सम्बन्ध रखते है उनमें चतुर्थी विभक्ति होती है। उदाहरण हरये नमः। हरि को नमस्कार है। यहाँ

पर हरि-शब्द नमः से सम्बन्ध या युक्त हैं क्योंकि हरि को ही नामस्कार किया गया हैं इस लिए नमस्स्वस्ति- इस सूत्र से हरि से हरि में चतुर्थी विभक्ति हुई।

प्रजाभ्यः स्वस्ति। प्रजाओं का कल्याण हो। यहाँ पर स्वस्ति शब्द प्रजा शब्द से युक्त है इस लिए नमस्स्वस्ति -इस सूत्र से चतुर्थी विभक्ति होती है।

पितृभ्यः स्वधा। पितरों को अन्नजल। यहा पर स्वधा-शब्द पितृ शब्द से युक्त है क्योंकि तर्पण इत्यादि पितरों के लिए दिया जाता है। इस लिए नमस्स्वस्ति-इस सूत्र से चतुर्थी विभक्ति होती है। अग्नये स्वाहा। यहा पर स्वाहा शब्द अग्नि शब्द से युक्त है। क्योंकि हविषान्न अग्नि शब्द का नामोच्चारण कर के ही दिया जाता है। इस लिए नमस्स्वति- इस सूत्र से चतुर्थी विभक्ति होती है। अलमिति पर्याप्त्यर्थ ग्रहणम्। इस सूत्र में अलम-शब्द का अर्थ पर्याप्त, समर्थ शक्त का अर्थ भी समर्थ पर्याप्त है, अतः इन सभी के योग में चतुर्थी विभक्ति होती है। उदाहरण दैत्येभ्यो हरिरलम्, दैत्येभ्यो हरिः प्रभु: दैत्येभ्यो हरिः समर्थ दैत्येभ्यो हरिः शक्तः इत्यादि वाक्यों में इन शब्दों का योग होने पर चतुर्थी विभक्ति हुई। दैत्यों को जीतने के लिए हरि समर्थ है।

चतुर्थी विभक्ति का उदाहरण-

एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्	मूलशब्दः
बालकाय	बालकाभ्याम्	बालकेभ्याः	पु0 बालक
अस्मै	आभ्याम्	एभ्यः	पु0 इदम्
तस्मै	ताभ्याम्	तेभ्यः	पु0 तत्
अस्यै	आभ्याम्	आभ्यः	स्त्री इदम्
तस्यै	ताभ्याम्	ताभ्यः	स्त्री इदम्
मह्यम्	आवाभ्याम्	अस्मभ्यम्	अस्मद्
तुभ्यम्	युवाभ्याम्	युष्यभ्यम्	युष्मद्

1. जननी अस्मै बालकाय दुग्धं यच्छति।
(माता इस बालक के लिए दुध देती है।)
2. पिता कन्यायै वस्त्रं यच्छति।
(पिता कन्या के लिए वस्त्र देता है)
3. रमेशः तस्यै कन्यायै धनं ददाति। (रमेश उस कन्या के लिए धन देता है)
4. शिक्षकः छात्राय ज्ञानं ददाति। (शिक्षक छात्रा के लिए ज्ञान देता है।)
5. शिक्षिका तस्यै छात्रायै मोदकं ददाति। (शिक्षिका उस छात्रा को मोदक देती है)

6. मह्यं यजमानः वस्त्रं ददाति। (मुझको यजमान वस्त्र देता है।)

अभ्यास प्रश्न 4.

(1) बहुविकल्पात्मकाः प्रश्नाः

1. इदं शब्दस्य चतुर्थ्येकवचने रूपमस्ति-(अ)

अ. अस्मै ब. अनया स. अस्मिन् द. अस्य

2. अस्मद् शब्दस्य चतुर्थ्येकवचने रूपमस्ति-(स)

अ. मम ब. आवाम् स. मह्यम् द. अहम्

3. तद् शब्दस्य चतुर्थी बहुवचने रूपमस्ति-(द)

अ. तस्य ब. तस्मै स. तेषाम् द. तेभ्यः

(3) संस्कृत भाषा में अनुवाद बनाइये-

1. ब्राह्मण को गाय देता देता है।

2. यजमान गुरू को वस्त्र देता है।

3. मैं बालको के लिए पुस्तक देता हूँ।

4. उस छात्र को द्रव्य दो।

5. उन लोगों के लिए वस्त्र है।

12.3.5 पंचमी विभक्तिः

ध्रुवमपायेमपादानम्-

अपायो विश्लेषस्तस्मिन् साध्ये ध्रुवमवधिभूतं कारकम् अपादान संज्ञं स्यात्।

अपाय (अलगाव) होने में जो निश्चित सीमा है उसकी अपादान संज्ञा होती है। अलगाव या वियोग अर्थ जहा पर होता है उसमें पंचमी विभक्ति होती है। जैसे धावतो अश्वात् पतति। दौड़ते हुए घोड़े से गिरता है। यहा पर अलगाव या वियोग अश्व से होता है इस लिए अश्व की अपादान संज्ञा हुई और अपादाने पंचमी" इस सूत्र से पंचमी विभक्ति होती है। उदाहरण-

एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्	शब्दः
बालकात्	बालकाभ्याम्	बालकेभ्यः	पु0 बालक
अस्मात्	आभ्याम्	एभ्यः	पु0 इदम्
कस्मात्	काभ्याम्	केभ्यः	पु0 किम्

तस्मात्	ताभ्याम्	तेभ्यः	पु0 तत्
अस्याः	आभ्याम्	आभ्यः	स्त्री इदम्
कस्याः	काभ्याम्	काभ्यः	स्त्री किम्
तस्याः	ताभ्याम्	ताभ्यः	स्त्री तत्
मत्	आवाभ्याम्	अस्मत्	अस्मद्
त्वत्	युवाभ्याम्	युष्मत्	युष्मद्

पंचमी विभक्ति का उदाहरण-

इदं फलं वृक्षात् पतति। यह फल वृक्ष से गिरता है।

कस्मात् वृक्षात् पत्रं पतति। किस वृक्ष से पत्ता गिरता है।

अस्मात् वृक्षात् पत्रं पतति। इस वृक्ष से पत्ता गिरता है।

कस्या: लतायाः पुष्पं पतति? किस लता से पुष्प गिरता है।

तस्मात् गिरे: बालकः पतति? उस पर्वत से बालक गिरता है।

अहं गृहाद् आगच्छामि। मैं घर से आता हूँ।

त्वं गृहाद् कुत्र गच्छसि? तुम घर से कहाँ जाते हो।

अभ्यास प्रश्न 5.

(1) बहुविकल्पात्मक प्रश्नाः

1. बालक शब्दस्य पंचमी एकवचनस्य रूपमस्ति(अ)

अ. बालकात्	ब. बालकस्य	स. बालकेन	द. बालकाय

2. इदं शब्दस्य पंचमी एकवचनस्य रूपमस्ति(अ)

अ. अस्याः	ब. अनया	स. अस्यै	द. अस्याम्

(3) संस्कृत भाषा में अनुवाद बनाइये-

2. बानर वृक्ष से गिरता है।

3. मैं घर से जा रहा हूँ।

4. वृक्ष से पत्ता गिरता हैं

5. रमेश पर्वत से गिरता है।

12.3.6 षष्ठी विभक्ति (सम्बन्धः)

षष्ठी शेषे 2/3/50।।

कारक प्रातिपदिकार्थव्यतिरिक्तः स्वस्वामिभावादिसम्बन्धः शेषः तत्र षष्ठीस्यात्। राज्ञः पुरूषः।।

कारक और प्रातिपदिकार्थ से भिन्न स्वस्वामिभावादि सम्बन्ध को शेष कहते है। उस शेष अर्थ में षष्ठी विभक्ति होती है।

शेष अर्थात् वचा हुआ, प्रातिपदिकार्थ, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण संज्ञा जहाँ नहीं हो वह शेष है। जैसे स्वस्वामिभाव सम्बन्ध जहाँ पर हो वहाँ पर षष्ठी विभाक्ति होती है।

राज्ञः पुरूषः । राजा का पुरूष । यहाँ पर राजा स्वामी हैं और पुरूष स्व है। स्वस्वामिभाव सम्बन्ध मानकर षष्ठी शेषे से राजन् शब्द से षष्ठी विभक्ति हुई।

षष्ठी विभक्ति का उदाहरण-

एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्	मूलशब्द
बालकस्य	बालकयोः	बालकानाम्	पु0 बालक
अस्य	अनयोः	एषाम्	पु0 इदम्
कस्य	कयोः	केषाम्	पु0 किम्
तस्य	तयोः	तेषाम्	पु0 तत्
अस्याः	अनयोः	आसाम्	स्त्री इदम्
कस्याः	कयोः	कासाम्	स्त्री किम्
तस्याः	तयोः	तासाम्	स्त्री तत्
तव	युवयोः	युष्माकम्	
मम	आवयोः	अस्माकम्	

अयं विद्यालयः कस्य अस्ति? यह विद्यालय किसका है?

अयं मम विद्यालयः अस्ति? यह मेरा विद्यालय हैं

तस्य गृहं कुत्र अस्ति? उसका घर कहा है

इदं पुष्पं कस्याः अस्ति? यह फूल किसकी है।

अयम् अस्याः पुत्रः अस्ति। यह इसका पुत्र है।

अभ्यास प्रश्न 6 .

(1) बहुविकल्पात्मकाः प्रश्नाः

1. बालकशब्दस्य षष्ठी द्विवचनस्य रूपमस्ति

अ. बालकाभ्याम् ब. बालकानाम्

स. बालकयोः द. बालकेभ्यः

2. इदं शब्स्य स्त्रीलिंस्यैकवचनस्य रूपमस्ति

अ. अस्याः ब. अनया

स. अस्मै द. अस्मिन्

(3) संस्कृत भाषा में अनुवाद बनायें-

1. यह किसका घर है।

2. यह राम का घर है।

3. राम के दो पुत्र थे।

4. यह पुस्तक रमेश की है।

5. यह नदी का जल है।

12.3.7 सप्तमी विभक्तिः (अधिकरण कारकम्)

आधारो अधिकरणम् 1/4/45।।

कर्तृकर्मद्वारा तन्निष्ठक्रियाया आधारः कारकमधिकरण संज्ञं स्यात्।

कर्ता और कर्म के द्वारा उनमें रहने वाली क्रिया का आधार जो कारक उसकी अधिकरण संज्ञा होती है। क्रिया साक्षात् किसी आधार में नहीं रहती किन्तु कर्ता या कर्म के द्वारा रहती है जैसे कटे आस्ते देवस्तः देवदत्त चटाई पर बैठा है यहाँ पर आस्ते में आसन (रहना) क्रिया, देवदत्त कर्ता के द्वारा कट में है इस लिए कट की अधिकरण संज्ञा हुई। अधिकरण संज्ञा होने के बाद "सप्तम्यधिकरणे च" से अधिकरण जो कर्ता है उसमें सप्तमी विभक्ति होती है।

सप्तमी विभक्ति का उदाहरण-

एकवचन	द्विवचन	बहुवचन	मूलशब्द
बलके	बालकयोः	बालकेषु	पु0 बालकः
अस्मिन	अनयोः	एषु	पु0 इदम्

तस्मिन	तयोः	तेषु	पु0 तत्
कस्मिन्	कयोः	कषुः	पु0 किम्
अस्याम्	अनयोः	आसु	स्त्री इदम्
तस्याम्	तयोः	तासु	स्त्री तत्
कस्याम्	कयोः	कासु	स्त्री किम्
मयि	आवयोः	अस्मासु	अस्मद्
त्वयि	युवयोः	युष्यासु	युस्मद्

अयं बालकः कुत्र तिष्ठति। यह बालक कहाँ बैठता है।

अयं बालकः गृहे तिष्ठति। यह बालक घर में बैठता है।

कस्याः ग्रीवायाम् आभूषणमस्ति। किसके गले में आभूषण है।

साबाला कस्मिन् स्थाने तिष्ठति। वह बालिका किस स्थान में बैठती है।

सा बाला द्वारे तिष्ठति। वह बालिका द्वार पर बैठती है।

त्वं कस्याम् उपविशति। तुम कहाँ पर बैठे हो ?

तस्यां वाटिकायां बालकः अस्ति। उस वाटिका में बालक है।

अस्यां वाटिकायां बालिका अस्ति। इस वाटिका में बालिका है।

अभ्यास प्रश्न 7 .

(1) बहुविकल्पात्मक प्रश्नाः

1. बालकशब्दस्य सप्तम्येकवचनस्य रूपमस्ति-

अ. बालकस्य ब. बालके

स. बालाकानाम् द. बालकेषु

2. इदं शब्दस्य सप्तमीबहुवचनस्य स्त्रीलिंगस्य रूपमस्ति-

अ. अनयोः ब. आसु

स; तस्या द; अस्य

3. युस्मद् शब्दस्य सप्तम्येक वचनस्य रूपमस्ति-

अ. तुभ्यम् ब. त्वया

स. अस्य द. त्वयि

(3) संस्कृत भाषा में अनुवाद बनाइये-

1. वृक्ष पर कोयल बैठी है।
2. उस स्त्री के गले में आभूषण है।
3. हम लोग विद्यालय में पढ़ते है।
4. मै उस घर में बैठा हूँ।
5. उस पुस्तकक में चित्र है।

12.4 वाच्य एवं वाच्य परिवर्तन

संस्कृत व्याकरण शास्त्र में वाच्य के तीन भेद माने गये है ।

1.कर्तृवाच्य 2. कर्मवाच्य 3. भाववाच्य । सकर्मकधातुओं के रूप दो वाच्यो में होते है- कर्तृवाच्य में तथा कर्मवाच्य में और अकर्मक धातुओं के रूप दो वाच्यों में होते है। कर्तृवाच्य और भाववाच्य में ।

1. कर्तृवाच्य- कर्तृवाच्य में कर्ता प्रधान होता हैं और क्रिया कर्ता के अनुसार चलती है। यदि कर्ता एकवचन हैं तो क्रिया भी एकवचन होती है, और कर्ता प्रथम पुरूष का है तो क्रिया भी प्रथम पुरूष की होती है- जैसे रामः ग्रामं गच्छति यहाँ पर कर्ता राम है, क्रिया गच्छति है और कर्म ग्राम है कर्ता एकवचन तथा प्रथम पुरूष है तो क्रिया भी एकवचन तथा प्रथम पुरूष की है । इसके अनुसार अन्य उदाहरण देखें-

वह कहता है । सः वदति
तुम दोनो बोलते है । युवाम् वदथः।
तुम लोग कहते हो । यूयं, वदथ ।
तुम लोग हसते हो । यूयं हसथ ।
तुम ईश्वर को नमस्कार करते हो । त्वं ईश्वरं नमसि ।
तुम दोनों भोजन पकाते हो । युवां भोजनं पचथः।
तुम लोग पुस्तकों को पढ़ते हो। यूयं पुस्कानि पठथ ।
मै बोलता हूँ- अहं वदामि ।
हम दोनों बोलते है । आवां वदावः।
हम लोग पढ़ते है। वयं पठामः।
हम लोग पत्र लिखते हैं। वयं पत्रं लिखावः।

इसी प्रकार कर्तृवाच्य का अन्य उदाहरण भी समझना चाहिए ।

कर्मवाच्य में कर्म मुख्य होता है और कर्म के अनुसार ही क्रिया का पुरूष वचन लिंग का प्रयोग किया जाता है । कर्मवाच्य में कर्ता में तृतीया विभक्ति, कर्म में प्रथमा विभक्ति और क्रिया कर्म के

अनुसार होती है।

कर्मवाच्य और भाववाच्य में जो सार्वधातुकलकार (लट्लकार, लोट्लकार, लङ् कार और विधिलिङ्) होते है। उन लकारों में धातु और प्रत्यय के बीच में य लगा दिया जाता है और धातु का रूप सदा आत्मने पद में ही चलता है। आर्धधातुक लकारों में 'य' नहीं लगाया जाता हैं वहाँ पर स्यते या इष्यते लगाया जाता है। कर्मवाच्य में या भाववाच्य में रूप कैसे बनाये जाते है। वह संक्षेप में बता रहे है- भू धातु से लट्लकार लाते है भू लट् ऐसा बनता है अब यहाँ पर शंका होती है कि लट् के स्थान पर आत्मने पदि प्रत्यय लावे या परस्मैपदि प्रत्यय। इस शंका को निवारण करने के लिए एक सूत्र है भावकर्मणोः इस सूत्र से भाव और कर्म में जो प्रत्यय होते है वह हमेशा आत्मने पदि प्रत्यय होते है तो यहाँ पर प्रथम पुरूष एकवचन की विवक्षा में त प्रत्यय होगा। भू त ऐसी स्थिति हुई। अव यहाँ पर तिङशित् सार्वधातुकं से "त" की सार्वधातुक संज्ञा हुई और सार्वधातुक के यक् से यक् प्रत्यय होता है तो स्थिति भू+यक्+त बनती है। ककार की हलन्त्यम से इत्संज्ञा तस्य लोप से लोप होकर य मात्र वचता है। भू+य+त बनता है। अब यहाँ पर सार्वधातु कार्धधातुकयों इस सूत्र से भू को गुण प्राप्त था किनतु यक मे कित्व होने के कारण क्ङितिच सूत्र गुण का निषेध होता है और टितआत्मने पदानां टेरे सूत्र से त का जो अ है उस अ को एत्व करने पर 'ते' बनता है मिलाने पर भूयते प्रयोग बनता है। भाववाच्य में भूधातु का एक ही प्रयोग बनता है अन्य पुरूष वचन में प्रयोग नहीं बनते है। क्योंकि इसमें कर्म नहीं होता है। उदाहरण त्वया यया अन्यैश्च भूयते (तुझसे मुझसे या अन्यों से हुआ जाता है) तेन भूयते (उससे होता है।) तैः भूयते (उन लोगो के द्वारा हुआ जाता है।) इसी प्रकार अन्य उदाहरण भी समझने चाहिए

कर्मवाच्य के उदाहरण-

मया पुस्तकं पठ्यते। मेरे द्वारा पुस्तक पढ़ी जाती है।
मया, त्वया,युस्मभि: गृहंगम्यते। हमारे, तुम्हारे या तुम लोगो के द्वारा घर जाया जाता है।
मया फलं खाद्यते। मेरे द्वारा फल खाया जाता है।
मया फलानि खाद्यन्ते। मेरे द्वारा फलों को खाया जाता है।
अस्माभिः पुस्तकं लिख्यते। मेरे द्वारा पुस्तक लिखा जाता है।
मया पुस्तकानि लिख्यन्ते। मरे द्वारा पुस्तके लिखे जाते हैं।
मया चलचित्रं दृश्यते। मेरे द्वारा चलचित्रं देखा जाता है
बालकेन बालिका दृश्यते। बालक के द्वारा बालिका देखी जाती है।
गन्त्रा ग्रामः गम्यते। जानेवाले के द्वारा गावं जाया जाता हैं।
अध्येतृभिः पाठाः पाठ्यन्ते। अध्येताओं के द्वारा पाठ पढे जाते हैं।
मातृभि भोजन पच्यते। माताओं के द्वारा भोजन पकाया जाता है।
पुस्तकस्य कर्ता लेखः लिख्यते। पुस्तक रचने वाले के द्वारा लेख लिखे जाता है।
पित्रा ग्रामः गम्यते। पिता के द्वारा गांव जाया जाता है।
द्रष्टृभि मयुराः दृश्यन्ते। देखने वाले क द्वारा मयुर देखे जाते है।
राजपुरूषभिः दृर्जनाः नियन्ताम्। राजपुरूषों के द्वारा दुर्जनों को लाया जाय।

क्तवतवतुनिष्ठा निष्ठा प्रत्यय में भी कर्मवाच्य होता है। भूत काल में क्त (त) क्तवतु (तवत्) कृत प्रत्यय होते हैं। दोनों का क्रमशः त,तवत् शेष रहता है। त प्रत्यय कर्म वाच्य तथा भाववाच्य में होता है और तवत् प्रत्यय कर्तृवाच्य में होता है।

क्त प्रत्यय जब सकर्मक धातु से कर्मवाच्य में होगा तो कर्म में प्रथमा कर्ता में तृतीया और कर्म के अनुसार क्रिया का विभक्ति, लिंग, वचन का प्रयोग किया जाता है। कर्ता के अनुसार नहीं।

अकर्मक धातु से क्त (त) प्रत्यय होगा तो कर्ता में तृतीया विभक्ति होगी और नपुंसक लिग एकवचन ही होगा। त प्रत्ययान्त क्रिया शब्द कर्म के अनुसार पुलिंग होगा तो उसके रूप राम के समान चलेंगे, स्त्रीलिंग होगा तो रमा के समान चलेंगे, स्त्रीलिंग होगा तो रमा के समान नपुंसकलिंग ज्ञान के समान होगा। जैसे-पुंलिंग में मया ग्रन्थः पठितः। (मेरे द्वारा ग्रन्थ पढ़ा जाता है।) मया ग्रन्थों पठितौ। (हमारे द्वारा दो ग्रन्थ पढ़े जाते है)।मया ग्रन्थाः पठिताः। हमारे द्वारा ग्रन्थ पढे जाते है।

स्त्रीलिंग में त्वया बालिका दृष्टा। (तम्हारे द्वारा बालिका देखी गयी।) त्वया बालिकाः दृष्टाः (तुम्हारे द्वारा बालिकायें देखी गयीं।)

नपुंसकलिंग में त्वया फलं खादितम्। (तुम्हारे द्वारा फल खाये गये) युष्माभिः फलानि खादितानि (तुम लोगों के द्वारा फले खाये गये।)

12.5 सारांश

अजन्त पुंल्लिंग आदि छः प्रकारणों में सु आदि इक्कीस प्रत्ययों का विधान किया गया है। इन सात (सु,औ,जस् इति प्रथमा। अम् औट्, शस् इति द्वितीया। टा, भ्याम् भिस् इति तृतीया। ङे, भ्याम् भ्यस् इति चतुर्थी। ङसि, भ्याम् भ्यस् इति पंचमी। ङस्, ओस् आम इति षष्ठी। ङि ओस, सुप इति सप्तमी प्रत्ययों को सात विभक्तियों में विभाजित किया गया है। कौन सी विभक्ति किस अर्थ में होती है । यह बात इस कारक प्रकरण में बतायी जायेगी । अतः इस प्रकरण को विभक्त्यर्थ प्रकरण कहते हैं। कारक शब्द का एक अर्थ कर्ता भी ह। किन्तु यहाँ पर कारक शब्द पारिभाषिक है । करोति क्रियां निवर्तयतीति कारकम् अथवा क्रियान्वयितवम कारकम् अथवा साक्षात् क्रिया जनकं कारकम् जो क्रिया का निमित्त बने अर्थात् जो क्रिया का निष्पादन करे, जो क्रिया के साथ अन्वय अर्थात् सीधे सम्बन्ध रखे अथवा जो क्रिया का जनक है, उसे कारक कहते हैं। ये कारक छः है-

कर्ता कर्म च करणं सम्प्रदानं तथैव च।
अपादानाधिकरणमित्याहुः कारकाणि षट्।।

अर्थात् कर्ता कारक, कर्मकारक, करण कारक, सम्प्रदान कारक, अपादान कारक और अधिकरण कारक। सम्बन्ध को कारक नहीं माना गया है। क्योंकि षष्ठी विभक्ति को छोड़कर अन्य सभी कारकों का क्रिया के साथ साक्षात् अन्वय है किन्तु सम्बन्ध का सीधे अन्वय न होकर परम्परया अन्वय होता है । जैसे रामः पठति में रामः कर्ता का पठति क्रिया के साथ साक्षात सम्बन्ध है और क्रिया एक दूसरे से आकांक्षा युक्त है, अतः सीधे सम्बन्ध रखते हैं। इस तरह

क्रिया के साथ अन्वय करने की योग्यता होने के कारण प्रथमा विभक्ति रामः यह कारक हुआ। इसी प्रकार इस कारक प्रकरण में छः कारक एवं सातों विभक्तियों का वर्णन किया गया है।

12.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1. 1.ब 2. द

संस्कृत अनुवाद - 1. माता भोजनं पचति 2. गीता पत्रं लिखति

3. ते बालका: धावन्ति 4. अहं गच्छामि 5. युवाम् गच्छथ:

अभ्यास प्रश्न 2 . 1.द 2. द

संस्कृत अनुवाद- 1. . राम: गां पय: दोग्धि। 2. सुरेश: रामं प्रश्नं पृच्छति।

3. गणेश: तण्डुलान् ओदनं पचति। 4. राम: गर्गान् शतं दण्डयति।

5. सुरेश: ग्रामम् अजां नयति।

अभ्यास प्रश्न 3 . 1.ब 2. स 3.द

संस्कृत अनुवाद-1. रमेश: पुस्तकेन पठति। 2. तौ द्विचिक्रकया गृहं गच्छत:।3.. अहं लेखन्या लिखति। 4. सुरेश: वाहनेन गृहं गच्छति। 5. त्वं केन लिखसि ?

अभ्यास प्रश्न 4 . 1.अ 2. स 3. द

संस्कृत अनुवाद-1. विप्राय गां ददाति। 2. यजमान: गुरवे वस्त्रं ददाति। 3. अहं बालकेभ्य: पुस्तकं ददाति। 4. तस्मै छात्राय द्रव्यं देहि। 5. तेभ्य: वस्त्रम् अस्ति।

अभ्यास प्रश्न 5 . 1.अ 2. अ

संस्कृत अनुवाद-1. बानर: वृक्षात् पतति। 2. अहं गृहं गच्छामि। 3. वृक्षात् पत्रं पतति।

4. रमेश: पर्वतात् पतति।

अभ्यास प्रश्न 6 . 1.स 2. स

संस्कृत अनुवाद-1. इदं कस्य गृम् अस्ति। 2. इदं रामस्य गृहम् अस्ति। 3. रामस्य दौ पुत्रौ स्त:। 4. इदं पुस्तकं रमेशस्य अस्ति। 5. इदं नद्या: जलम् अस्ति।

अभ्यास प्रश्न 7 . 1. ब 2. ब 3. द

संस्कृत अनुवाद- 1. वृक्षे कोकिला तिष्ठति 2. तस्या:स्त्रिया: ग्रीवायाम् आभूषणमस्ति 3. वयं विद्यालये पठाम: 4. अहं तस्मिन् गृहे तिष्ठामि

5. तस्मिन् पुस्तके चित्रम् अस्ति।

12.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

ग्रन्थनाम्	लेखक	टीकाकार	प्रकाशक

1.वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी	भट्टोजिदीक्षित,	गोपालदत्तपाण्डेय	चौखम्बा सुरभारती वाराणसी
2.लघुसिद्धान्तकौमुदी लाजपत नगर दिल्ली	वरदराजाचार्य ,भीमसेन शास्त्री		भैमीप्रकाशन
3.अनुवाद चन्द्रिका वाराणसी	हरेकान्तमिश्रः	हरेकान्तमिश्र	चौखम्बा अमर प्रकाशन
4.प्रौढमनोरमा	भटटोजिदीक्षित	द्वारिका प्रसाद दिवेदी, चौखम्बा सुरभारती वाराणसी	
5.अनुवादचन्द्रिका	श्री कपिलदेव द्विवेदी	कपिलदेव द्विवेदी चौखम्बा सुरभारती वारणसी	

12. 8 उपयोगी पुस्तकें

ग्रन्थनाम्	लेखक	टीकाकार	प्रकाशक
1.लघुसिद्धान्तकौमुदी	वरढ़राजाचार्य	भीमसेन शास्त्री	भैमी प्रकाशन लाजपत नगर दिल्ली
2.अनुवाद चन्द्रिका	हरेकान्तमिश्रः	हरेकान्तमिश्र	चौखम्बा प्रकाशन

12.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1.अकथितं च इस सूत्र की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिये।

2.वाच्य एवं वाच्य परिवर्तन को परिभाषित कीजिए।

इकाई 13 .लघुगद्यांशो के अनुवाद, (पंचतन्त्र के गद्यांश) संस्कृत से हिन्दी व हिन्दी से संस्कृत

इकाई की रूपरेखा

13.1 प्रस्तावना
13.2 उद्देश्य
13.3 मूर्ख पुत्रों की कथा
13.4 गौरैया पक्षी की कथा
13.5 धर्मबुद्वि और पापबुद्धि की कथा
13.6 बगुला और सर्प की कथा
13.7 सारांश
13.8 शब्दावली
13.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
13.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
13.11 उपयोगी पुस्तकें
13.12 निबन्धात्मक प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

साहित्य शास्त्र से सम्बन्धित तीसरे खण्ड की यह तेरहवीँ इकाई है। इस इकाई का विषय है - लघुगद्यांशो के अनुवाद (पंचतन्त्र के गद्यांश) संस्कृत से हिन्दी व हिन्दी से संस्कृत।

संस्कृत साहित्य में ऐतिहासिक एवं पौराणिक कथाओं की अपेक्षा विशुद्ध काल्पनिक पात्रों तथा कथानकों का चित्रण हैं। यह एक ऐसा काल्पनिक जगत् है, जिसमें घटना - वैचित्र्य और पात्र - वैचित्र्य के साथ-साथ कौतूहल, हास्य, व्यंग्य, विनोद एवं उपदेश का एकत्र समावेश है।

इन कथाओं का आभिर्भाव कब व कैसे हुआ यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। फिर भी ऋग्वेदीय मनु मत्स्य सम्वाद के आधार पर इसकी प्राचीनता का आभास मात्र प्रतीत होता है। वस्तुतः पशु पक्षियों की कथाओं का प्राचीनतम संग्रह जातक कथाओं में उपलब्ध होता है। इनका परिमार्जित रूप हमें बृहत् कथा मंजरी, कथासरितसागर, सुख सप्तशती, पंचतन्त्र आदि में प्राप्त होता हैं।

13.2 उद्देश्य

लघुगद्यांशो के अनुवाद (पंचतन्त्र के गद्यांश) संस्कृत से हिन्दी व हिन्दी से संस्कृत, के अध्ययन से सम्बद्ध इस इकाई को पढ़ने के बाद आप: -

* कथा क्या है ? इसके बारे में समझा सकेंगे।
* इन कथाओं के माध्यम से मूर्ख एवं योग्य में क्या अन्तर है ? इसके बारे में आप समझ सकेंगे।
* इन कथाओं के माध्यम से शत्रु-मित्र में भेद क्या हैं ? इसके बारे में आप समझा सकेंगे।
* इन कथाओं से आप जीवन की शिक्षाएं प्राप्त करेंगें ।
* इन कथाओं के माध्यम से अपने व पराये के भेद के बारे में बता सकेंगे।

13.3 मूर्ख पुत्रों की कथा

दाक्षिणात्ये जनपदे महिलारोप्यं नाम नगरम् । तत्र सकलार्थि कल्पद्रुमः प्रवरमुकुटमणिमरीचिमंजरी चर्चित चरणयुगलः सकलकलापाररशक्तिर्नाम राजा बभूव। तस्य त्रयः पुत्राः परमदुर्मेधसो बहुशक्तिरूग्रशक्तिरनन्तशक्तिश्चेति नामानो बभूवुः । अथ राजातान्शास्त्रविमुखानालोक्य सचिवानाहूय प्रोवाच-'भोः, ज्ञातमेतद्भिवद्धर्यन्ममैते पुत्राः शास्त्रविमुखा विवेकरहिताश्च तदेतान्पश्यतो मे महदपि राज्यं न सौख्यमावहति।

दक्षिण देश में महिलारोप्य नाम का नगर था। वहाँ समस्त याचकों के लिए कल्प वृक्ष के समान उच्चतम राजाओं की मुकुटमणियों के किरण समूह से पूजित चरणयुगल वाला और समग्र कलाओं का पारदर्शी अमर शक्ति नाम का राजा था। उसके परम मूर्ख तीन पुत्र हुए, जिनके नाम थे - बहुशक्ति, उग्रशक्ति और अनन्तशक्ति। उन पुत्रों को शास्त्र से विमुख देखकर राजा ने मन्त्रियों

को बुलाकर कहा –' यह तो आप लोगों को विदित ही है कि ये मेरे पुत्र शास्त्र ज्ञान से विमुख तथा विवेक शून्य हैं। इस लिए इन्हें देखते हुए मुझे यह विशाल राज्य भी आनन्द नहीं देता।'

अजातमृतमूर्खेभ्यो मृताजातौ सुतौ वरम्।
यतस्तौ स्वल्पदुःखाय यावज्जीवं जडो दहेत्॥ अथवा साध्विदमुच्यते -

अथवा यह किसी ने ठीक ही कहा है -

उत्पन्न ही नहीं हुए, उत्पन्न होकर मर गये एवं मूर्ख इन तीन पुत्रों में से उत्पन्न ही न हुए और उत्पन्न हो कर मर गये ये दोनों बल्कि अच्छे हैं क्योंकि वे अत्यन्त अल्प दुःख देनें वाले होते हैं, किन्तु अन्तिम मूर्ख पुत्र तो जीवन पर्यन्त सन्ताप ही देता रहता है।

वरं गर्भस्त्रावो वरमृतुषु नैवाभिगमनं
वरं जातः प्रेतो वरमपि च कन्यैव जनिता।
वरं बन्ध्या भार्या वरमपि च गर्भेषु वसति-
र्नं चाविद्वान्रुपद्रविणगुणयुंक्तोपि तनयः॥

बल्कि गर्भ का पतन हो जाना अच्छा है,ऋतु काल में स्त्री के पास न जाना अच्छा है, किसी प्रकार सन्तति के उत्पन्न होने पर उसका तत्काल ही मर जाना अच्छा है, अथवा पुत्र न होकर कन्या का ही जन्म होना अच्छा है, स्त्री का बन्ध्या होना या सन्तान का गर्भ में ही रहना अच्छा है, किन्तु रूप सम्पत्ति गुण सम्पन्न होता हुआ भी मूर्ख पुत्र अच्छा नहीं है।

किं तया क्रियते धेन्वा या न सूते न दुग्धदा।
कोऽर्थः पुत्रेण जातेन यो न विद्वान्न भक्तिमान्॥

उस गौ से क्या प्रयोजन जो न बच्चा उत्पन्न करती है और न तो दूध ही देती है ? उसी प्रकार उस पुत्र से क्या प्रयोजन जो न विद्वान् हो और न माता-पिता, गुरु एवं इष्टदेवों में प्रेम करने वाला हो।

वरमिह वा सुतमरणं मा मूर्खत्वं कुलप्रसूतस्य।
येन विबुधजनमध्ये जारज इव लज्जते मनुजः॥

अथवा इस संसार में पुत्र का मरण अच्छा है, परन्तु कुल में उत्पन्न पुत्र का मूर्ख होना उचित नहीं है। क्योंकि उस मूर्ख पुत्र से विद्वानों के मध्य में जारज पुत्र के समान मनुष्य लज्जित होता है।

गुणिगणगणनारम्भे न पतति कठिनी ससंभ्रमा यस्य।
तेनाम्बा यदि सुतिनी वद् वन्ध्या कीदृशी भवति॥

गुणी लोंगों की गणना के समय जिसके नाम पर अँगुली शीघ्रता के साथ न गीरे, यदि उस प्रकार के पुत्र से उसकी माता पुत्रवती है, तो बताओ फिर वन्ध्या किस प्रकार कि स्त्री होती है।

तदेतेषं यथा बुद्धिप्रकाशो भवति तथा कोऽप्युपायोनुष्ठीयताम्। अत्र च मद्दत्तां वृत्तिं भुघजानानां पण्डितानां पघचशति तिष्ठति। ततो ' यथा मम मनोरथाः सिद्धिं यान्ति तथाऽनुष्ठीयताम्' इति। तत्रैकः प्रोवाच ' देव, द्वादशभिर्वर्शैर्व्यकिरणं श्रूयते। ततो धर्मशास्त्राणि मन्वादीनि, अर्थ शास्त्राणि चाणक्यादीनि, कामशास्त्राणि वात्स्यायनादीनि। एवं च ततो धर्मार्थकामशास्त्राणि ज्ञायन्ते। तनः प्रतिबोधनं भवति।' अथ तन्मध्यतो सुमतिर्नाम सचिवः प्राह -'अशाश्वतोऽयं जीवितव्यिवषय-

।प्रभूतकाल- ज्ञेयानि शब्दशास्त्राणि । तत्संक्षेपमात्रं शास्त्रं किच्छ्रिदेतेषां प्रबोधनार्थ चिन्त्यतामिति। उक्तं च यतः -

अनन्तपारं किल शब्दशास्त्र स्वल्पं तथाऽऽयुबहवश्च विघ्नाः ।
सारं ततो ग्राहमपास्य फल्गु हंसैर्यथा क्षीरमिवाम्बुमध्यात् ॥

इसलिए जिस प्रकार इनकी बुद्धि का विकास हो वैसा कोई उपाय आप लोग करें। यहाँ पर मेरे द्वारा दी हुई जीविका को भोगते हुए पाँच सौ विद्वान् रहते हैं। अतएव जिस प्रकार मेरे मनोरथ सिद्ध हों वैसा उद्योग करें। उनमें से एक मन्त्री ने कहा- राजन्। बारह वर्ष में व्याकरण शास्त्र का अध्ययन होता है, तत्पश्चात् मनु आदि के धर्म शास्त्र, चाणक्यादि के अर्थ शास्त्र, वात्स्यायनादि के कामशास्त्र, तदनन्तर धर्म, अर्थ तथा काम शास्त्र पढें जते हैं। इन सबों के पढ़ने के अनन्तर ही ज्ञान होता हैं। इसके अनन्तर उनमें से सुमति नामक एक मन्त्री ने कहा - यह मानव जीवन अनित्य है और व्याकरण शास्त्र का ज्ञान अधिक समय के अनन्तर होता है। इस लिए इनके बोध के लिए किसी संक्षिप्त शास्त्र का विचार कीजिए क्योंकि कहा भी है -

शब्दशास्त्र (व्याकरण) का निश्चित कहीं पार नहीं, अवस्था थोड़ी और विघ्न अत्यधिक है। इसलिए सार (तत्त्व) को ग्रहण कर, असार का वैसे ही परित्याग कर देना चाहिए जैसे हंस जल से दूध निकाल लेते हैं और जल त्याग देते हैं।

तदत्रास्ति विष्णुशर्मा नाम ब्राह्मणः सकलशास्त्रपारंगमश्छात्रसंसदि लब्धकीर्तिः । तस्मै समर्पयतु एतान् । स ननुं द्राक्प्रबुद्धान्करिष्यति' इति । स राजा तदाकर्ण्य विष्णुशर्माणमाहूय प्रोवाच - 'भो भगवन् मदनुग्रहार्थमेतानर्थशास्त्रं प्रति द्राग्यथानन्यसदृशान्विदधासि तथा कुरू । तदाहं त्वां शासनशतेन योजयिष्यामि ।' अथ विष्णु शर्मा तं राजान्मूचे - देव, श्रूयतां मे तथ्यवचनम् । नाहं विद्याविक्रयं शासनशतेनाऽपि करोमि । पुनरेवतांस्तव पुत्रान्मासषट्केन यदि नीतिशास्त्रज्ञान्न करोमि, ततः स्वनामत्यागं करोमि । किं बहुना । श्रूयतां ममैष सिंहनादः । नाहमर्थलिप्सुर्ब्रवीमि । ममाशीतिवर्षस्य व्यावृत्तसर्वेन्द्रियार्थस्य न किंचिदर्थेन प्रयोजनम् । किन्तु त्वत्प्रार्थनासिद्ध्यर्थं सरस्वतीविनोदं करिष्यामि । तल्लिख्यतामद्यतनो दिवसः । यद्यहं षण्मासाभ्यन्तरे तव पुत्रान्नयशास्त्रं प्रत्यनन्यसदृशान्न करिष्यामि, ततो नार्हति देवो देवमार्गं संदर्शयितुम् ।'

यहाँ अपने विद्वन् मण्डलियो में समस्त शास्त्रों का पारगामी छात्रों की मण्डली में यशस्वी विष्णु शर्मा नाम का एक ब्राह्मण है। उसे इन पुत्रों को आप सौंप दें। वह आज से इनको शीघ्र ही ज्ञान वान बना देगा। राजा ने यह बात सुनकर विष्णु शर्मा को बुलाकर कहा - भगवन् ! मुझ पर अनुग्रह करने के लिए आप मेरे इन पुत्रों को शीघ्र अर्थ शास्त्र में जिस प्रकार हो सके उस प्रकार असाधाराण विद्वान् बना दीजिए। इसके बदले मैं आपको सौ गाँव का मालिक बना दुँगा। इसके अनन्तर राजा से विष्णु शर्मा ने कहा - राजन् मेरे सत्यवचन सुनिए। मैं सौ गाँव लेकर भी विद्या-विक्रय नहीं करता। तथापि आपके इन पुत्रों को यदि छः महीने में नीति शास्त्र का ज्ञाता न बनां दूँ तो मैं अपना नाम त्याग दूँगा। बहुत कहने से क्या लाभ ? आप मेरा सिंहनाद सुने। धन मिल जने की अभिलाषा से मैं ऐसा नहीं कहता ,क्योंकि अस्सी वर्ष की अवस्था तक समस्त इन्द्रियों के भोग से निस्पृह हो गया हूँ , अतः मुझे धन से कोई प्रयोजन नही है। किन्तु आपकी प्रार्थना सिद्धि

के निमित्त मैं सरस्वती विनोद करूँगाs । अतः आप आज के दिन का नाम लिख लीजिए । यदि मैं छः महीने के अन्दर आपके पुत्रों को विद्या में असाधारण ज्ञाता न बनादूँ तो भगवान मुझे देवमार्ग (स्वर्ग) न दिखावें ।

अथासौ राजा तां बाह्मणस्यासम्भाव्यां प्रतिज्ञां श्रुत्वा ससचिवः प्रहृष्टो विस्मयान्वितस्तस्मै सादरं तान्कुमारान्समर्प्य परां निर्वृत्तिमाजगाम । विष्णुशर्मणापि तानादाय तदर्थं मित्रभेद - मित्रप्राप्ति - काकोलूकीयलब्धप्रणाशापरिक्षितकारकाणि चेति पंचतन्त्राणि रचयित्वा पाठितास्ते राजपुत्राः । तेऽपि तान्यधीत्य मासषट्केन यथोक्ताः संवृत्ताः ततः प्रभृत्येतत्पघतन्त्रकं नाम नीतिशास्त्रं बालावबोधनार्थं भूतले प्रवृत्तम् । किं बहुना-

अधीते य इदं नित्यं नीतिशास्त्रं श्रृणोति च ।
न पराभवमाप्नोति शक्रादपि कदाचन ।।

इसके अनन्तर ब्राह्मण की इस असंभव (असाधारण) प्रतिज्ञा को सुन कर राजा मन्त्रियों सहित अत्यधिक प्रसन्न हो आश्चर्ययुक्त हुआ और उन राज कुमारों को आदर के साथ उनको समर्पित कर राजा अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ । विष्णु शर्मा नें भी उन (कुमारों)को लेजा कर उनके निमित्त मित्र भेद, मित्रसम्प्राप्ति, काकोलूकीय, लब्धप्रणाश और अपरिक्षित कारक नामक इन पाँच तन्त्रों की रचना कर उन्हें पढ़ाया । वे राज कुमार भी उन तन्त्रों को पढ़कर छः महीने में जैसा कहा था, असाधारण ज्ञाता हो गये । उसी दिन से यह पंच तन्त्र नामक नीतिशास्त्र का ग्रन्थ बालकों को ज्ञान प्राप्ति के लिए संसार में प्रसिद्ध हुआ । अधिक क्या ?

अस्ति कस्मिंश्चित् पर्वतैकदेशे वानरयूथम् । तच्च कदाचिद्धेमन्तसमयेऽतिकठोरवात संस्पर्श- वेपमानकलेवरं तुषारवर्षोद्धत प्रवर्षधनधारानिपातसमाहतं न कथाच्चिच्छान्तिमगमत् । अथ केचिद्वानरा वन्हिकणसदृशानिगुन्जाफलान्यवचित्य वन्हिवाञ्छया फूत्कुर्वन्तः समन्तात्तस्थुः । अथ सूचीमुखो नाम पक्षी तेषां तं वृथायासमवलोक्य प्रोवाच -'भोः, सर्वे मूर्खा यूयम् । नैते वन्हिकणाः गुन्जाफलानि एतानि। तत्किं वृथा श्रमेण । नैतस्माच्छीतरक्षा भविष्यति। तदन्विष्यतां कश्चिन्निर्वातो वनप्रदेशो गुहा गिरिकन्दरं वा । अद्पसि सटोपा मेघा दृष्यन्ते ।' अथ तेषामेकतमो वृद्धवानरस्तमुवाच - 'भो मुर्ख, किं तावदनेन व्यापारेण । तदगम्यताम् ।'

किसी पर्वत के एक प्रदेश में वानरों का एक झुण्ड रहता था । वह वानर समूह किसी समय हेमन्त ऋतु में अत्युत्कट ठंडी वायु लगने से कम्पमान शरीर तथा तुषार (पाला) की वर्षा तुल्य बड़ी मुशलाधार जल के बरसने के कारण पीड़ित हो कर किसी तरह भी सुख नहीं पा रहा था तब उनमें से कुछ बन्दर अग्नि कण (आग की चिनगारी) के समान गुञ्जा फलों को एकत्रित कर अग्नि की अभिलाषा से फुंकते हुए उसके चारों तरफ घेर कर बैठ गये तदनन्तर सूची मुख नाम के पक्षी ने उनके उस निरर्थक परिश्रम को देखकर कहा - 'अरे, तुम सब मूर्ख हो । ये सब आग की चिन्गारीयाँ नहीं हैं । ये गुघजा फल है । इसलिये इस निरर्थक परिश्रम से क्या प्रयोजन ? इससे शीत की रक्षा नहीं होगी सो कोई वायुरहीत बना स्थान, गुहा (गुफा) या गिरी कन्दर (पर्वत की खोह) खोजों । इस समय भी बादल की घनघोर घटा (मेंघ की गर्जना) देखने में आ रही है । तब उनमें से एक वृद्ध बन्दर ने कहा - अरे मूर्ख ' तुझे इस काम से क्या प्रयोजन ? इस लिये(तू)

चला जा।

उक्तं च -

मुहुर्विघ्नितकर्माणं द्यूतकारं पराजितम्।
नालापयेद्विवेकज्ञो यदिच्छेत्सिद्धिमात्मनः॥

कहा भी है - बार-बार किसी कार्य में सफलता न पाने वाले और द्यूत (जुआ) खेलने में पराजित व्यक्ति से बुद्धिमान व्यक्ति को होना चाहिए कि यदि अपनी कुशलता की इच्छा हो तो उनके साथ वार्तालाप ना करें।

तथा च - **आखेटकं वृथाक्लेशं मूर्ख व्यसन-संस्थितम्।**
आलापयति यो मूढः स गच्छति पराभवम्॥

और भी, जो मूर्ख - आखेटक (शिकारी), निरर्थक परश्रिम करने वाले, मूर्ख और व्यसनी से वार्तालाप करता है, वह पराभव को प्राप्त होता है।

सोपि तमानादृत्य भूयोपि वानराननवरतमाह-'भोः, किं वृथा क्लेशेन ।' अथ यावदसौ न कथच्चित्प्रलपन्विरमति तावदेकेन वानरेण व्यर्थश्रमत्वात्कुपितेन पक्षाभ्यां गृहीत्वा शिलायामास्फालित उपरतश्च अतोऽहं ब्रवीमि- 'नानम्य नमते दारू'

।वह भी उसके वचन की अवहेलना करता हुआ बार-बार वही बात कहता ही रहा कि - अरे ! इस निरर्थक कष्ट से क्या प्रयोजन ? सो वह जब किसी प्रकार भी अपने कहने से न रूका, तब तक व्यर्थ परिश्रम से क्रुद्ध हुए बन्दर ने उसके पंख पकड़कर शीला (पर्वत की चट्टान) पर पटक दिया जिससे वह मर गया। इसलिए मैं कहता हुँ- न झुकने वाले लकड़ी नहीं झुकती।

तथा च -

उपदेशो हि मूर्खाणां प्रकोपाय न शान्तये।
पयः पानं भुजंगानां केवलं विषवर्धनम्॥

और भी -

मूर्खों को दिया गया उपदेश उनके क्रोध को बढ़ाने के लिए ही होता हैं, न कि शान्ति के लिए। जिस प्रकार सर्पों को दूध पिलाने से उनके विष का ही वर्धन होता है।

अन्यच्च-

उपदेशो न दातव्यो यादृशे तादृशे जने।
पश्य वानरमूर्खेण सुगृही निगृहीकृतः॥

और भी -

जैसे तेसै व्यक्ति को उपदेश न देना चाहिए। देखो, मूर्ख बन्दर एक उत्तम गृहस्थ को घर से शून्य (बेघर) बना दिया।

13.4 गौरेया पक्षी की कथा

अस्ति कस्मिंश्चिद्वनोद्देशे शमीवृक्षः । तस्य लम्बमानशिखायां कृतावासावरण्यचअकदम्पती वसतः स्म । अथ कदाचित्तयोः सुखसंस्थयोर्हेमन्तःमेघो मन्दं मन्दं वर्षितुमारब्धः । अत्रान्तरे कश्चिच्छाखामृगो वातासारसमाहतः प्रोद्धूलितशरीरो दन्तवीणां वादयन्वेपमानस्तच्छमीमूलमासाद्योपविष्टः । अथ तं तदृशमवलोक्य चटका प्राह - ' भो भद्र

किसी वन के एक प्रदेश में शमी का एक वृक्ष था। उसकी लम्बी शाखा (डाल) में घोंसला बना कर चटक-चटका (गौरैया व उसकी स्त्री) रहा करते थे। किसी समय जब वे आनन्द से बैठे हुए थे कि हेमन्त ऋतु का बादल धीरे-धीरे बरसने लगा। इसी समय हवा के झकझोर से युक्त बरसात की धारा से ताड़ित (वर्षा के जल से भीगे हुए शरीर वाला), दन्त वीणा (कटकटाते दांत् रूपी वीणा) बजाता हुआ और काँपता हुआ कोई बन्दर उसी शमी वृक्ष के नीचे आकर बैठ गया। उसकी उस प्रकार की दशा देख कर चटका ने कहा - हे सौम्य !

'हस्तपादसमोपेतो दृश्यते पुरूषाकृतिः।

शीतेन भिद्यते मूढ़, कथं न कुरूषे गृहम्' ॥

तुम तो हाथ और पैर से युक्त होने के कारण पुरुष के समान देखने में आते हो। तब शीत से कष्ट क्यों पा रहे हो, अरे मूर्ख ! निवास के लिए घर क्यों नहीं बना लेता ?

एतच्छ्रुत्वा तां वानरः सकोपमाह-'अधमे कस्मान्न त्वं मौनव्रता भवसि। अहो, धाष्टर्यमस्याः। अद्य मामुपहसति-

'सूचीमुखी दुराचारा रण्डा पण्डितवादिनी।

नाशङ्कते प्रजाल्पन्ती तत्किमेनां न हन्म्यहम्''॥

उसे सुनकर बन्दर ने क्रोध पूर्वक कहा - अरे अघमे ! तू चुप क्यों नहीं रहती ? अत्यधिक आश्चर्य की बात है, इसकी धृष्टता तो देखो ! यह मेरा उपहास कर रही है।

सूई के सदृश मुँह वाली, व्याभिचारिणी, धूर्ता अपने को विदुषी कहने वाली, बकवाद करती हुई यदि यह नहीं आशंकित होती (डरती) है तो मैं क्यों न इसे मार डालूँ ?

एवं सचिन्त्यं स आह-'मुग्धे ! किं मम चिन्तया तव प्रयोजनम् ?'

उक्तं च -

वाच्यं श्रद्धासमेतस्य पृच्छतेश्च विशेषतः।
प्रोक्तं श्रद्धाविहीनस्य अरण्यरूदितोपमम्॥

इस प्रकार विचार कर उसने कहा- अरी मुग्धे (भोली)। मेरी चिन्ता करने से तुझे क्या प्रयोजन ? कहा भी है-

विशेष श्रद्धा से युक्त होकर यदि कोई जानने की इच्छा से पुछे तो उससी बात करनी चाहिए। श्रद्धा रहित मनुष्यों से कुछ कहना वन में रोने के समान (निरर्थक) है।

तत्किं बहुना तावत्। कुलायस्थितया तया पुनरप्यभिहितः। स तावत्तां शमीमारुह्य तस्याः कुलायं शतधा खण्डशोऽकरोत्। अतोऽहं ब्रवीमि-'उपदेशो न दातव्यः' इति।

सो बहुत कहने से क्या प्रयोजन ! ज्यो ही कुलाय (घोसले) में बैठी हुई उस (चटका) ने पुनः कहा त्यों ही उस शमी वृक्ष पर चढ़कर उसके कुलाय (घोंसले) को सौ टुकड़े कर दिये। इसी से मैं कहता हूँ -'जैसे तैसे व्यक्ति को उपदेश न देना चाहिए' इत्यादि।

तन्मूर्ख, शिक्षापितोऽपि न शिक्षितस्त्वम्। अथवा न ते दोषोऽस्ति, यतः साधोः शिक्षा

गुणायसम्पद्यते, नासाधोः । उक्तं च-

किं करोत्येव पाण्डित्यमस्थाने विनियोजितम् ।

अन्धकारप्रतिच्छन्ने घटे दीप इवाहितः ।।

सो हे मूर्ख दमनक ! उपदेश देने पर भी तू नहीं सीख सका । अथवा इसमें तेरा दोष नहीं है, क्योंकि सज्जन व्यक्ति में शिक्षा गुणदायिनी होती हैं, न कि अशिष्ट (असज्जन व्यक्ति) में । कहा भी है -अनुचित पात्र में बतलाया गया सदुपदेश क्या कर सकता है । जिस प्रकार अन्धकार से पूर्ण घड़े के उपर रखा हुआ दीपक घड़े के भीतर प्रकाश कर सकता है ?

तद्व्यर्थपाण्डित्यमाश्रित्य मम वचनमश्रृण्वन्नात्मनः शान्तिमपि वेत्सि । तन्नूनमपजातस्त्वम् । उक्तं च-

जातः पुत्रोऽनुजातश्च अतिजातस्तथैव च ।

अपजातश्च लोकेऽस्मिन्मन्तव्याः शास्त्रवेदिभिः ।।

सो व्यर्थ पाण्डित्य (मैं ज्ञानवान हूँ इस प्रकार का झूठा अहंकार) का अवलम्बन कर तुमने मेरा वचन नहीं सुना और जो मन की शान्ति थी उसे भी नहीं समझ पाया । सो निश्चय ही तू अपजात (अत्यन्त अधम) है । कहा भी है -

इस संसार में शास्त्र के जानने वालों को चार प्रकार के पुत्रों को मानना चाहिए,, जिनके नाम इस प्रकार है- 1. जात 2. अनुजात 3. अतिजात 4. अपजात ।

मातृतुल्यगुणो जातस्त्वनुजातःपितुः समः।अतिजातोऽधिकस्तस्मादपजातोऽधमाधमः ।।

उन चारों की परिभाषाएँ इस प्रकार है - माता के समान गुण वाला पुत्र "जात" पिता के समान गुण वाला " अनुजात" पिता से अधिक गुण वाला पुत्र " अतिजात " और अत्यन्त अधम पुत्र " अपजात " कहा जाता है ।

अप्यात्मानो विनाशं गणयति न खलः परव्यसनहृष्टः ।

प्रायो मस्तकनाशे समरमुखे नृत्यति कबन्धः ।।

दुर्जन पुरुष दूसरों के दुःख से प्रसन्न हो कर अपने विनाश को नहीं देखता है । प्रायः ऐसा देखा जाता है कि मस्तक के कट जाने पर भी कबन्ध (छिन्न शिर वाला शरीर धड़) युद्ध भूमि में नृत्य करता रहता है ।

अहो, साध्विवदमुच्यते-

'धर्मबुद्धिः कुबुद्धिश्च द्वावेतौ विदितौ मम ।

पुत्रेण व्यर्थपाण्डित्यात्पिता धूमेन घातितः' ।।

धर्मबुद्धि और कुबुद्धि इन दोनों को मैनें जान लिया है । पुत्र (कुबुद्धि) ने अपनी निरर्थक पण्डिताई के कारण धुँए से पिता को मार डाला ।

13.5 धर्मबुद्धि और पाप बुद्धि की कथा

कस्मिश्चिदधिष्ठाने धर्मबुद्धिः पापबुद्धिश्च द्वे मित्रे प्रतिवसतः स्मः । अथ कदाचित्पापबुद्धिना चिन्तितम्- ' अहं तावान्मूर्खो दारिद्र्योपेतश्च । तदेनं धर्मबुद्धिमादाय देशान्तरं गत्वास्याश्रयेणार्थोपार्जनं कृत्वैनमपि वञ्चयित्वा सुखी भवामि ।' अथान्यस्मिन्नहनि पापबुद्धिधर्मबुद्धिं प्राह-'भो मित्र, वार्धकभावे किं त्वमात्मविचेष्टितं स्मरसि, देशान्तरमदृष्ट्वा कां शिशुजनस्य वार्ता कथयिष्यसि ? उक्तं च -

देशान्तरेषु बहुविधभाषावेषादि येन न ज्ञातम् ।

भ्रमता धरणीपीठे तस्य फलं जन्मनो व्यर्थम् ।।

दमनक नें कहा -

यह कैसे ? उसने कहा - किसी नगर में " धर्मबुद्धि " और " पापबुद्धि " नाम के दो मित्र रहते थे। एक दिन पापबुद्धि ने विचार किया कि मैं तो मूर्ख और दरिद्र हूँ। सो इस धर्मबुद्धि को साथ लेकर देशान्तर में जाकर इसकी सहायता से धन उपार्जित करूँ (कमाऊँ और उसके बाद) इसे भी ठग कर सुखी हो जाऊँ । तदनुसार किसी दूसरे दिन पापबुद्धि ने धर्मबुद्धि से कहा - हे मित्र ! वृद्धावस्था (बुढ़ौती) में तुम अपने-अपने कौन से कार्य को स्मरण (याद) करोगे ? दूसरे देश को देखे बिना अपने बालकों से कौनसी बातें कहोगे ? कहा भी है -
जिस व्यक्ति ने दूसरे देशों में घूमकर अनेक प्रकार की भाषा और वेष (पोशाक) आदि का नही समझा उसका भूतल पर जन्म ग्रहण करना निरर्थक है।

तथा च -

विद्यां वित्तं शिल्पं तावन्नाप्नोति मानवः सम्यक् ।

यावद् व्रजति न भूमौ देशाद्देशान्तरं हृष्टः ।।

उसी तरह - कोई भी व्यक्ति भूतल पर विद्या, वित्त (धन), शिल्प (वैज्ञानिक व्यापार, कारीगरी) तब तक अच्छी तरह प्राप्त नहीं करता जब तक प्रफुल्लित मन से देश-देशान्तर नहीं जाता।

अथ तस्य तद्वचनमाकर्ण्य प्रहृष्टमनास्तनैव सह गुरूजनानुज्ञातः शुभेऽहनि देशान्तरं प्रस्थितः । तत्र च धर्मबुद्धिप्रभावेण भ्रमता पापबुद्धिना प्रभूततरं वित्तमासादितम् । ततश्च ,द्वावापि तौ प्रभूतोपार्जितद्रव्यौ प्रहृष्टौ स्वगृहं प्रत्यौत्सुक्येन निवृत्तौ। उक्तं च -

प्राप्तविद्यार्थशिल्पानां देशान्तरनिवासिनाम् ।

क्रोशमात्रोऽपि भूभागः शतयोजनवद्भवेत् ।।

इसके बाद उसकी इस तरह की बात को सुनकर धर्मबुद्धि ने प्रसन्नचित होकर गुरुजनों की आज्ञा लेकर उसी के साथ किसी अच्छे दिन में दूर देश की ओर प्रस्थान किया। वह धर्मबुद्धि के प्रभाव से भ्रमण करते हुए पापबुद्धि नें बहुत सा धन प्राप्त किया उसके बाद वे दोनों अत्यधिक धन उपार्जन से प्रसन्न होकर बड़ी उत्कण्ठा से अपने घर की ओर लौटे। कहा भी है - विद्या, धन और

शिल्प (कारीगरी) प्राप्त करने के बाद देशान्तर में गये हुए व्यक्ति के लिए अपने घर की ओर की एक कोस भर की जमीन सौ योजन (चार सौ कोस) के तुल्य (अधिक दूर वाली) हो जाती है।

अथ स्वस्थानसमीपवर्तिना पापबुद्धिना धर्मबुद्धिरभिहितः-'भद्र, न सर्वमेतद्धनं गृहं प्रति नेतु युज्यते । यतः कुटुम्बिनो बान्धवाश्च प्रार्थयिष्यन्ते । तदत्रैव वनगहने क्वापि भूमौ निक्षिप्य किंचिन्मात्रमादाय गृहं प्रविशावः । भूयोऽपि प्रयोजने सञ्जाते तन्मात्र समेत्यास्मात्स्थानान्नेष्यावः । उक्तं च -

न वित्तं दर्शयेत्प्राज्ञः कस्यचित्स्वल्पमप्यहो ।
मुनेरपि यतस्तस्य दर्शनाच्चलते मनः ।।

इसके बाद जब पापबुद्धि अपने घर के पास पहुँचा तब उसने धर्मबुद्धि से कहा - सौम्य ! सब धन ले जाना ठीक नहीं है, क्यों कि भाई बिरादर एवं जात के लोग उसे माँगने लगेंगे। सो इसी घोर जंगल में कहीं भूमि में गाड़कर और इसमें से थोड़ा सा धन लेकर हम दोनों घर चलें। फिर आवश्यकता पड़ने पर यहाँ आकर हम दोनों शेष धन ले जायेंगे। कहा भी है -
बुद्धिमान मनुष्यों का चाहिए कि अपना थोड़ा सा धन भी किसी को नहीं दिखलावें। क्योंकि उसके देखने से मुनि लोगों का भी मन चलायमान हो जाता है।
तथा च -

यथामिषं जले मत्स्यैर्भक्ष्यते श्वापदैर्भूवि ।आकाशे पक्षिभिश्चैव तथा सर्वत्र वित्तवान् ।।

और भी -जिस मांस जल में मछलियों द्वारा, पृथ्वी पर सिंह आदि हिंसक जन्तुओं द्वारा, आकाश में पक्षियों द्वारा खाया जाता है, उसी प्रकार सब जगह धनवान व्यक्ति खाया जाता है।

तदाकर्ण्य धर्मबुद्धिराह-'भद्र, एवं क्रियताम् ।' तथाऽनुष्ठिते द्वावपि तौ स्वगृहं गत्वा सुखेन संस्थितवन्तौ । अथान्यस्मिन्नहनि पापबुद्धिर्निशीथेऽटव्यां गत्वा तत्सर्वं वित्तं समादाय गर्तं पूरयित्वा स्वभवनं जगाम । अथान्यैद्यूर्धर्मबुद्धिं समभ्येत्य प्रोवाच- 'सखे' बहुकुटुम्बा वयं वित्तभावात्सीदामः । तद् गत्वा तत्र स्थाने किंघिचन्मात्रं धनमानयावः ।' सोऽब्रवीत्- 'भद्र, एवं क्रियताम्' । अथ द्वावपि गत्वा तत्स्थानं यावत्खनतस्तावद्रिक्तं भाण्डं दृष्टवन्तौ। अत्रान्तरे पापबुद्धिः शिरस्ताडयन् प्रोवाच-'भो धर्मबुद्धे, त्वया हृतमेतद्धनम्, नान्येन । यतो भूयोऽपि गर्तापूरणं कृतम् । तत्प्रयच्छ में तस्यार्धम् । अन्यथाऽहं राजकुले निवेदयिष्यामि ।' स आह-'भे दुरात्मन्, मैवं वद । धर्मबुद्धिः खल्वहम् । नैतच्चौरकर्म करोमि । उक्तं च -

मातृवत्परदाराणि परद्रव्याणि लोष्टवत् ।
आत्मवत्सर्वभूतानि वीक्षन्ते धर्मबुद्धयः' ।।

यह सुनकर धर्मबुद्धि ने कहा - सौम्य ! ऐसा ही करो। वैसा करने पर वे दोनों अपने-अपने घर जाकर आनन्द से रहने लगे। इसके बाद किसी दूसरे दिन पापबुद्धि आधी रात के समय जंगल में जाकर, वह सब धन लेकर गड्ढ़े को भरकर अपने घर चला आया। तदनन्तर दूसरे दिन धर्मबुद्धि के समीप जाकर कहा - हे मित्र ! हम लोग बहुत परिवार वाले हैं। और धन के अभाव से कष्ट पाते हैं। सो उस जगह पर चल कर कुछ थोड़ा सा धन ले आवें। उसने कहा - सौम्य ! ऐसा ही

करो। इसके पश्चात् दोनों ने जाकर जब उस जगह को खोदा तो रिक्त भंाड (पात्र) देखा। इतने में पापबुद्धि ने मस्तक पीटते हुए कहा - हे धर्मबुद्धि ! कहीं तुम्हीं ने इस धन का हरण तो नहीं कर लिया हैं। और दुसरे ने नहीं। धन लेकर तुमने ही गड्ढ़ा भर दिया है। इसलिए मुझे उसका आधा दे दो , नहीं तो मैं राज-दरबार में जाकर निवेदन करूँगा।' उसने कहा - 'अरे दुष्ट ! ऐसा मत कह, क्योंकि मैं धर्मबुद्धि हूँ। ऐसा चोर का कर्म मैं नहीं कर सकता। कहा भी हैं -

जिनकी बुद्धि सत्कर्म में रहती है ऐसे धार्मिक लोग परायी स्त्री को माता के समान, पराये धन को मिट्टी के ढेले के समान, समस्त जीवों को अपनी आत्मा के समान देखते है।

एवं ,द्वावपि तौ विवदमानौ धर्माधिकारिणं गतौ ? प्रोचतुश्च परस्परं दूषयन्तौ । अथ धर्माधिकरणाधिष्टितपुरूषैर्दिव्यार्थे यावन्नियोजितौ तावत् पापबुद्धिराह- 'अहो, न सम्यग्दृष्टोऽयं न्यायः ! उक्तं च-

विवादेऽन्विष्यते पत्रं तदभावेऽपि साक्षिणः।

साक्ष्यभावत्तत्तौ दिव्यं प्रवदन्ति मनीषिणः ।।

इस प्रकार वे दोनों विवाद करते हुए धर्माधिकारी के समीप जाकर एक दूसरे को दोष लगाते हुए कहने लगे। इसके बाद जब धर्माधिकारी से नियुक्त राजपुरूषों ने शपथ ग्रहण के लिए कहा, तब, पापबुद्धि ने कहा - 'अहो ! यह न्याय तो उचित नहीं देखने में आता। कहा भी है -विवाद कर्म में पहले लेख-पत्र का अन्वेषण किया जाता है, उसके न मिलने पर साक्षी खोजे जाते है।, साक्षी के अभाव में शपथ-ग्रहण कराया जाता है - इस प्रकार राजनियम के अभिज्ञ लोग कहते हैं ।तदत्र विषये मम वृक्षदेवताः साक्षिभूतास्तिष्ठन्ति। ता अप्यावयोरेकतरं चौरं साधु वा करिष्यन्ति। ' अथ तैः सर्वैरभिहितम् - ' भोः, युक्तमुक्तं भवता। उक्तं च -

अन्त्यजोऽपि यदा साक्षी विवादे सम्प्रजायते।

न तत्र विद्यते दिव्यं किं पुनर्यत्र देवताः ।।

सो इस विषय में हमारे साक्षी वन देवता हैं। वे ही हम दोनों में से एक को चोर या साधु बतावेंगे।' उसके बाद उन सबों ने कहा - ' हाँ, हाँ ! तुमने बहुत ठीक कहा। कहा भी है-

विवाद में यदि अन्त्यज भी साक्षी होता है तो शपथ की जरूरत नहीं समझी जाती, फिर जहाँ देवता साक्षी हों तो क्या पूछने की बात है ?

तदस्माकमप्यत्र विषये महत्कौतूहलं वर्तते । प्रत्यूषसमये युवाभ्यामप्यस्माभिः सह तत्र वनोद्देशे गन्तव्यम्' इति । एतस्मिन्नन्तरे पापबुद्धिः स्वगृहं गत्वा स्वजनकमुवाच- 'तात, प्रभूतोऽय मयार्थो धर्मबुद्धेश्चोरितः। स च तव वचनेन परिणतिं गच्छति। अन्यथाऽस्माकं प्राणैः सह यास्यति' । स आह- - 'वत्स, द्रुतं वद येन प्रौच्य तद्द्रव्यं स्थिरतां नयामि ।' पापबुद्धिराह-'तात, अस्ति तत्प्रदेशे महाशमी । तस्यां महत्कौटरमस्ति । तत्र त्वं साम्प्रतमेव प्रविश । ततः प्रभाते यदाहं सत्य श्रावणं करोमि, तदा त्वया वाच्यं यद्धर्मबुद्धिश्चौर इति ।' तथानुष्ठिते प्रत्यूषे स्नात्वा पाबुद्धिर्धबुद्धिपुरःसरो धर्माधिकरणकैः सह तां शमीमभ्येत्य तारस्वरेण प्रोवाच -

' आदित्यचन्द्रावनिलोऽनलश्च द्यौर्भूमिरापो हृदयं यमश्च ।

अहश्च रात्रिश्च उभे च सन्ध्ये धर्मो हि जानाति नरस्य वृत्तम् ।।

सो हम लोगों को भी इस विषय में अत्यन्त कौतुक है । सो तुम दोनों को प्रातः काल हम लोगों के साथ वन में जाना होगा । इसी बीच मे पापबुद्धि ने अपने घर जाकर अपने पिता से कहा ' ' हे पिताजी ! मैनें धर्मबुद्धि का प्रभूत धन चुरा लिया है, और तुम्हारे कहने से वह पच जायेगा ।' नहीं तो मेरे प्रणों के साथ चला जायेगा।' उसने कहा - 'वत्स ! जल्दी बताओ, जो मैं उसे कहकर उस द्रव्य को स्थिर कर दूँ।' । पापबुद्धिने कहा - ' हे पिताजी ! उस स्थान पर एक बहुत बड़ा शमी का वृक्ष है । उसमें एक बहुत बड़ा कोटर है । उसमें तुम इस समय ही जा घुसो । उसके बाद प्रातःकाल जब मैं सत्य कहने को कहूँगा तब तुम कहना कि धर्मबुद्धि चोर है ।' ऐसा करने पर योजनानुसार प्रभातकाल 'पापबुद्धि' ने स्नानकर धुले हुए कपड़े पहनकर, धर्मबुद्धि को आगे कर, धर्माधिकारियों के साथ उस शमी वृक्ष के निकट पहुँचकर ऊँचे स्वर से कहा -

'सूर्य, चन्द्र, वायु, अग्नि, पृथ्वी, जल, हृदय, यमराज, दिन-रात दोनों सन्ध्याएँ और धर्म - ये मनुष्यों के चरित्र को जानते हैं ।

भगवति वनदेवते, आवर्ममध्ये-यश्चौरस्तं कथय ।' अथ पाबुद्धिपिता शमीकोटरस्थः प्रोवाच-'भो' श्रृणुत । धर्मबुद्धिना हृतमेतद्धनम्' । तदाकर्ण्य सर्वे ते राजपुरूषा विस्मयोत्फुल्ललोचना यावद्धर्मबुद्धेर्वित्तहरणोचितं निग्रहं शास्त्रदृष्ट्याऽवलोकयन्ति तावद्धर्मबुद्धिना तच्छमीकोटरं बन्हिभोज्यद्रव्यैः परिवेष्ट्य वह्निना सन्दीपितम् । अथ ज्वलति तस्मिन् शमीकोटरेऽर्धदग्धशरीरः स्फुटितेक्षणः करूणं परिदेवयन्पापबुद्धिपिता निश्चक्राम। ततश्च तै सर्वैः पृष्टः-'भो किमिदम्।' इत्युक्ते ' इदं सर्वं कुकृत्यं पापबुद्धेः कारणाद् जातम्' इत्युक्त्वा मृतः । ततस्ते राजपुरूषाः पाबुद्धिं शमीशाखायां प्रतिलम्ब्य धर्मबुद्धिं प्रशंस्येदमूचुः-'अहो' साध्विवदमुच्यते -

उपायं चिन्तयेत्प्राज्ञस्तथापायं च चिन्तयेत् ।

पश्यतो बकमूर्खस्य नकुलेन हता बकाः ।।

मातः वनदेवते ! हम दोनों में से जो चार है उसे कहो ।' उसके बाद शमी के खोखले में बैठा हुआ पापबुद्धि का पिता कहने लगा - 'अहो ! तुम सब सुनो, यह सब धर्मबुद्धि ने चुराया हैं ।' यह सब सुनकर सब राजपुरुषों की आँखे आश्चर्य से खुल गयी औरं जब वे धर्मबुद्धि के धन-हरण के योग्य दण्ड को शास्त्र की दृष्टि से विचारने में तत्पर हो गये, तब धर्मबुद्धि ने उस समी वृक्ष के खोखले में घास-पात भरकर आग लगा दी । उस कोटर के जलने पर उसमें से आधा शरीर जला हुआ, फूटे नेत्र वाला, करूण स्वर में चिल्लाता हुआ पापबुद्धि का पिता निकला । उसके बाद उन अधिकारियों ने पूछा - ' अरे ,यह क्या हो गया ?' इस प्रकार कहने पर ' यह सब कुकृत्य पापबुद्धि के कारण हुआ,' यह निवेदन कर वह मर गया । तदनन्तर उन राजपूरुषां ने पापबुद्धि को शमीवृक्ष की शाखा मं लटकाकर धर्मबुद्धि की प्रशंसा करते हुए कहा - अहो ! यह ठीक ही कहा है -

बुद्धिमान् का कर्तव्य है कि उपाय के साथ-साथ अपाय की भी चिन्ता करं। क्योंकि मूर्ख बगुले के देखते देखते नकुल ने उसके सभी बच्चे खा लियें।

13.6 बगुला और सर्प की कथा

अस्ति कश्मिंश्चिद्वनोद्देशे बहुबकसनाथो वटपादपः । तस्य कोटरे कृष्णसर्पः प्रतिवसति स्म । स च बकबालकानजातपक्षानपि सदैव भक्षयन्कालं नयति । अथैको बकस्तेन भक्षितान्यपत्यानि दृष्ट्वा शिशु वैराग्यात्सरस्तीरमासाद्य बाष्पपूरितनयनोऽधोमुखस्तिष्ठति । तं च तादृक्चेश्टितमवलोक्य कुलीरकः प्रोवाच-'मातुल, किमेवं रुद्यते भवताऽद्य। ' स आह- ' भद्र, किं करोमि । मम मन्दभाग्यस्य बालकाः कोटरनिवासिना सर्पेण भक्षिताः । तद्दुःखदुःखितोऽहं रोदिमि । तत्कथय मे यद्यस्ति कश्चिदुपायस्तद्विनाशाय ।' तदाकर्ण्य कुलीरकश्चिन्तयामास - 'अयं तावद् स्मज्जातिसहजवैरी । तथापदेशं प्रयच्छामि सत्यानृतं यथान्येऽपि बकाः सर्वे संक्षयमायान्ति । उक्तं च -

नवनीतसमां वाणीं कृत्वा चित्तं तु निर्दयम् ।

तथा प्रबोध्यते शत्रुः सान्वयो भ्रियते यथा ।।

किसी वन में अनेक बगुलों से युक्त एक वट वृक्ष था। उसके कोटर में एक काला साँप रहता था। वह पंख न निकले हुए बगुलों के बच्चों का भक्षण करता हुआ अपना समय बिता रहा था। तदनन्तर एक बगुला उसके द्वारा अपने बच्चों का भक्षण किये हुए देख कर बच्चों के मरण के शोक में जलाशय के किनारे आकर अश्रुधारा परिपूर्ण आँखों से नीचे की ओर मूँह किए हुए बैठा था। उसे उस अवस्था में देखकर एक कुलीरक ने पूछा - 'मामा ! आज आप इस तरह क्यों रो रहे है ?' उसने कहा - 'सौम्य ! क्या करूँ ? मुझ भाग्यहीन के सभी बच्चों को खोखले में रहनेवाले काले साँप ने भक्षण कर लिया है। सो उसी के दुःख से दुखी होकर मैं रो रहा हूँ। यदि उस साँप के नाश का कोई उपाय हो तो मुझसे कहो।' यह सुनकर कुलीरक ने विचार किया कि 'यह मेरी जाति का सहज बैरी है, अतः इस प्रकार सत्य और असत्य से मिश्रित उपदेश दूँ कि दूर से सभी बगुले भी नष्ट हो जायें। कहा भी है -

वाणी को मक्खन के समान कोमल और चित्त को निष्ठुर करके शत्रु को इस प्रकार समझावे कि जिससे वह कुल-सहित विनाश को प्राप्त हो जाय'।

आह च - 'माम्, यद्येवं तन्मत्स्यमांसखण्डानि नकुलस्य बिलद्वारात्सर्पकोटरं यावत्प्रक्षिप यथा नकुलस्तन्मार्गेण गत्वा तं दुष्टसर्पविनाशयति !' अथ तथानुष्ठिते मत्स्यमांसानुंसारिणा नकुलेन तं कृष्णसर्प निहत्य तेऽपि तद्वृक्षाश्रयाः सर्वे बकाश्च शनैः शनैर्भक्षिताः । अतो वयं ब्रुमः - 'उपायं चिन्तयेद्' इति।

उसने कहा - ' मामा ! यदि ऐसा है तो मछलियों के मांस के टुकड़े लेकर नेवले के बिल के छेद से लेकर साँप के खोखले तक डाल दो, जिससे नेवला उस मार्ग से जाकर उस दुष्ट साँप को मार डालेगा। इस प्रकार करने पर मछलियों के मांस का अनुसरण करनेवाले नेवले ने उस काले साँप को मारकर उस वृक्ष पर रहने वाले सभी बगुलों को धीरे-धीरे खा लिया। इसीलिए हम कहते हैं - ' उपाय की चिन्ता करके .....' इत्यादि।

तदनेन पापबुद्धिना उपायश्चिन्तितो नापायः । ततस्तत्फलं प्राप्तम् ।' अतोऽहं ब्रवीमि - ' धर्मबुद्धिः कुबुद्धिश्च' इति ।

इस पापबुद्धि ने उपाय का तो विचार किया किन्तु साथ ही साथ अपाय (विनाश) का विचार नहीं किया इसी से उसका फल पाया । इसीलिए मैं कहता हूँ कि - ' धर्मबुद्धि और पापबुद्धि इन दोनों को मैंने समझ लिया' इत्यादि ।

एवं मूढ़, त्वयाप्यपायश्चिन्तितो नोपायः पापबुद्धिवत् । तन्न भवसि त्वं सज्जनः, केवलं पापबुद्धिरसि । ज्ञातो मया स्वामिनः प्राणसन्देहानयनात् । प्रकटीकृतं त्वया स्वयमेवात्मनो दुष्टत्वं कौटिल्यं च । अथवा साध्विदमुच्यते -

यत्नादपि कः पश्येच्छिखिनामाहारनिः सरणमार्गम् ।

यदि जलदध्वनिमुदितास्त एव मूढा न नृत्येयुः ।।441।।

इसी प्रकार ओ मूढ़! तुमने भी अपाय का चिन्तन किया किन्तु पापबुद्धि के समान उपाय का नहीं, सो तुम सज्जन नहीं हो । केवल पापबुद्धि हो । स्वामी पिंगलक के प्राणों को संकट में डाल देने से ही मुझे यह मालुम हो गया है । इससे तुमने अपने आप ही अपनी दुष्टता और कुटिलता स्पष्ट कर दी । अथवा यह ठीक ही कहा है -

यदि मेघों की ध्वनि से प्रसन्न होकर वे नादान (मयुर) अपने आप नाचने न लग जायें तो कौन यत्न करके भी मयूरों के आहार निकालने का मार्ग (गुदा) को देख सकता है ?

यदि त्वं स्वामिमेनां दशां नयसि तदस्मद्विधस्य का गणना । तस्मान्ममासन्नेन भवता न भाव्यम् । उक्तं च -

तुलां लोहसहस्रस्य यत्र खदन्ति मूषकाः ।

राजंस्तत्र हरेच्छयेनो बालकं नात्र संशयः ।। 442 ।।
दमनक आह - ' कथमेतत् ?' सोऽब्रवीत् -

जब तुम अपने मालिक को ऐसी अवस्था में पहुचा सकते हो, तो पुनः हमारे सदृश लोगों की क्या गणना है । इसलिए मेरे निकट तेरा रहना उचित नहीं । कहा भी है -

जब एक हजार पल लोहे की तुला को चूहे खा जाते है, तो हे राजन् ! यदि बालक को बाज पक्षी भी उड़ा ले जाय तो, इसमें सन्देह करना उचित नहीं हैं।

अभ्यास प्रश्न 1 .

बहुविकल्पात्मक प्रश्न: -

(1) महिलारोप्य नाम का नगर था -

(1) उत्तर देश में (2) दक्षिण देश में

(3) पश्चिम देश में (4) पूर्व देश में

2. महिलारोप्य नगर का राजा था -

(1) अमर शक्ति (2) शक्ति सिंह

(3) भरत (4) दशरथ

3. उस राजा के कितने पुत्र थे ?

(1) एक (2) दो

(3) तीन (4) पाँच

4. राजा के पुत्र कैसे थे ?

(1) मूर्ख (2) योग्य

(3) बुद्धिमान् (4) विद्वान्

5. राजा के पुत्रों को किसने पढ़ाया ?

(1) सोमनाथ (2) विष्णु शर्मा

(3) भरत (4) दशरथ

6. व्याकरण का अध्ययन कितने वर्षो में होता हैं ?

(1) पन्द्रह (2) बारह

(3) ग्यारह (4) दस

13.7 सारांश

सम्पूर्ण विश्व में पंचतन्त्र की उपयोगिता से परिचित है यद्यपि यह पंचतन्त्र की कथा सरल संस्कृत भाषा एवं हिन्दी भाषा में लिखा गया हैं। इस इकाई की यह विशेषता है कि मात्र हिन्दी जानने वाले भी पंचतन्त्र की कथाओं में आये हुए उपदेशों तथा नीति तत्त्वों से भली-भांति परिचित हों तथा पदे-पदे संस्कृत भाषा एवं साहित्य का आनन्द लेते हुए विशय को हृदयंगम कर सके। विद्यार्थीयों, अध्यापकों एवं साहित्य तथा नीति प्रेमियों को लाभ हो इस बात को प्रस्तुत इकाई में चार कथाओं का वर्णन किया गया हैं। पहली कथा में दक्षिण देश के महिलारोप्य नाम का उक यशस्वी उवं प्रतापी राजा रहता था, जिसका शक्ति नाम था। वह सभी कलाओं से परिपूर्ण था। जिसके तीन परम मूर्ख पुत्र हुए। उन पुत्रों को देख कर उसे बड़ कष्ट हुआ। और उन पुत्रों को अध्ययन कराने के लिए परम यशस्वी विष्णु शर्मा नाम के विद्वान् के पास अध्ययन कराया एवं दूसरी कथा मे गौरैया पक्षी की कथा का वर्णन किया गया है जिसमें किसी वन के एक प्रदेश में एक वृक्ष था, उसकी लम्बी शाखा में घोसला बनाकर चटक-चटका (गौरैया एवे उसकी स्त्री) रहा करते थे। अनावश्यक सलाह बन्दरों को देनें का नुकसान उन्हें भुगतना पड़ा ।तीसरी कथा धर्मबुद्धि एवं पापबुद्धि नामक दो मित्रों की है जिसमें धर्म व अधर्म के बारे में बताया गया हैं।

पापबुद्धि अपनें पाप से नष्ठ हो गया तथा धर्मबुद्धि अपने से विजय को प्राप्त हुआ ।चौथी कथा साँप व बगुला की कथा हैं । जिसमें बताया गया है कि किसी की भी सलाह पर अन्धविश्वास नहीं करके , परिणाम का चिन्तन भी कर लेना चाहिए ।

13.8 शब्दावली

अस्ति - है ।

बभूवुः - हुए ।

मम - मेरा।

तदा - तब ।

श्रूयतां -सुनिये ।

रचयित्वा -रचनाकर ।

फूत्कुर्वन्तु - फूँकते हुए ।

श्रमेण - परिश्रम से ।

अद्यापि - आज भी ।

द्यूत - जुवा ।

पक्षाभ्याम् - दानों पंखो से ।

शीलायाम् - चट्टान पर ।

भुजंनाम् - सर्पों का ।

शीतेन - ठण्डक से ।

सकोपमाह - क्रोध पूर्वक कहा ।

मौन व्रताः - चुप क्यों नही रहती

तव - तुम्हारा ।

समीमारूह्य- समी वृक्ष पर चढ़ कर ।

खण्डशोकरोत् - खण्ड (टुकड़ा) कर दिये ।

द्वे मित्रे - दो मित्र ।

जनपदे - जनपद में ।

प्रोवाच - कहा ।

तस्मै - उसके लिए ।

आकर्ण्य - सुनकर ।

श्रुत्वा - सुनकर ।

वानरयूथम् - वानरों समूह ।

वृथा - व्यर्थ (निरर्थक)।

गिरिकन्दरः - पर्वत की खोह ।

व्यापारेण - व्यापार से ।

वानरेण - वानर से ।

गृहीत्वा - पकड़कर ।

पयः - दूध ।

मेघ - जल ।

गृहम् - घर ।

अधमे - अरे ! दुष्ट ।

किं मम - क्या मेरा ।

तावत् - तब तक ।

शतधा - सौ बार।

दातव्यः - देने पर ।

अहम् - मैं ।

वघचयित्वा - ठगकर। कथयिष्यसि - कहोगे।

देषान्तरेषु - दूसरे देशों में। तस्य - उसका।

तद्वचनमाकर्ण्य - उसके वचन को सुनकर। वनगहने - घोर जंगल में।

भूमौ - जमीन में। निक्षिप्य - गाड़कर।

स्वगृहम् - अपने घर को। गत्वा - जाकर।

तत्र - वहाँ। वित्तम् - धन को।

पूरयित्वा - भरकर। गर्त - गढ्ढा।

स्वभवनम् - अपने महल में। जगाम - गया।

चौरम् - चोर को। करिष्यन्ति - करेंगे।

13.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बहुविकल्पात्मक प्रश्न: -

(1) **(2) दक्षिण देश में** 2 **(1) अमर शक्ति** 3. **(3) तीन**

4.**(1) मूर्ख**

5. **(2) विष्णु शर्मा**

13.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

क्रसं. ग्रन्थ नाम लेखक टीकाकार प्रकाशक

1. नितिशतकम्भतृहरि श्री कृष्णमणि त्रिपाठी। चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन ।37/117 गोपालमन्दिर लेन,पोबानं. - 1129, वाराणसी।

2. वाक्य पदीयम् भतृहरि रामगोविन्द शुक्ल चौखम्भा विद्याभवन, बनारस

3. अनुवाद चन्द्रिका कपिलदेव द्विवेदी कपिलदेव द्विवेदी चौखम्भा विद्याभवन, बनारस

13.11 उपयोगी पुस्तकें

ग्रन्थ नाम - पंचतन्त्रम्

लेखक - विष्णु शर्मा

सम्पादक - बाबा गोकुलदास गुप्त। चौखम्भा विद्याभवन, बनारस

13.12 निबन्धात्मक प्रश्न

(1) इन कथाओं से लाभ क्या है ? इस पर प्रकाश डालिए -

.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....

(2) किसी एक कथा के महत्व पर प्रकाश डालिए।

.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....

चतुर्थ खण्ड

हितोपदेश

इकाई-14 नीति कथाओं का विकास एवं महत्त्व

इकाई की रूपरेखा

14.1 प्रस्तावना
14.2 उद्देश्य
14.3 नीति कथा का अर्थ
14.4 भारतीय नीति कथा की पृष्ठभूमि
14.5 नीति कथा की विशेषतायें
14.6 नीति कथा का उत्पत्ति
14.7 संस्कृत साहित्य में नीति कथा की उत्पत्ति
14.8 नीति कथाओं का विकास एवं महत्त्व
14.9 पंचतंत्र
14.10 हितोपदेश
14.11 सारांश
14.12 शब्दावली
14.13 बोध प्रश्नों के उत्तर
14.14 संदर्भ ग्रंथ सूची
14.15 उपयोगी पुस्तकें
14.16 निबन्धात्मक प्रश्न

14 .1 प्रस्तावना

संस्कृत साहित्य में वैदिक युग से ही नीति कथाओं की परम्परा चली आ रही है। इन नीति कथाओं में नीति विषयक उपदेश दिये गये हैं। वैसे तो संस्कृत साहित्य में कथाओं का विपुल भण्डार है किन्तु नीति कथायें इनसे भिन्न होती हैं क्योंकि इनके अधिकतर पात्र पशु- पक्षी ही होते हैं।

महाभारत, चाणक्य के अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र ,कामन्दकीय नीतिशास्त्र, जैन व बौद्ध ग्रंथों में भिन्न-भिन्न धाराओं से परिपूर्ण नीति भण्डार दृष्टिगोचर होते हैं। महाभारत के शान्ति पर्व में राजनीति की शिक्षा दी गई है। पंचतंत्र व हितोपदेश में तो नीति वचन यत्र- तत्र बिखरे पड़े हैं।

इस इकाई में आप नीति कथा से परिचित होने के साथ-साथ उसकी पृष्ठभूमि को जान पायेंगे,तत्पश्चात् हम आपको नीति कथा की उत्पत्ति,विकास एवं उसके महत्त्व के विषय में जानकारी देंगे। इन नीति कथाओं के अध्ययन से आप जीवन के व्यावहारिक पहलुओं का ज्ञान करा सकेंगे।

14.2 उद्देश्य

* इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप-
* नीति कथा से परिचित होंगे।
* नीति कथाओं की विशेषताओं को बता सकेंगे।
* नीति कथाओं के उत्पत्ति और विकास से परिचित हो सकेंगे।
* पंचतंत्र के स्वरूप को समझ सकेंगे।
* हितोपदेश नामक सर्वजनहिताय नीति युक्त ग्रंथ के विषय में जान सकेंगे।

14.3 भारतीय नीति कथा की पृष्ठभूमि

संस्कृत नीति कथाओं का एक विशाल साहित्य है। नीति कथाएं भारतीय साहित्य में अमूल्य निधि के रूप में प्रतिष्ठित हैं। यदि देखा जाय तो भारतीय कथा से ही विश्व कथा साहित्य की उत्पत्ति मानी जाती है। भारत में नीति कथाओं की उत्पत्ति लोक साहित्य से हुई है इसमें कोई संदेह नहीं है। कथा साहित्य में नीति कथा का स्वरूप स्वतंत्र ही है। संस्कृत कथाओं का स्वरूप निवेदनात्मक है। संस्कृत के सभी ग्रंथों में प्रायः नीति विषयक कथायें उपलब्ध होती हैं। अंग्रेजी के विख्यात आलोचक डॉ0 जान्सन के अनुसार-"नीति कथा एक ऐसा विशुद्ध निवेदन है जिसमें बुद्धिहीन प्राणी एवं अचेतन पदार्थ पात्रों के रूप में नीतितत्त्व की शिक्षा देने के हेतु आएं हों और वे मानवीय हितों एवं भावों को ध्यान में रखकर चेष्टा तथा संभाषण करने में कल्पित किये गये हों"। डॉ0 जान्सन के अनुसार नीति कथा में अधिकतर सजीव पात्रों को ही लेना स्वीकार किया

है। फिक्शन् के अनुसार- " चाहे जो कथा हो, केवल वह कल्पित हो , मनगढ़त कहानी हो, यथार्थ घटना न हो यही उसका अर्थ है। नीति कथा एक कल्पित कथा है। प्रो0 शरच्चन्द्र मित्र के शब्दों में - "प्राणी कथा वह है जिसमें प्राणी पात्र होते हैं एवं मानववत् बोलते और कार्य करते हैं वही नीति कथा कहलाती है। "नीति कथा पाठकों के लिए रूचिकर होने के साथ ही साथ शिक्षा प्रद भी होती है। इस प्रकार से यह स्पष्ट होता है कि नीति कथा उसे कहते हैं जिसमें अमानवीय प्राणी या अचेतन पदार्थ मनुष्यवत् व्यवहार करते हैं। यदि देखा जाय तो साहित्यिक नीति कथा की यही विशेषता है। संस्कृत नीति कथाओं में पंचतंत्र के बाद हितोपदेश प्रमुख है।

14.4 नीति कथा का अर्थ

नीति शब्द 'नी' धातु में 'क्तिन' प्रत्यय लगाकर तथा 'कथा' शब्द 'कथ' धातु से बना हुआ है। नीति शब्द का प्रयोग सदाचार, राजनीति, सदाचरण के लिए उपदेश आदि अर्थ में हुआ है तथा कथा का अर्थ कहानी से है। नीति विषयक या नीति सम्बन्धी पाठ सिखाने वाली कहानी जिसमें मानवेतर प्राणी होते हैं वही नीति कथा कहलाती है। देखा जाय तो नीति कथा एक छोटी कहानी है। संस्कृत साहित्य अत्यन्त समृद्ध एवं विशाल है इसमें नीति कथाओं का भण्डार है। केवल भारतवर्ष ही नहीं अपितु विदेशों में भी नीति कथाएं प्रसिद्ध हैं।

14.5 नीति कथा की विशेषतायें

संस्कृत साहित्य अत्यन्त विशाल एवं समृद्ध है जिसमें नीति के उपदेश विशेष रूप से उपलब्ध होते हैं। यदि देखा जाय तो संस्कृत के ग्रंथों में अनेक ऐसे पद्य मिलते हैं जिनमें सदाचार युक्त बातों को सूक्तियों के माध्यम से उपस्थित किया गया है। भारतीय साहित्य में कथाओं के माध्यम से नीतिगत उपदेश स्पष्ट रूप से दिखायी देता है। विश्व साहित्य में भारतीय कथा साहित्य का स्थान बहुत बड़ा है क्योंकि नीति कथा रोचक होने के साथ-साथ शिक्षाप्रद भी होती है।

1- नीति कथाओं में कथाकार का उद्देश्य केवल मनोरंजन करना नहीं है बल्कि नीति सम्बन्धी उपदेशों के द्वारा शिक्षा प्रदान करना है।

2- नीति कथाओं के अधिकतर पात्र मानवेतर प्राणी अर्थात्,पशु-पक्षी होते हैं

3- इनके पात्र अधिकांश सजीव प्राणी ही होते हैं, यदि कभी अचेतन एवं मानवीय व्यक्ति इसके पात्र हों तो उनका अस्तित्व नीति प्रतिपादन के लिए ही होता है।

4- नीति कथाएं बच्चों के लिए उपयोगी व आकर्षक की वस्तु है क्योंकि इसमें सिंह, हाथी, सियार आदि जन्तु मानव के तुल्य व्यवहार करते दिखायी देते हैं।

5- नीति कथा के पात्र अपने चातुर्यपूर्ण कौशल से संकटों से मुक्त हो जाते हैं। उदाहरणः- वानर एवं मगर की कथा में नदी के मध्य भाग में पहुँचने पर मगर ने अपनी पीठ में सवार वानर को जब अपनी दुष्ट कामना बतायी तो उस समय वानर ने अपने चार्तुयपूर्ण बुद्धि से स्वंय को बचा लिया।

6- नीति कथा में प्राणी आलम्बन होते हैं क्योंकि उनकी अपनी एक कहानी है इसलिए उन्हें प्रधानता दी जाती है।

7- इसके प्रतिनिधि श्रृंगाल या वृषभ, मार्जार या नकुल आदि प्राणी होते हैं जो हमारे शिक्षक बनकर ही कथा में व्यवहार करते हैं उनके अनुभव व उनकी गलतियों से हमें कुछ न कुछ सीख मिलती है और हम लाभान्वित होते हैं।

8- नीति कथाओं के पात्र सीमित होते हैं।

9- विषय की दृष्टि से यदि देखा जाय तो नीति कथा एक कल्पित कथा है इसके दो कथानक होते हैं,एक वाच्य और दूसरा व्यंग्य। इसमें से जो वाच्य कथानक होता है उसमें कल्पना का रूप स्वाभाविक नहीं होता। जैसे- सियार, व्याघ्र, चूहे आदि पशु कैसे मनुष्य के समान विचार कर सकते हैं किन्तु व्यंग्य में अलिखित कथानक से मानव जीवन की अभिव्यक्ति होती है क्योंकि उसके पात्र मानव जीवन के दृश्यों को प्रस्तुत करते हैं।

10- नीति कथाएं मुख्यतया धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र और अर्थशास्त्र से संबद्ध हैं क्योंकि इससे नीति, धर्म, सदाचार व राजनीति की शिक्षा प्राप्त होती है।

11- इसमें पशु- पक्षियों की लीलाओं के माध्यम से नीति के मार्ग का अनुसरण होता है।

12- नीति कथाओं में मानव को सफलता की ओर ले जाने वाले आवश्यक सभी गुणों का वर्णन होता है और साथ ही साथ अपने लक्ष्य में आगे बढ़ने की प्रेरणा भी मिलती है।

13- व्यवहार ज्ञान के साथ-साथ ही नीति कथाओं में अपार सुख की प्राप्ति भी होती है।

14- नीति कथा के अन्तर्गत नीति का प्रतिपादन स्पष्ट शब्दों में किया जाता है। किसी सिद्धान्त या नीति का प्रतिपादन करना ही नीति कथा का प्रधान उद्देश्य है।

15- नीति कथा में कल्पना तत्त्व का बहुत ही निकटतम सम्बन्ध है क्योंकि पशु-पक्षियों की कहानी से मानवीय अर्थ की प्राप्ति यह कल्पना से ही सम्भव है।

16- नीति कथा का सबसे चरम उद्देश्य नीति की शिक्षा या पाठ देना है। इसमें सदाचार, दर्शन एवं व्यवहारज्ञान का सुन्दर सामंजस्य होता।

बोध-प्रश्नः-

1-नीचे जो प्रश्न दिये गये हैं, उनमें से तथ्य की दृष्टि से कुछ सही हैं और कुछ गलत हैं। सही वाक्यों के तथा गलत वाक्यों के सामने सही का चिह्न लगाइये- सामने कोष्ठक में

(क) संस्कृत साहित्य अत्यन्त विशाल एवं समृद्ध है,इसमें नीति ( )
कथाओं का भण्डार है।

(ख) विश्व साहित्य में भारतीय कथा साहित्य का कोई स्थान नहीं है। ( )

(ग) नीति कथाओं के पात्र मानवेतर प्राणी या पशु- पक्षी होते हैं। ( )

(घ) नीति कथाएं बच्चों के लिए उपयोगी व आकर्षक वस्तु नहीं है। ( )

14.6 नीति कथा की उत्पत्ति

इससे पूर्व के पृष्ठों में नीति कथा व उसकी विशेषताओं के सम्बन्ध मे चर्चा करने के पश्चात् इस अध्याय में नीति कथा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विचार करना आवश्यक है। कि किस प्रकार नीति कथा की उत्पत्ति हुई? व किन परिस्थितियों में संस्कृत साहित्य में इसका प्रारम्भ हुआ। यदि देखा जाय तो कथा अर्थात् कहानी का इतिहास बहुत पुराना है। प्राचीन समय में कहानी का स्वरूप मौखिक ही था। भारतीय पृष्ठभूमि के आधार पर नीति कथा की उत्पत्ति सर्वप्रथम भारत में ही हुई। मनुष्य के विकास के साथ- साथ उसका भी विकास हुआ। इससे लोक साहित्य की परम्परा का भी निर्माण हो गया।

लोक कथा:-

प्राचीन सभ्यता और संस्कृति हमें लोक साहित्य में दिखायी देती है। सर जेम्स फ्रेझर के अनुसार "लोक साहित्य में मानवीय मन के प्राचीन अवशेष प्राप्त होते हैं" लोक साहित्य के तीन मूल आधार हैं परम्परा, कर्म और विश्वास। किसी भी राष्ट्र में अपनी परम्परा की जिज्ञासा अर्थात् एक आकर्षण होता है। आदि मानव में तो अनेक प्रकार के विश्वास रहे हैं उनके अनुसार पशु-पक्षी एवं अचेतन पदार्थ भी मानव के तुल्य कार्य एवं वार्तालाप कर सकते हैं। बच्चे तो नीति कथाओं में यह विश्वास करते हैं कि पशु-पक्षी भी कभी बातचीत कर सकते थे। बाणभट्ट द्वारा रचित कादम्बरी में राजा शूद्रक के दरबार में एक शुक अपने पुर्नजन्म की कथा सुनाता है। कादम्बरी के अध्ययन के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि इस जन्म में जो पशु रूप में हैं वह किसी जन्म में मानव व मानव भी किसी जन्म में पशु रूप में अवश्य रहा होगा। इस आधार पर प्राणियों के मानव के समान व्यवहार की कल्पना की पुष्टि हुई व साथ- साथ उसे लोक साहित्य में स्थान भी मिल गया।यह भी कल्पना के आधार पर कहा गया कि प्राणियों के द्वारा मानव की सहायता की गई। अलेक्झांडर क्राप जो लोक साहित्य के महान विद्वान हैं उन्होंने अपने ग्रंथ में लोक साहित्य के जो प्रमुख अंग माने हैं उनमें से प्राणी कथा एक है इसका नीति कथा के लिए बड़ा महत्त्व है। यह भी माना जाता है। संस्कृत साहित्य में नीति कथा की उत्पत्ति के लिए प्राणी कथा का अध्ययन अति आवश्यक है क्योंकि कथा साहित्य को लोक साहित्य में इसलिए महत्त्व दिया गया है कि उसमें प्राचीन समय की कल्पित कथा तथा प्राणी कथा को मौलिक रूप देकर ग्रंथ में बद्ध किया है इसलिए नीति कथा की उत्पत्ति में प्राणी कथा का अत्यधिक महत्त्व है।

प्राणी कथा:- आदि मानव का वन्य जीवन से,पशु-पक्षी व प्रकृति से निकटतम सम्बन्ध स्थापित हो चुका था, उसने प्रणियों व प्रकृति को अपने जीवन का अभिन्न अंग के रूप में मानना आरम्भ कर दिया। जिस प्रकार से मानव स्वभाव भिन्न-भिन्न होता है उसी प्रकार पशु-पक्षियों का स्वभाव भी भिन्न होता है। पशु भी मानववत् व्यवहार कर सकते हैं व उनकी भी मानव के समान कहानी हो सकती है। प्राणी कथा की उत्पत्ति का आधार मानव वंश विज्ञान के जाति

विषयक है। यह सिद्धान्त टोटेनिज्म का सिद्धान्त कहलाता है यह सिद्धान्त हमें यह बताता है कि मानव के कुल व प्राणियों के जातियों की उत्पत्ति एक ही सामान्य प्राणी से हुई है क्योंकि मानव व प्राणियों में आदि काल से ही विश्वास रहा है। लोक कथा में जो प्राणी कथा प्राप्त हुई है उसका मूल आधार मानव की प्राणी प्रवणता है। प्राणी कथा का प्रचलन परम्परा से हो रहा था। प्रारम्भ से ही प्राणियों के दृष्टान्त लोकव्यवहार में दिये जाते थे।किन्तु जन समूह ने यह अनुभव किया कि वीर पुरूषों व देवताओं के दृष्टान्तों से लोगों पर अधिक अच्छा प्रभाव पड़ेगा किन्तु प्राणियों के दृष्टान्त सुनते ही प्रत्येक मानव के लिए यह बड़ी ही सुगमता से ग्राह्य हुए। प्राणी भी मानव के समान व्यवहार कर सकते हैं कभी ऐसा भी रहा होगा कि प्राणियों व मानव में कोई अन्तर न था। इस कारण से यह प्राणी दृष्टान्त सभी लोगों पर समान रूप से प्रभावशील हुए। इस कारण प्राणियों के इन दृष्टान्तों में धर्म व लौकिकता का तत्व है। प्राणी दृष्टान्त तो बाल व वृद्धें के अति प्रिय हो गये। इस कारण से कहानी के उपदेशकों व विचारकों को बहुत अधिक सफलता मिली। तत्पश्चात् धीरे-धीरे लोक वाणी में प्रचलित प्राणी कथा 'नीति कथा' परिवर्तित हो गयी अर्थात् नीति कथा बन गई। लोगों ने जिस परम्परा का निर्वाह किया वही नीति कथा लौकिक कथा में प्रचलन में रही। यदि देखा जाय तो पंचतंत्र इसका एक प्रत्यक्ष उदाहरण है। नीतिशास्त्र के आचार्यों ने यथावत् इसका उपयोग किया। नीति कथा की उत्पत्ति प्राणी कथा व नीति युक्त वचनों के एकीकरण से हुई। यदि देखा जाय तो वैदिक, जैन व बौद्ध ग्रंथों में कथायें यत्र-तत्र बिखरी पड़ी हैं इनका उद्देश्य जन-जन में सद्उपदेश देना है। ऋग्वेद के संहिता सूक्त में नीति कथायें प्राप्त होती हैं। वैदिक काल से ही पशु-पक्षियों के उदाहरणों के माध्यम से व्यावहारिक उपदेश देना प्रारम्भ हो चुका था। पुराणों में भी बहुत सी नीति कथायें प्राप्त होती हैं। महाभारत में विदुर, कणिक व भीष्म ने अनेक नीति कथायें कहीं हैं। सर्प कथा महाभारत में सर्वत्र पायी जाती है।यदि देखा जाय तो महाभारत का कथा साहित्य विविध रूपों से भरा पड़ा। 1550 विक्रम संवत् में नीति मंजरी का एक हस्तलेख प्राप्त है जिसका रचनाकाल 1400 ईसवी के लगभग सिद्ध होता है। इस ग्रंथ के माध्यम से वैदिक कहानियों की सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। यह सम्पूर्ण ग्रंथ अनुष्टुप् छन्द में निबद्ध किया गया है। "कथा कोष" जैन धर्मावलम्बियों का एक विस्तृत साहित्य है। इसी तरह से बौद्धों की मनोरंजक कथायें "जातक" के नाम से जानी जाती हैं यह भगवान बुद्ध के जन्मों की कथाओं से निबद्ध है। भारतीय नीति कथाओं के अनुवाद चीनी विश्वकोष में भी उपलब्ध होते हैं। पंचतंत्र संस्कृत नीति कथा का अत्यन्त प्राचीन व विश्व प्रसिद्ध ग्रंथ है। इसमें विष्णुशर्मा ने अनायास ही राजपुत्रों को नीतिशास्त्र का रहस्य ज्ञात कराने के लिए नीति कथा को अपनाया। पंचतंत्र पांच तंत्रों में निबद्ध है। पंचतंत्र के आधार पर ही नितान्त लोकप्रिय हितोपदेश नामक कथा ग्रंथ का निर्माण हुआ। इन सब प्रमाणों के आधार पर हम कह सकते हैं कि नीति कथाओं की उत्पत्ति भारत में ही हुई।

14 .7 संस्कृत साहित्य में नीति कथा की उत्पत्ति

पश्चिम के विद्वानों के अनुसार नीति कथाओं की उत्पत्ति पूर्व में ही हुई। प्राचीन समय में अधिकतर राजाओं का ऐकाधक्य था। क्योंकि दास व चाटुकार स्पष्ट शब्दों में अपने स्वामी को हितकारी बातें नहीं कर पाते थे इसलिए उन्होंने ज्ञान युक्त बातें कहने के लिए नीति कथाओं को

ही अपनाया। नीति कथा के माध्यम से ही दास अपने राजा को उसकी गलतियों पर पाठ सिखा सकते हैं। संस्कृत नीति कथा के उपदेशकों , आचार्यों व विद्वानों का राजा के दरबार में आदर होता था। प्राचीन समय में सूत ही सारथियों का कार्य करते थे। महाभारत के कर्ण पर्व में तो एक बार तो कर्ण के सारथि शल्य ने कर्ण को उसके घमंड पर अत्यधिक कोसा व नीति का पाठ सिखाने के लिए "हंस- काकीयोपाख्यान" नामक नीति कथा को कह सुनाया । इसी प्रकार महाभारत के शान्ति पर्व में भीष्म ने युधिष्ठर को नीति कथाओं के द्वारा उपदेश दिये, आदि पर्व में कणिक ने भी उपदेशों के लिए नीति कथा को ही अपनाया।

विष्णुशर्मा ने तो राजपुत्रों को नीतिशास्त्र का रहस्य जानने के लिए नीति कथा को अपनाया उनका विचार राजा की भर्त्सना करना नहीं था। मात्र छः महिने में ही विष्णुशर्मा ने राजपुत्रों को नीति शास्त्र का ज्ञाता बनाने की प्रतिज्ञा कर डाली। राजा अमरशक्ति से उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि मैं ये प्रतिज्ञा अवश्य करता हूँ कि यदि मैं आपके पुत्रों को छः माह में नीति शास्त्र का ज्ञाता न बना दूँ तो मैं अपना नाम त्याग दूँगा। क्योंकि उस समय राजा प्रकाण्ड विद्वानों की स्पष्ट रूप से कही बातों के लिए अभ्यस्त थे। अतः इन सब जानकारियों के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि संस्कृत नीति कथा की उत्पत्ति चाटुकारों व दासों के द्वारा नहीं बल्कि सारथि, विद्वान आचार्यों व सामजिक नेताओं के द्वारा हुई।

अभ्यास प्रश्नः -

2- रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये-

(क) प्राचीन सभ्यता और संस्कृति हमें--- में दिखायी देती है।

(ख) नीति कथा की उत्पत्ति---- व नीति युक्त वचनों के एकीकरण से हुई।

(ग) विष्णुशर्मा ने अनायास ही ---- को नीतिशास्त्र का रहस्य ज्ञात कराने के लिए नीति कथा को अपनाया।

(घ) --- दृष्टान्त तो बाल व वृद्धों के अति प्रिय हो गये।

15.8 नीतिकथाओं का विकास एवं महत्त्व

पिछले अध्याय में आपने जाना कि किस प्रकार से नीति कथा की उत्पत्ति हुई। अब हम उसके विकास व महत्त्व का अध्ययन करेंगे । नीति कथाओं में नीति युक्त वचन प्रयुक्त होते हैं । महाभारत, पंचतंत्र व हितोपदेश में नीति वचनों का प्रयोग हुआ है। भारतीय साहित्य में नीति कथाओं का विकास 300 ई के लगभग माना जा सकता है क्योंकि इसी समय संस्कृत नीति कथाओं महान ग्रंथ 'पंचतंत्र' का निर्माण हुआ। वैसे तो भारत में कथाओं का विकास बृहत्कथा के समय से हो चुका था किन्तु कथा व नीति कथा में अन्तर है,इसलिए पंचतंत्र से ही नीति कथाओं का विकास प्रारम्भ हुआ। पंचतंत्र में जितनी भी कथायें वे नितान्त प्राचीन हैं। पांच तंत्रों

में निबद्ध पंचतंत्र नामक नीति कथाओं का ग्रंथ अत्यन्त प्राचीन व विश्व प्रसिद्ध है।

15.9 पंचतन्त्र

भारत में एक समय ऐसा भी आया जब नीति कथाएं अपनी लोकप्रियता के शिखर पर पहुँच गयी थी। उस समय भारतीय नीति कथा ने पुनः विदेशों में इसका प्रचार व प्रसार किया। उनमें पंचतंत्र प्रमुख है । प्राणी प्रधान कथा ग्रंथ पंचतंत्र का नाम नीति कथा के रूप में विश्वप्रसिद्ध है । महाभारत व जैन साहित्य में इसके विकास के बीज उपलब्ध होते हैं। महाभारत में प्राप्त मार्जार व मूषिक संवाद, गृध व गोमायु संवाद, कपोत व व्याघ्र संवाद तथा व्याघ्र व गोमायु संवाद में जो पशु प्रधान कथाएं पंचतंत्र के लेखन में आधार भूत रही । जैन व बौद्ध साहित्य में कर्म एवं पुनर्जन्म के अन्योन्याश्रित सिद्धान्त के अनुसार पशुयोनि से मानवयोनि व मानवयोनि से पशुयोनि में जीवात्मा के जन्म लेने का जो विश्वास दिखता है उसके आधार पर मानव व पशु के बीच सम्बन्ध विद्यमान है।इसके रचयिता कर्मकाण्डी व नीतिशास्त्रज्ञ ब्राह्मण विष्णुशर्मा थे। इनके द्वारा रचित यह नीति ग्रंथ समाज के प्रत्येक वर्ग के लिए प्रेरणादायी होने के साथ-साथ लोकप्रिय है । अपने शिष्यों को सफलतापूर्वक शास्त्रज्ञान की शिक्षा प्रदान करने के कारण इन्हें कुशल आचार्य होने का यश प्राप्त था। भारत में ही नहीं विदेशों में भी यह सर्वश्रेष्ठ नीति ग्रंथ के रूप में प्रसिद्ध है। इसमें नीति की बड़ी शिक्षाप्रद, मनोहर व उपादेय कहानियां हैं व बीच-बीच में सुन्दर सूक्तियों का प्रयोग भी किया गया है। इस ग्रंथ के रचनाकाल के समय के बारे में पूर्ण जानकारी नहीं है लेकिन प्राप्त प्रमाणों के आधार पर पंचतंत्र का रचनाकाल 300 ई0 के लगभग माना जा सकता है।

पंचतंत्र की वाचनाएँ

पंचतंत्र यद्यपि आज अपने पूर्ण रूप में प्राप्त नहीं है किन्तु उसके कई संस्करणप्राप्त हुए हैं जिनके आधार पर उसके विषय की पूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। शोधकर्त्ता डॉ0 एजर्टन के अनुसार पंचतंत्र की आठ भारतीय वाचनाएँ प्राप्त होती हैं।

1- **तन्त्राख्यायिका -** डॉ0 हर्टेल ने पंचतंत्र की इस वाचना को प्राचीनतम माना है । तन्त्राख्यायिका का रचनाकाल 531ई0-579ई0 माना जा सकता है क्योंकि उसी समय फारस के बादशाह खुशरो नौशेरवां के आदेश पर इसका अनुवाद पहलवी में किया गया। पंचतंत्र का मूल रूप का निर्धारण इसी ग्रंथ के आधार पर होता है। डॉ0 हर्टेल को इसकी पाण्डुलिपियाँ कश्मीर में प्राप्त हुई जिस कारण इसे काश्मीरी वाचना कहा जाता है।

2- **दक्षिण भारतीय पंचतंत्र** - तमिल भाषा में रचित इस ग्रंथ में 96 कथाएं हैं।डॉ0 एजर्टन के मतानुसार इसमें मूल पंचतंत्र के दो तिहाई पद्य व तीन तिहाई गद्यों का संकलन है। दक्षिणापथ में स्थित महिलारोप्य नगर के उल्लेख के आधार पर पंचतंत्र की मूल वाचना का स्थान माना जाता है। इसमें तमिल जनपद की प्रचलित कथाओं का संग्रह है।

3- **नेपाली पंचतंत्र**- नेपाली वाचना के अन्तर्गत पंचतंत्र के गद्य व पद्य दोनों का अस्तित्व

प्राचीन समय में विद्यमान था। इस वाचना में जो भी श्लोक हैं वह दक्षिण भारतीय पंचतंत्र की वाचना में सर्वथा उपलब्ध हैं। लेकिन फिर भी विद्वानों ने नेपाली वाचना का स्रोत दक्षिण भारतीय पंचतंत्र से भिन्न माना है।

4- **पंचतंत्र का हितोपदेश संस्करण**- नारायण पंडित ने ईसा की नवीं शती के आसपास पंचतंत्र के आधार पर हितोपदेश नामक लोकप्रिय कथा ग्रन्थ की रचना की। पंचतंत्र की अपेक्षा संक्षिप्त व सरल रूप में बालकों को संस्कृत व नीति की शिक्षा प्रदान करना इसका एक मात्र उद्देश्य था। पंचतंत्र के पांच तन्त्रों के स्थान पर इसमें चार भागों में नीति कथा विभक्त है। जो इस प्रकार हैं- मित्रलाभ, सुहृदयभेद, विग्रह और सन्धि।

5- **बृहत्कथामंजरी के अन्तर्गत पंचतंत्र की कथा**- 11वीं शताब्दी में क्षेमेन्द्र द्वारा रचित बृहत्कथामंजरी के भीतर पंचतंत्र की कथा का संक्षिप्त रूप प्राप्त होता है। फ्रेंच विद्वान लाकोत का मत है कि पंचतंत्र की अत्यधिक प्रसिद्धि के कारण इसका सारांश बृहत्कथा के कलेवर में प्रविष्ट कर दिया गया। क्षेमेन्द्र द्वारा रचित पंचतंत्र की पद्यात्मक कथा में केवल पाँच ऐसी कथाएं उपलब्ध होती हैं जो केवल तन्त्राख्यायिका में प्राप्त हैं।

6- **कथा-सरित्सागर के अन्तर्गत पंचतंत्र की कथा**- सोमदेव द्वारा रचित कथासरित्सागर की कथाओं से सम्बन्धित लम्बक(परिच्छेद) में भी पंचतंत्र का संक्षिप्त संस्करण प्राप्त होता है किन्तु यह भी देखा गया है कि पंचतंत्र की रोचकता व भाषा-शैली इन दोनों ही पद्यात्मक संस्करणों में अभाव है।

7- **पश्चिम भारतीय पंचतंत्र**- विद्वानों के मतानुसार पश्चिम भारतीय पंचतंत्र में मूल पंचतंत्र का स्वरूप उपस्थित है व आज से लगभग 1000वर्ष पूर्व इसका प्रस्तुतीकरण भी हो चुका है।

8- **पंचाख्यान**- पूर्णभद्र सूरि नामक एक जैन विद्वान ने 1255वि0(1199ई0) में पंचाख्यान नामक पंचतंत्र की वाचना प्रस्तुत की। आज जो पंचतंत्र प्राप्त है वह इसी वाचना के ऊपर आधारित है। इस पंचतंत्र की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें 21 नई कथाओं का समावेश किया गया है। जैन लेखक मेघविजय द्वारा 1659-60 ई0 में इसी के आधार पर पंचाख्यानोद्धार नामक ग्रंथ उपलब्ध होता है इसका मुख्य उद्देश्य मुख्य रूप से बालकों को शिक्षा देने के लिए किया गया है व साथ ही इसमें कई नई कहानियां जोड़ी गयी हैं।

9- **डॉ0 एजर्टन द्वारा प्रस्तुत पंचतंत्र का संस्करण**- विद्वान एजर्टन ने पंचतंत्र की उत्पत्ति व विकास की सभी वाचनाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया व उससे प्राप्त तथ्यों से उन्होंने एक "पुनर्निमित संस्करण " प्रस्तुत किया। डॉ0 एजर्टन का कथन- "जब हम इसकी अन्य वाचनाओं के साथ तुलना करते हैं तब यह तथ्य पूर्णरूप से स्पष्ट हो जाता है कि यह न केवल साहित्यिक सौन्दर्य की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ कृति है अपितु यह एक सबसे सुन्दर, परिष्कृत एवं निपुणतम रचना है"डॉ0 वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार- " यह पंचतंत्र निश्चय ही महान् साहित्यकार की विलक्षण कलापूर्ण रचना है जिसमें लेखक की प्रतिभा द्वारा कहानियों और संवाद अत्यन्त ही सजीव हो उठे हैं।"

पंचतंत्र का उद्देश्य

विष्णुशर्मा द्वारा रचित पंचतंत्र पंच तंत्रों में निबद्ध नीति ग्रंथ है। इसमें मित्रभेद, मित्रलाभ, काकोलूकीय, लब्धप्रणाश तथा अपरीक्षित कारक हैं। प्रत्येक तंत्र में कथा मुख्य रूप से एक ही है उसी के आधार पर अनेक गौण कथायें कही गई। विष्णुशर्मा एक प्रकाण्ड विद्वान व धर्मशास्त्री थे। पंचतंत्र के विषय में एक कथा प्रसिद्ध है कि भारत के दक्षिण में महिलारोप्य नामक एक नगर था उसमें अमरशक्ति नामक राजा राज्य करते थे। धन-सम्पन्न होने के बाद भी राजा बहुत दुःखी रहते थे क्योंकि उनके तीनों ही पुत्र बहुशक्ति, उग्रशक्ति व अनन्तशक्ति नामक विवेकहीन, शास्त्रविमुख व महामूर्ख थे। राजा को अपने पुत्रों को विद्वान बनाने के लिए योग्य गुरू की आवश्यकता थी। तभी उन्हें विष्णुशर्मा नामक नीतिज्ञ ब्राह्मण मिले उन्होंने अपने तीनों मूर्ख पुत्रों को विष्णुशर्मा को सौंप दिया। जब आचार्य विष्णुशर्मा ने राजकुमारों को शिक्षा देने का कार्यभार ग्रहण किया था उस समय वे अपनी अवस्था के 80 वर्ष पूर्ण कर चुके थे। अर्थ इच्छा से रहित इन्द्रिया शक्ति से शून्य उस निडर आचार्य ने राजसभा में ऐसी प्रतिज्ञा ली कि सभी आश्चर्य से अवाक् रह गये। मात्र छः माह में ही राजकुमारों को नीतिशास्त्र का ज्ञाता बनाने का राजा को आश्वासन दिया। तब विष्णुशर्मा ने छःमाह में ही स्वरचित पंचतंत्र के पांच तंत्रों की रचना के माध्यम से राजकुमारों को नीति शास्त्र का पारंगत बना दिया। पंचतंत्र की रचना का मुख्य उद्देश्य नीति व सदाचरण की शिक्षा देना है।

पंचतंत्र की शैली

पंचतंत्र में पशु-पक्षी नीति एवं लोक व्यवहार के विषय में वार्तालाप करते हैं, इस ग्रंथ की भाषा मुहावरेदार व सरल है। ग्रंथ में सरल वाक्यों का प्रयोग किया गया है जिससे उसके भावों को समझने में दुरूहता नहीं होती है। उपदेशात्मक सूक्तियां पद्यों में व ग्रंथ के कथानक का वर्णन गद्यों में किया गया है। ग्रंथ के प्रत्येक पृष्ठ पर ग्रंथकार की नीतिमत्ता झलकती है। पंचतंत्र की सूक्तियां महाभारत, रामायण व जातक नीति ग्रंथों से संगृहित हैं। पंचतंत्र विश्व साहित्य की विभूति के रूप मेंदो महान विद्वान डॉ0 बेनफी व डॉ0 हर्टर जिन्हें पंचतंत्र के विशाल अनुसंधान का श्रेय दिया जाता है। डॉ0 बेनफी ने यूरोप, एशिया व अफ्रीका जैसे बड़े देशों में भारतीय नीति कथा का प्रसार किया। पंचतंत्र की कथाओं को विश्वप्रसिद्ध बनाने में डॉ0 बेनफी का महत्त्वपूर्ण योगदान है। डॉ0 हर्टर ने पंचतंत्र के साहित्यिक रूप व कथा साहित्य के विषय में विस्तृत एवं विशद अनुशीलन किया। विद्वानों के प्रमाणों के अनुसार पंचतंत्र केवल भारतीय साहित्य का ही अंग न होकर विश्व साहित्य का भी आदरणीय व सम्माननीय अंग है। डॉ0 हर्टर के अनुसार तन्त्राख्यायिका पंचतंत्र का मूलरूप है। विश्वसाहित्य के लिए पंचतंत्र एक महान रचना व वरदान स्वरूप है। छठी शती में इसका प्रसार फारस तक हो चुका था। खुसरो नौशेरखां के आदेशानुसार बुरजोई नामक हकीम ने इसका पहलवी भाषा में अनुवाद किया। किन्तु आज यह उपलब्ध नहीं है। सीरियन व अरबी भाषा में इसका रूपान्तर प्राप्त होता है। लगभग 570ई0के आसपास इसका 'कलिलंग' व 'दमनग' नाम से सीरियन भाषा में अनुवाद किया। 10-11वीं शती में इसका अनुवाद अरबी से पुनः सीरियन भाषा में किया गया। अंग्रेजी में इसका अनुवाद सर टामस नार्थ ने किया 1590 में प्रथम बार किया व 1601 में इसका पुनः मुद्रित किया। पंचतंत्र का

विश्व की कई भाषाओं में अनुवाद हुआ । इस प्रकार से यदि देखें तो पंचतंत्र की लोकप्रिय कहानियां चीन से लेकर अरब देशों तक फैल गयी।

14.10 हितोपदेश

नीति कथाओं में पंचतंत्र पर आधारित हितोपदेश नामक लोकप्रिय ग्रंथ है।पण्डित श्री नारायण शर्मा ने राजा धवलचंद्र की प्रेरणा से ही इस महान ग्रंथ की रचना की ऐसा माना जाता है क्योंकि उनके आश्रयदाता राजा धवलचंद्र ही थे । इसके चार भाग हैं- मित्रलाभ, सुहृदभेद, विग्रह व सन्धि,जिनमें पंचतंत्र के पांचों तन्त्रों को समाविष्ट किया गया है। हितोपदेश नामक ग्रंथ वार्तालाप करने में पटुता के साथ-साथ नीति सम्बन्धी विद्या को भी प्राप्त कराता है। हितोपदेश के विषय में एक कथा प्रचलित है- पाटलिपुत्र नामक नगर में सुदर्शन नामक राजा राज्य करते थे । उनके चार पुत्र थे जो अनपढ़ थे । समय बीतने के साथ राजा को अपने अनपढ़ पुत्रों के विषय में चिन्ता होने लगी । तब राजा ने नीतिशास्त्रज्ञ पं0 विष्णुशर्मा को बुलाकर कहा कि मेरे इन अनपढ़ पुत्रों को आप नीति शास्त्र का उपदेश देकर शिक्षित करें । तत्पश्चात् विष्णुशर्मा ने राजपुत्रों को जो हितकारी उपदेश दिये वही हितोपदेश के नाम से प्रसिद्ध हुए । हितोपदेश के मित्रलाभ में 8,सुहृदभेद में 10,विग्रह में 10 व संधि में 13 कथायें वर्णित हैं।

हितोपदेश का उद्देश्य

हितोपदेश हितकारी नीतियों का ही उपदेश है। इसके अध्ययन से हमें व्यवहारिक ज्ञान प्राप्त होता है । बालकों को कथा के माध्यम से नीति की शिक्षा देना हितोपदेश का मुख्य उद्देश्य है,यह ग्रंथ अपने उद्देश्य की पूर्ति में पूर्णरूपेण सफल भी हुआ है ।

हितोपदेश की शैली

हितोपदेश में सूक्तियां पद्यों में दी गयी हैं व कहानी गद्य में है । पंचतंत्र की अपेक्षा हितोपदेश में पद्यों की संख्या अधिक है कहीं तो इनकी संख्या इतनी अधिक है कि कथा प्रवाह में स्वाभाविकता का अभाव है । हितोपदेश संस्कृत की प्रथम पुस्तक मानी जाती है । इसकी भाषा सरल व सुबोध है जिसे सरलता से समझा जा सकता है । अधिकतर पद्यों में अनुष्टुप छन्द का प्रयोग हुआ है । इस ग्रंथ का एक नेपाली हस्तलेख 1373 ई0 में प्राप्त हुआ है। अतः इसका रचनाकाल 12वीं शती से पूर्व होना चाहिए देखा जाय तो लगभग11वीं शती में। इस ग्रंथ में नीति विषयक पद्यों की संख्या 679 हैं । इस ग्रंथ के लेखन कार्य में केवल पंचतंत्र का ही नहीं बल्कि धर्मशास्त्र, महाभारत ,चाणक्यनीति व कामन्दकीय का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है । अत्यन्त सरल व सुबोध उपदेशों से परिपूर्ण इसकी नीति कथायें मानव को प्रेरणा देती हैं।

हितोपदेश का प्रचार

जैसा आपको विदित ही है हितोपदेश में हितकारी उपदेशों का प्रचुर भण्डार है । इसके देशकालके विषय का परिचय नहीं मिलता है मित्रलाभ की षष्ठ कथा 'गौरीव्रत" में इसके उद्गम स्थल बंगाल का उल्लेख है यह माना जा सकता है वहां तान्त्रिक पूजा का अत्यधिक प्रचलन था। क्योंकि यह ग्रंथ पंचतंत्र की अपेक्षा विशाल है इसमें पद्यों की संख्या भी अधिक है जिस

कारण भारत में इसका प्रचार अधिक हुआ। यूरोप की अनेक भाषाओं में इसका अनुवाद हुआ है। जिससे यह ज्ञात होता है कि इसकी लोकप्रियता विश्वव्यापी है।

अभ्यास प्रश्न .

3- निम्न प्रश्नों के उत्तर दीजिये-

(1) पंचतंत्र के रचयिता कौन हैं

(क) शूद्रक (ग) कालिदास

(ख) विष्णुशर्मा (घ) नारायण पंडित

(2) हितोपदेश की कथाओं को कितने भागों में बांटा गया है।

(क) 2 (ग) 4

(ख) 7 (घ) 8

4- रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये-

(क) नीति कथाओं का---- 300ई0 के लगभग माना जा सकता है

(ख) पंचतंत्र की प्राचीनतम वाचना----- है।

(ग) हितोपदेश में----उपदेशों प्रचुर भण्डार है।

(घ) विष्णुशर्मा द्वारा रचित----पांच तंत्रों में निबद्ध ग्रंथ है

14.11 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप ये जान चुके हैं कि नीति कथा की उत्पत्ति किस प्रकार हुई। पाश्चात्य व भारतीय विद्वानों व समीक्षकों के अनुसार संस्कृत नीति कथाओं की उत्पत्ति भारत में ही हुई है। उत्पत्ति के साथ-साथ आप विकास से भी परिचित हुए। नीति सम्बन्धी कथाएं कल्पना शक्ति पर आधारित होती हैं क्योंकि इसमें पशु-पक्षी मानव के समान व्यवहार करते हैं जो असम्भव है ये कथाकार की कल्पना ही तो है। इन कथाओं में हास्य , कौतूहल व उत्सुकता की छटा होती है। इस इकाई में आपने कथाओं के लोकप्रिय व विश्वव्यापी ग्रंथ पंचतंत्र व हितोपदेश का अध्ययन किया। जो आपके लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

14.12 शब्दावली

शिक्षाप्रद - शिक्षा प्रदान काने वाली

चातुर्यपूर्ण - चतुरता से

श्रंगाल - सियार

मार्जार - बिल्ली

अर्थ - धन

जिज्ञासा - किसी चीज के विषय में जानने की इच्छा

चाटुकार - राजा की प्रशंसा करने वाले

सारथि - रथ हांकने वाला

प्रकाण्ड - अत्यधिक विद्वान (सभी शास्त्रों का ज्ञाता)

पारंगत - निपुण

दुरूहता - कठिनता

14.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1- (क) (ख) (ग) (घ)

2- (क) लोक साहित्य (ख) प्राणी कथा (ग) राजपुत्रों

(घ) प्राणी

3- (1) ख- विष्णुशर्मा

(2) घ- 4

4- (क) विकास (ख) तन्त्राख्यायिका (ग) हितकारी (घ) पंचतंत्र

14.14 संदर्भ ग्रंथ सूची

(1) डॉ0 प्रभाकर नारायण कवठेकर- संस्कृत साहित्य में नीतिकथा का उद्भव एवं विकास चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस ,वाराणसी

(2) पद्मभूषण आचार्य बलदेव उपाध्याय-संस्कृत साहित्य का इतिहास प्रकाशक-शारदा निकेतन 5बी, कस्तूरबा नगर, सिगरा वराणसी-221010

(3) पद्मभूषण आचार्य बलदेव उपाध्याय- संस्कृत वाङ्मय का बृहत् इतिहास प्रकाशकडॉ0 सच्चिदानन्द पाठक निदेशक उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान

14.15 उपयोगी पुस्तकें

(1) डॉ0 कपिल देव द्विवेदी- संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास प्रकाशक रामनारायण लाल विजय कुमार, इलाहाबाद

(2) डॉ0 सत्यनारायण पाण्डेय- संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, प्रकाशकसाहित्य भंडार

(3) वी0 वरदाचार्य - संस्कृत साहित्य का इतिहास,प्रकाशक रामनारायण लाल, बेनी प्रसाद, इलाहाबाद

14.16 निबंधात्मक प्रश्न

1- नीति कथा के अर्थ को समझाते हुए उसकी विशेषताओं पर प्रकाश डालिये।

2- पंचतंत्र के विषय में विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिये।

3- नीति कथा की उत्पत्ति को बताते हुए हितोपदेश के महत्व का वर्णन कीजिये।

इकाई 15 – हितोपदेश की कथाओं का सारांश

इकाई की रूपरेखा –

15.1 प्रस्तावना
15.2 उद्देश्य
15.3 प्रथम भाग मित्रलाभ का सारांश
15.4 द्वितीय भाग सुहृद्भेद का सारांश
15.5 तृतीय भाग विग्रह का सारांश
15.6 चतुर्थ भाग सन्धि का सारांश
15.7 सारांश
15.8 शब्दावली
15.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
15.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
15.11 सहायक पाठ्य सामग्री
15.12 निबन्धात्मक प्रश्न

15.1 प्रस्तावना

हितोपदेश से सम्बन्धित यह दूसरी इकाई है। इससे पूर्व की इकाई के अध्ययन से आपने जाना कि नीति कथाओं का किस प्रकार विकास हुआ एवं इसकी कथाओं से प्राप्त शिक्षाओं का मानव जीवन में क्या महत्व है।

नीतिकथाओं के विकास एवं महत्व के अध्ययन के पश्चात आप इस इकाई में हितोपदेश की कथाओं का अध्ययन करेगें हितोपदेश की कथायें चार भागों में विभक्त है 1- मित्रलाभ 2- सुहृद्भेद 3- विग्रह 4- सन्धि। इन चार भागों की मूल कथाओं के साथ ही कुछ अन्तर्कथायें भी हैं।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप हितोपदेश की कथाओं का सार बता पायेगें। तथा पशु-पक्षियों की कथाओं के माध्यम से प्राप्त शिक्षाओं का मानव-जीवन में क्या महत्व है यह भी समझा पायेगें।

15.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप —

- हितोपदेश की कथाओं से परिचित हो पायेगें।
- यह बता पायेगें कि इस ग्रन्थ की रचना पाटलिपुत्र के राजा सुदर्शन के मूर्ख पुत्रों को गुणवान एवं सदाचारी बनाने के लिये की गई।
- समझा सकेगें कि राजनीति में अपनी सत्ता को बनाये रखने के लिए शत्रु के सुहृद्धों (मित्रों) में भेदनीति से फूट डालना किसी भी विद्वान राजा के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है।
- समझा सकेगें कि मन्त्रियों की दूरदर्शिता से ही दो राज्यों में सन्धि संभव हो सकी।

15.3 प्रथम भाग मित्रलाभ का सारांश

इस ग्रन्थ के मित्रलाभ भाग में कुल 216 श्लोक हैं , जिनमें यह बताया गया है कि किसी भी प्रकार का साधन या धन ना होने पर भी विवेकपूर्ण मित्रता से संगठित होकर असाध्य कार्य को भी सरलता से सम्पन्न किया जा सकता है। इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए पण्डित विष्णुशर्मा ने राजकुमारों को कौआ, कछुआ, हिरण और चूहा से सम्बन्धित मित्रता की अनेक कथायें सुनाई जो इस प्रकार हैं —

चित्रग्रीव और हिरण्यक की कथा -

गोदावरी नदी के तट पर एक विशाल सेमल का वृक्ष था, जिस पर विभिन्न दिशाओं से आकर पक्षी रात्रि में निवास करते थे। एक दिन प्रात:काल लघुपतनक नामक कौऐ ने एक व्याध को

हाथ में जाल लिए आते हुए देखा। ऐसा देखकर उसने सोचा कि आज प्रात:काल ही अनिष्ट के दर्शन हुए हैं पता नहीं किस विपत्ति का सामना करना पडेगा यह सोचकर वह उसके पीछे-पीछे चल दिया। उस बहेलिये ने पृथ्वी पर चावल बिखेर कर जाल बिछा दिया और स्वयं छिपकर बैठ गया। उसी समय चित्रग्रीव नामक कबूतरों का राजा अपने परिवार तथा अन्य मित्र कबूतरों के के साथ आकाश में उड रहा था उसने चावल के कणों को देखकर कहा इसमें अवश्य ही कोई धोखा है अत: हमें इसे खाने का लोभ नहीं करना चाहिए। परन्तु उसके साथी कबूतरों ने बात नही मानी फलस्वरूप वे सभी जाल में फँस गये। अब वे सब पछताने लगे उन्हें आपत्ति में फँसे देखकर चित्रग्रीव ने कहा कि सभी एक साथ ताकत लगाकर जाल को लेकर उड चलो। सभी कबूतरों ने ऐसा ही किया और शिकारी निराश हो गया। जाल लेकर वे गण्डकी नदी के किनारे चित्रवन में पहुंचे जहाँ हिरण्यक नामक चूहों का राजा रहता था जो चित्रग्रीव का मित्र था। हिरण्यक ने जाल काटकर उन सबको बन्धन मुक्त कर दिया। इस प्रकार इस कहानी से यह शिक्षा प्राप्त होती है कि छोटे या बडे सभी से मित्रता करनी चाहिये क्योंकि मित्र चूहे के कारण ही सभी कबूतर बन्धन मुक्त हुए।

वृद्ध व्याघ्र और लोभी पथिक की कथा-

दक्षिण दिशा में दण्डकारण्य नामक वन है, वहाँ किसी समय एक व्याघ्र रहता था। वृद्ध हो जाने के कारण वह शिकार करने में असमर्थ हो चुका था। एक बार वह स्नान करके हाथ में कुश और सोने का कंगन लेकर तालाब के किनारे बैठ गया। जो यात्री तालाब के किनारे से निकलता , उससे वह कहता कि है कि हे यात्रियों ! आप मुझसे यह सोने का कंगन दान में ले लो , किन्तु मृत्यु के भय से कोई भी उस सुवर्ण कंकण को ग्रहण करने के लिये व्याघ्र के समीप नहीं जाता था । किसी समय एक लोभी पथिक उस तालाब के किनारे से गुजर रहा था, व्याघ्र ने उसे भी सोने के कंगन का लालच दिया। पथिक ने कहा – तुम हिंसक प्राणी हो तुम्हारा क्या भरोसा ? व्याघ्र ने कहा – मैंने अपनी युवावस्था में बहुत से प्राणियों का वध किया है और इसी पाप कर्म के कारण मैं निर्वंश हो गया हूँ, अपने इन्हीं पापों के प्रायश्चित के लिए तुम्हें यह सोने का कंगन देना चाहता हूँ, तुम तालाब में स्नान करके इसे ग्रहण कर लो। पथिक ने सुवर्ण कंकण के लोभ में व्याघ्र की बात मान ली और वह स्नान करने के लिए तालाब में उतर गया। तालाब में पानी कम और कीचड अधिक था वह उस कीचड में धँस गया। अब वह वहाँ से भागने में असमर्थ था। व्याघ्र ने उस लोभी पथिक का भक्षण कर लिया। इसीलिये कहा जाता है कि कभी लोभ नहीं करना चाहिये।

हिरण, कौआ, और सियार की कथा

मगध प्रान्त में चम्पक वन में मृग तथा कौआ दो मित्र रहते थे। एक बार मृग पर किसी श्रृगाल की दृष्टि पडी। श्रृगाल के हृदय में उस मृग का माँस खाने की इच्छा हुई। इस उद्देश्य से उसने मृग के साथ मित्रता कर ली। सांयकाल जब वह उस श्रृगाल के साथ अपने निवास स्थान पर पहुँचा तो मृग के मित्र कौवे ने कहा – इस श्रृगाल से मित्रता करना उचित नहीं है क्योंकि अपरिचित से मित्रता अच्छी नहीं होती। इसी प्रसंग में वह जरद्गव तथा मार्जार की कथा सुनाता है। परन्तु क्षुद्रबुद्धि नामक वह सियार सुबुद्धि नामक कौवे के कथन का विरोध करते हुए कहता है कि प्रथम

दिन तुम भी अचानक आये हुए अज्ञातकुलशील ही थे, फिर तुम दोनों की मैत्री कैसे दिनोंदिन बढ़ रही है ? यह अपना है यह पराया है इस प्रकार का विचार तो तुच्छ मानसिकता वाले ही करते है उदार हृदय वालों का तो प्राणीमात्र ही परिवार होता है। इसके बाद वह तीनों एक साथ रहने लगे।

एक दिन सियार ने वन में स्थित एक खेत में जाकर मृग को वहाँ चरने की सलाह दी। वह मृग वहाँ प्रतिदिन जाकर चरने लगा। दुर्भाग्य से एक दिन उस खेत के स्वामी द्वारा बाँधे हुए जाल में मृग फँस गया। मृग ने सियार से आग्रह किया कि वह उसके बन्धनों को काट दे ,किन्तु सियार ने रविवार व्रत का बहाना बनाकर स्नायुनिर्मित बन्धनों को स्पर्श न करने की बात कहकर उसे टाल गया। इधर प्रतिदिन के समान सांयकाल होने पर भी मृग के घर वापस न लौटने पर सुबुद्धि कौआ उसे ढूँढता हुआ वन में आया और मृग को इस प्रकार जाल में फँसा हुए देखकर बोला – हे मित्र ! यह क्या ! तब रोते हुए मृग ने कहा कि मित्र की बात ना मानने का फल भोग रहा हूँ। कौवे ने कहा कि मैंने पहले ही कहा था कि दुष्ट का साथ कदापि नहीं करना चाहिये। फिर कौवे ने पूछा कि वह दुष्ट सियार कहाँ है इस पर मृग ने कहा कि वह मेरा माँस खाने के लिए यहीं छिपा बैठा है। तब कौवे ने कहा कि मैं जैसा कहता हूँ तुम वैसा ही करना अभी क्षेत्रपति आयेगा तुम मृतवत् हो जाना। मैं तुम्हारी आँख कुरेदता रहूँगा यह देखकर क्षेत्रपति तुम्हें मृत समझ कर जाल उठा लेगा। मेरे काँव-काँव करते ही तुम उठ कर भाग जाना। मृग ने वैसा ही किया। मृग के इस प्रकार भाग जाने पर क्रुद्ध क्षेत्रपति ने लाठी मृग की तरफ फेंकी ,जो पास में छिपकर बैठे सियार को लगी और वह मारा गया।

जरद्गव गीध तथा दीर्घकर्ण बिलाव की कथा

गंगा नदी के तट पर गृध्रकूट नामक पर्वत पर एक विशाल पर्कटी का वृक्ष था। उसके कोटर में एक वृद्ध गीध रहता था, जिसका नाम जरद्गव था। वह अत्यन्त निर्बल होने के कारण भोजनार्जन में सक्षम नहीं था जिस कारण वह उसी वृक्ष पर निवास करने वाले पक्षियों के बच्चों की देखभाल करता था जिसके बदले में सभी पक्षी अपने आहार में से कुछ भाग बचाकर उसे दे देते थे। एक बार दीर्घकर्ण नामक बिलाव वहाँ आया तथा चालाकी से अपनी बातों में जरद्गव को फँसाकर वहीं वृक्ष पर रहने लगा। कुछ दिन शान्त रहकर बाद में वह पक्षियों के बच्चों को खाने लगा तथा उन की हड्डियाँ जरद्गव के कोटर में डालने लगा। जिन पक्षियों के बच्चों को बिलाव ने खा लिया था वे पक्षी अपने बच्चों को इधर-उधर ढूँढने लगे। यह जान कर वह बिलाव धीरे से वहाँ से भाग गया तथा उसके कोटर में पडी हुई हड्डियों को देखकर इस गीध ने ही हमारे बच्चों को खाया है ऐसा निश्चय कर उसे उन पक्षियों ने मिलकर मार डाला। इसीलिए नीतिकारों ने कहा है – अज्ञातकुलशील को आश्रय नहीं देना चाहिए।

मूषकपरिव्राजक – कथा

चम्पक नामक नगरी में सन्यासियों का एक मठ था। वहाँ चूडाकर्ण नामक एक सन्यासी रहता था। भिक्षान्न से अवशिष्ट भोजन को वह खूँटी पर टाँग देता तथा वहीं सोता था। मै उस भोजन को कूद-कूद कर खाया करता था। एक बार उसका मित्र वीणाकर्ण नामक सन्यासी आया ,वीणाकर्ण के द्वारा विभिन्न कथा प्रसंगों मे उसका मन नहीं लग रहा था। यह देखकर वीणाकर्ण

ने उसका कारण पूछा । तब चूडाकर्ण ने कहा कि यह अल्प बल वाला चूहा भिक्षान्न से अवशिष्ट भोजन को कूद-कूद कर खाया करता है । वीणाकर्ण ने कहा – छोटा सा चूहा इतना ऊँचा उछलता है इसमें कोई न कोई कारण अवश्य होना चाहिए बिना कारण के ऐसा नहीं हो सकता । इससे यह स्पष्ट होता है कि इसने बहुत सा धन एकत्रित कर लिया है । इसी एकत्रित धन के अभिमान से यह बहुत कूद रहा है । यह कहकर उसने चूहे के बिल को खोदा और उसका सारा धन ले लिया । एक दिन शक्तिहीन चूहें को धीरे-धीरे चलता देखकर वीणाकर्ण ने कहा " मित्र चूडाकर्ण ! धनहीन इस चूहे को देखो कितना धीरे-धीरे चल रहा है "। इसीलिए नीति भी कहती है कि " समस्त धनवान इस संसार में सर्वत्र सदा ही बलवान रहतें हैं " । क्योंकि राजा को भी प्रभुता धन से ही प्राप्त होती है ।

भैरव व्याघ्र तथा लोभी श्रृगाल की कथा

कल्याण कटक नामक देश में भैरव नामका एक व्याघ्र रहता था । एक बार वह शिकार खेलने के लिए जंगल में गया तथा बाण से एक मृग को मार कर घर को लौटते समय उसने एक बडे सुअर को देखा । उसने मृग को नीचे रखकर उस सुअर पर बाण चला दिया । बाण लगने से क्रुद्ध सुअर ने शिकारी के अण्डकोश पर प्रहार किया जिससे वह उसी समय गिर कर मर गया । गिरने से उसके नीचे दब कर एक सर्प भी मर गया । इधर बाण की पीडा से व्याकुल होकर सुअर भी मर गया । इतने में कहीं से घूमता हुआ एक लोभी श्रृगाल वहाँ आया तथा मरे हुए सर्प, व्याघ्र, सुअर तथा शिकारी के धनुष को देखकर विचार करने लगा – आज तो खूब भोजन प्राप्त हो गया यह चार महीने तक चलेगा । अत: आज तो तेज भूख में धनुष की डोरी को ही खाया जाय । ऐसा विचार कर जैसे ही उसने धनुष की डोरी को खाने के लिए काटा वैसे ही धनुष उछला और उछलकर उसके पेट में लगा और वह भी वहीं मर गया । इसीलिए नीतिकारों के द्वारा कहा गया है कि संचय तो करना चाहिए किन्तु बहुत अधिक संचय नहीं करना चाहिये ।

कर्पूर तिलक हाथी एवं धूर्त श्रृगाल की कथा

ब्रह्मारण्य में कर्पूर तिलक नाम का एक हाथी रहता था । उसे देखकर जंगल के सियारों ने विचार किया कि किसी तरह यह हाथी मर जाये तो हम सबकों इच्छानुसार चार मास का भोजन प्राप्त हो जायेगा । यह सुनकर एक सियार ने प्रतिज्ञा की ' मै उसको अपनी बुद्धि से मारूँगा' । ऐसा कहकर उसने कर्पूरतिलक हाथी के पास जाकर साष्टांग प्रणाम करके कहा – जंगल में रहने वाले सब पशुओं ने मिलकर मुझे आपके पास भेजा है कि बिना राजा के रहना अच्छा नहीं है और इस समय राजा होने के योग्य आप ही हैं । इसलिए राज्याभिषेक का शुभ मुहूर्त कहीं बीत ना जाये आप शीघ्र ही मेरे साथ चलिये । कर्पूरतिलक तत्काल उसके साथ चलने को तैयार हो गया तथा मार्ग में दलदल में फँस गया । दलदल में फँसकर कहने लगा कि अब मैं क्या करूँ? यह सुनकर उस सियार ने कहा कि मेरे जैसे नीच का विश्वास करने का फल भोगों । इस प्रकार दलदल में फँसा हुआ वह हाथी मर गया । इसीलिए नीतिकारों ने कहा है कि ' जो कार्य उपाय से हो उसे पराक्रम से नहीं करना चाहिए ।

अभ्यास प्रश्न — 1

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1• मित्रलाभ भाग में कुल ---------- श्लोक हैं।

2• गोदावरी नदी के तट पर एक विशाल ---------- का वृक्ष था।

3• ब्रह्मारण्य में ---------- नाम का एक हाथी रहता था।

4• ---------- नामक देश में भैरव नामका एक व्याघ्र रहता था।

5• चम्पक वन में ---------- तथा कौआ दो मित्र रहते थे।

6• चूडाकर्ण का मित्र ---------- नामक सन्यासी था।

अभ्यास प्रश्न — 2

निम्नलिखित बहुविकल्पीय प्रश्नों में से सही उत्तर चुनकर लिखिए।

1• पंचतन्त्र के लेखक है —

नारायण पण्डित

विष्णुशर्मा

राजशेखर

इनमें से कोई नहीं

2• चित्रग्रीव कौन था —

चूहा

व्याघ्र

कबूतरों का राजा

मृग

3• व्याघ्र दान में क्या देना चाहता था —

सुवर्णकंकण

भोजन

सुवर्णहार

अन्न

4• हिरण्यक कौन था —

बन्दर

बिल्ली

चूहा

कच्छप

5• हितोपदेश से किस प्रकार की शिक्षायें प्राप्त होती है —

नीतिपरक

सुनीतिपरक

ऐतिहासिक

राजनीतिक

6• हितोपदेश किसकी रचना है —

कालिदास

शूद्रक

विष्णुशर्मा

नारायण पण्डित

15.4 द्वितीय भाग सुहृद्भेद का सारांश

हितोपदेश का द्वितीय भाग सुहृद्भेद राजनीति, विशेषकर कूटनीति की दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण है , क्योंकि राजनीति में शत्रु का शत्रु मित्र और मित्र का शत्रु शत्रु माना जाता है। इसलिए किसी भी बुद्धिमान राजा को शत्रु के सुहृद्धों में भेदनीति से फूट डालना अत्यन्त आवश्यक होता है। इस भाग में शत्रु के मित्रों में फूट उत्पन्न करके अपने कार्य की सिद्धि के उपाय बतायें गये हैं जो 184 श्लोकों में संगृहीत हैं। इस भाग का कथासार इस प्रकार है —

संजीवक और पिंगलक की कथा (मूलकथा का सारांश) -

दक्षिणापथ में सुवर्णवती नाम की एक नगरी थी। जिसमें वर्धमान नाम का एक धनी बनिया रहता था। एक बार वह व्यापार के उद्देश्य से गाडी में बहुत सी वस्तुयें भरकर नन्दक और संजीवक नामक दो बैलों को जोतकर कश्मीर की ओर चला , किन्तु सुदुर्ग नामक विशाल वन में घुटना टूट जाने के कारण संजीवक गिर पडा , तब वणिक ने उसे वहीं छोडकर दूसरा बैल खरीद कर गाडी में जोत लिया और आगे चल दिया। उधर संजीवक भी कुछ दिनों में स्वस्थ हो गया और इच्छानुसार आहार-विहार करने वह हृष्ट– पुष्ट हो गया। उस वन का राजा पिंगलक नामका एक शेर था। एक बार वह प्यास से व्याकुल होकर पानी पीने के लिए यमुना नदी के किनारे गया। उसी समय उसे वहाँ मेघों के गम्भीर गर्जन के समान संजीवक की आवाज सुनाई दी। उस भयंकर

ध्वनि को सुनकर आश्चर्यचकित हो वह वहाँ बिना पानी पिये ही बैठ गया और विचार करने लगा कि यह अद्भुत आवाज किसकी है ? उसे इस प्रकार उदास बैठे देखकर उसके प्रधानमन्त्री के दो पुत्र करकट और दमनक आपस में विचार करने लगे कि ऐसा प्रतीत होता है कि राजा इस समय बहुत भयभीत है और यदि हम इनके भय का निवारण कर दे तो इनके विश्वासपात्र बन जायेंगें । आपस में विचार-विमर्श करके दमनक सिंह के पास पहुँचा और परस्पर वार्तालाप के माध्यम से उसने राजा के भयभीत होने का कारण जान लिया । उसने राजा के समक्ष उसका भय दूर करने की प्रतिज्ञा की और करकट के पास लौट आया । दमनक ने करकट से कहा कि – मित्र ! राजा संजीवक नामक बैल की आवाज से डर गया है । यदि मैं चाहता तो उसी समय उसके भय को दूर कर सकता था किन्तु मेरे मन में यह विचार आया कि क्यों ना हम लोग राजा के विश्वासपात्र बनकर उससे उपहार भी प्राप्त करें और बैल को अपना भक्ष्य भी बनायें । इसलिये आप यहीं बैठे मैं संजीवक को लेकर यहीं आता हूँ फिर हम लोग राजा के पास चलेगें । ऐसा कहकर दमनक संजीवक के पास गया और बोला – अरे बैल मुझे राजा पिंगलक ने इस वन की रखवाली के लिये रखा है तुम शीघ्र ही सेनापति करकट के पास चलो अन्यथा इस जंगल को छोडकर चले जाओ । यह सुनकर भयभीत संजीवक करकट के पास गया और प्रणाम करके बोला – हे सेनापति मेरे लिए क्या आज्ञा है ? करकट ने कहा कि यदि तुम इस जंगल में रहना चाहते हो तो हमारे राजा को चलकर नमस्कार करो तुम्हे डरने की आवश्यकता नहीं है । हमारे राजा शरण में आये हुए का अपकार नहीं करते । ऐसा कहकर वे तीनों पिंगलक के पास गये । वहाँ पहुँचकर उन्होनें संजीवक को थोडी दूर पर बैठाकर स्वयं पिंगलक के पास जाकर बोले – हे महाराज !हमनें उस मेघगर्जन के समान शब्द करने वाले का पता लगा लिया है । वह अत्यन्त शक्तिशाली है और आपसे मिलना चाहता है , अत: आप तैयार होकर बैठिये । उसके बाद वे दोनों संजीवक को उसके पास ले आये । संजीवक और पिंगलक में मित्रता हो गयी और वे दोनों साथ-साथ रहने लगे ।

एक दिन पिंगलक का भाई स्तब्धकर्ण उसके घर आया । उसका सत्कार करने के पश्चात् पिंगलक उसके भोजन की व्यवस्था करने के लिए शिकार करने चला गया । तब संजीवक ने कहा – महाराज ! आज ही दो मृग मारे गये थे फिर उनके माँस का क्या हुआ । पिंगलक ने कहा कि वो दमनक और करकट ही जाने उन्होनें कुछ खाया होगा और कुछ फेंक दिया होगा । यह सुनकर स्तब्धकर्ण ने कहा कि इस प्रकार अपव्यय ठीक नहीं है अत: आपको धनसंग्रह सम्बन्धी अधिकार संजीवक को दे देना चाहिए । पिंगलक ने स्तब्धक की बात मानकर अर्थाधिकार संजीवक को दे दिया । इससे दमनक और करकट को परेशानी होने लगी और वे संजीवक के शत्रु हो गये । वे बल से तो जीत नहीं सकते थे अत: उन्होनें संजीवक और पिंगलक की मैत्री में फूट डालने का निश्चय किया । एक दिन दमनक ने पिंगलक से कहा कि संजीवक किसी दिन बल प्रयोग करके आपका राजपाट छीन लेगा । इस प्रकार दमनक ने उसके हृदय में सुहृद्भेद के बीज बो दिये । उधर उसने संजीवक को भी समझाया कि पिंगलक तुमको मार डालना चाहता है अत: उसके आक्रमण करने के पूर्व ही तुम अपने तीक्ष्ण सींगों से उसका वध कर दो । दमनक के इस प्रकार भडकाने पर संजीवक अत्यन्त क्रोध में भरकर पिंगलक के पास गया । उसे आक्रमण की मुद्रा में आते देखकर पिंगलक ने क्रुद्ध होकर उस पर छलाँग लगा दी और अपने तीक्ष्ण

नाखूनों से उसे फाड डाला। इस प्रकार सुहृद्भेद नीति से दमनक और करकट ने अपना स्वार्थ सिद्ध कर लिया।

अभ्यास प्रश्न — 3

निम्नलिखित प्रश्नों का संक्षेप में उत्तर दीजिये।

1• दक्षिणापथ में स्थित नगरी का क्या नाम है।

2• वणिक का क्या नाम था।

3• नन्दक और संजीवक कौन थे।

4• पिंगलक किसका नाम था।

5• स्तब्धकर्ण कौन था।

15.5 तृतीय भाग विग्रह का सारांश

विग्रह शब्द का अर्थ है – विरोधियों में फूट डालना। अपने साम्राज्य विस्तार और सुरक्षा की दृष्टि से यह नीति प्रभुसत्ता को बनाये रखने के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस ग्रन्थ के इस भाग में कुल 149 श्लोक हैं जिसमें कथाओं के माध्यम से विग्रह का महत्व समझाया गया है। इस भाग की मूल कथा का सार निम्नवत् है -

हिरण्यगर्भ और चित्रवर्ण की कथा (मूल कथा का सारांश)

कर्पूरद्वीप में पद्मकेलि नामका एक सरोवर था। उसमें हिरण्यगर्भ नामक राजहंस पक्षियों के राजा के रूप में रहता था। वहाँ से कुछ ही दूरी पर जम्बूद्वीप में विन्ध्याचल पर्वत पर चित्रवर्ण नाम का एक मयूर पक्षीराज के रूप निवास करता था। एक दिन पद्मकेलि सरोवर का एक बगुला भ्रमण करते हुए जम्बूद्वीप पहुँचा। उसे दूसरे राज्य से आया हुआ जानकर चित्रवर्ण के सेवक उसे चित्रवर्ण के पास ले गये। उस बगुले ने चित्रवर्ण से अपने राज्य और राजा की प्रशंसा की जिससे क्रोधित होकर उसने कर्पूरद्वीप में आक्रमण करने का निश्चय किया। बगुले ने यह सूचना अपने राजा को दी ,इधर चित्रगुप्त ने भी शुक को अपना दूत बनाकर इस सन्देश के साथ भेजा कि वह बिना युद्ध के ही उसकी अधीनता स्वीकार कर ले। हिरण्यगर्भ के मन्त्री सर्वज्ञ नामक चक्रवाक ने राजा से कहा कि इस मूर्ख बगुले के कारण ही हमारा राज्य युद्ध की स्थिति में फँस गया है और ऐसा इसने किसी के बहकावे में आकर किया है अत: आप गुप्तचर भेजकर शत्रु के सामर्थ्य की जानकारी कीजिये और दूत शुक को अतिथिशाला में ठहराकर अपनी सेना और दुर्ग को व्यवस्थित कीजिये। समय द्वारपाल ने आकर एक कौवे के आने की सूचना दी। किन्तु चक्रवाक ने शत्रुपक्ष का होने के कारण उसे आश्रय देने से मना कर दिया। परन्तु राजा ने कहा कि कौआ बहुत बुद्धिमान होता है इससे गुप्तचर का कार्य लेना चाहिये। दूत शुक के द्वारा चित्रवर्ण का सन्देश सुनकर हिरण्यगर्भ बहुत क्रोधित हुआ किन्तु चक्रवाक ने उसे समझाकर शान्त किया और दूत को उपहार देकर विदा कर दिया। इधर शुक ने कर्पूरद्वीप की समृद्धता का वर्णन करते हुए उस पर आक्रमण करने का आग्रह किया किन्तु चित्रगुप्त के मन्त्री गृध्र ने आक्रमण ना करने की

सलाह दी। परन्तु चित्रवर्ण ने उसकी बात नहीं मानी और मलय पर्वत की चोटी पर सेना का डेरा डाल दिया। इधर चक्रवाक द्वारा नियुक्त गुप्तचर ने वहाँ की सारी गतिविधियों की जानकारी हिरण्यगर्भ और चक्रवाक को दी। और यह भी बताया कि चित्रवर्ण ने किसी को कपटदूत बनाकर किले में प्रवेश करा दिया है। किन्तु राजा ने उस की बात ना मानकर युद्धनीति पर चर्चा की। चक्रवाक ने राजा को समझाते हुए कहा कि चित्रवर्ण ने अपने मन्त्री की सलाह को ना मानते हुए आक्रमण किया है अत: आप प्रधान सेनापति को आदेश दीजिये कि वह वनों, नदियों एवं पहाडों में छिपकर चित्रवर्ण की सेना पर आक्रमण करें। राजा हिरण्यगर्भ ने उसकी बात मानकर आक्रमण किया परिणामस्वरूप चित्रवर्ण की बहुत सी सेना मारी गयी। इससे परेशान होकर चित्रवर्ण ने ग्रृध्र से सलाह लेकर कौवे से महल के अन्दर आग लगवा दी। जिससे घबराकर हिरण्यगर्भ की सेना सरोवर में छिप गयी। हिरण्यगर्भ चित्रवर्ण के सेनापति मुर्गे से युद्ध करता हुआ घायल हो गया , जिसे उसके सेनापति सारस ने अपने प्राण देकर बचाया।

उस कथा के माध्यम से यह शिक्षा प्राप्त होती है कि दूरदर्शी एवं स्वामिभक्त मन्त्री की सलाह अपने राजा के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है। यदि मन्त्री चक्रवाक की बात मानकर हिरण्यगर्भ ने कौवे को आश्रय न दिया होता तो उसकी पराजय न होती।

15.6 चतुर्थ भाग सन्धि का सारांश

हिरण्यगर्भ और चित्रवर्ण में सन्धि की कथा (मूलकथा का सारांश)

अपनी पराजय के बाद हिरण्यगर्भ ने अपने मन्त्री चक्रवाक से पूछा कि हमारे किले में आग किसने लगायी थी ? तब चक्रवाक ने कहा – महाराज ! यह उसी कौवे का कार्य था और अब गुप्तचरों से यह ज्ञात हुआ है कि चित्रवर्ण उसे कर्पूरद्वीप का राजा बना रहे हैं परन्तु उनके मन्त्री ग्रृध्र ने इसका विरोध करते हुये आपसे सन्धि करने का परामर्श दिया किन्तु विजय के अभिमान में उन्मत्त हिरण्यगर्भ इस बात को स्वीकार नहीं कर रहा है अत: मेरे विचार से आप अपने मित्र सिंहलद्वीप के राजा सारस को चित्रवर्ण के राज्य पर आक्रमण करनें के लिए कहें। इस बात को मानकर राजा हिरण्यगर्भ ने विचित्र नामक बगुले को दूत बनाकर सिंहलद्वीप के राजा सारस के पास भेज दिया। सारस ने अपने मित्र के सन्देश के अनुसार जम्बुद्वीप को घेर लिया। जैसे ही चित्रगुप्त को यह ज्ञात हुआ हुआ वह क्रोधित होकर युद्ध के लिये सेना तैयार करने लगा। यह देखकर उसके दूरदर्शी मन्त्री ग्रृध्र ने कहा कि यदि आप सारस से युद्ध करेगें तो हिरण्यगर्भ भी आप पर आक्रमण कर देगा अत: आप को पहले हिरण्यगर्भ से सन्धि कर लेनी चाहिए।

मन्त्री बात मानकर चित्रवर्ण ने ग्रृध्र को ही सन्धि के लिए भेज दिया। इधर ग्रृध्र को आता जानकर हिरण्यगर्भ ने अपने मन्त्री चक्रवाक से परामर्श किया। इस पर चक्रवाक ने कहा महाराज हमें सन्धि कर लेनी चाहिये। चक्रवाक ने ग्रृध्र का स्वागत किया और उसे राजा के पास ले गया और दोनों राज्यों में कांचनाभिधान नामक सन्धि करा दी , जिसके अनुसार सम्पूर्ण जीवन में सम्पत्ति या विपत्ति प्रत्येक दशा में दोनों एक दूसरे के मित्र बने रहेगें। इस प्रकार मन्त्रियों की दूरदर्शिता से विग्रह के बाद दोनों राज्यों में सन्धि हो गई और वे सुखपूर्वक रहने लगें।

15.7 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान चुके है कि हितोपदेश नामक ग्रन्थ की कथायें चार भागों में विभाजित हैं। प्रथम भाग मित्रलाभ में कुल 216 श्लोक हैं , जिनमें यह बताया गया है कि किसी भी प्रकार का साधन या धन ना होने पर भी विवेकपूर्ण मित्रता से संगठित होकर असाध्य कार्य को भी सरलता से सम्पन्न किया जा सकता है। इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए पण्डित विष्णुशर्मा ने राजकुमारों को कौआ, कछुआ, हिरण और चूहा से सम्बन्धित मित्रता की अनेक कथायें सुनाई। हितोपदेश का द्वितीय भाग सुहृद्भेद, राजनीति, विशेषकर कूटनीति की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण है , क्योंकि राजनीति में शत्रु का शत्रु मित्र और मित्र का शत्रु शत्रु माना जाता है। इसलिए किसी भी बुद्धिमान राजा को शत्रु के सुहृद्धों में भेदनीति से फूट डालना अत्यन्त आवश्यक होता है। इस भाग में शत्रु के मित्रों में फूट उत्पन्न करके अपने कार्य की सिद्धि के उपाय बतायें गये हैं जो 184 श्लोकों में संगृहीत हैं। इस ग्रन्थ के तृतीय भाग में कुल 149 श्लोक हैं जिसमें कथाओं के माध्यम से विग्रह का महत्व समझाया गया है। तथा सन्धि नामक चतुर्थ भाग के अध्ययन से आपने यह भी जाना कि किस प्रकार मन्त्रियों की दूरदर्शिता से राज्यों में सन्धि हो जाती है।

15.8 शब्दावली

सुहृद्ध	मित्र
परामर्श	सलाह
असाध्य	कठिन
लोभ	लालच
क्षेत्रपति	खेत का स्वामी
पर्कटी	पाकड
कोटर	खोखला
परिव्राजक	सन्यासी
अवशिष्ट	बचा हुआ
वणिक	बनिया

15.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1 – 1• 216 2• सेमल 3• कर्पूरतिलक 4•कल्याणकटक 5• मृग 6• वीणाकर्ण ।

अभ्यास प्रश्न 2 – 1- ख 2- ग 3- क 4- ग 5- क 6- घ

अभ्यास प्रश्न 3 - 1- सुवर्णवती 2- वर्धमान 3- बैल 4- शेर (वन का स्वामी) 5- पिंगलक

16•10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1• नारायण पण्डित विरचितम् हितोपदेश ,आचार्य गुरूप्रसाद शास्त्री , आचार्य सीताराम शास्त्री, प्रो0 बालशास्त्री। चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

2• नारायण पण्डित विरचितम् हितोपदेश , सम्पादक एवं व्याख्याकार डा0 शिवबालक द्विवेदी , डा0 रेखा शुक्ला , डा0 रत्ना तिवारी। ग्रन्थम प्रकाशन, कानपुर ।

15.11 उपयोगी पुस्तकें

1• नारायण पण्डित विरचितम् हितोपदेश ,आचार्य गुरूप्रसाद शास्त्री , आचार्य सीताराम शास्त्री, प्रो0 बालशास्त्री। चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

2• नारायण पण्डित विरचितम् हितोपदेश , सम्पादक एवं व्याख्याकार डा0 शिवबालक द्विवेदी , डा0 रेखा शुक्ला , डा0 रत्ना तिवारी। ग्रन्थम प्रकाशन, कानपुर ।

15.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1• मित्रलाभ की किन्हीं तीन कथाओं को लिख कर प्राप्य शिक्षायें बताइये।

2• संजीवक और पिंगलक की कथा का वर्णन कीजिये।

3• तृतीय भेद विग्रह का सारांश लिखिए।

4• सन्धि कथा का वर्णन कीजिए।

इकाई 16 .चित्रग्रीव हिरण्यक कथान्तर्गत वृद्ध व्याघ्र लुब्धविप्र कथा और मृग श्रृगाल कथा

इकाई की रूपरेखा :

16.1 प्रस्तावना
16.2 उद्देश्य
16.3 वृद्धव्याघ्र लुब्धविप्र कथा (मूल पाठ ,अर्थ , व्याख्या एवं टिप्पणी)
16.4 मृगश्रृगाल कथा (मूल पाठ ,अर्थ , व्याख्या एवं टिप्पणी)
16.5 सारांश
16.6 शब्दावली
16.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
16.8 सन्दर्भ ग्रन्थ
16.9 उपयोगी पुस्तकें
16.10 निबन्धात्मक प्रश्न

16•1 प्रस्तावना

नीति कथाओं से सम्बन्धित यह तृतीय इकाई है। इससे पूर्व कि इकाइयों के अध्ययन के पश्चात् आप यह बता सकते है कि नीति कथाओं का विकास किस प्रकार हुआ और इन नीति कथाओं का हमारे जीवन में क्या महत्व है। इसके साथ ही आप हितोपदेश की कथाओं से भी परिचित हुए।

इस इकाई में आप चित्रग्रीव हिरण्यक कथान्तर्गत वृद्ध व्याघ्र लुब्धविप्रकथा एवं मृगश्रृगाल कथा का अध्ययन करेगें तथा इन कथाओं से प्राप्त शिक्षाओं को जानेगें।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप यह बता सकते हैं कि मनुष्य को अत्यधिक लालच में आकर दुष्ट स्वभाव के प्राणियों पर विश्वास नहीं करना चाहिए। तथा अचानक आये हुए व्यक्ति के साथ मित्रता नहीं करनी चाहिए क्योंकि उसका परिणाम दु:खदायी ही होता है।

16.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप —

1. संस्कृत नीति कथा साहित्य से परिचित हो पायेगें।
2. बता सकेगें कि दुष्ट व्यक्ति पर विश्वास नहीं करना चाहिए।
3. अत्यधिक लोभ से उत्पन्न दोषों की व्याख्या कर सकेगें।
4. यह समझा सकेगें कि बिना विचार किये कोई भी कार्य नहीं करना चाहिए।
5. मित्र एवं शत्रु में अन्तर सम्बन्धी विवेक प्राप्त कर सकेगें।
6. नीति ज्ञान का व्यावहारिक जीवन में उपयोग कर सकेगें।

16.3 वृद्धव्याघ्र लुब्धविप्र कथा(मूलपाठ,अर्थ,व्याख्या एवं टिप्पणी)

अहमेकदा दक्षिणारण्ये चरन्न पश्यम् एको वृद्धो व्याघ्र: स्नात: कुशहस्त: सरस्तीरे ब्रूते – ' भो: भो: पान्था , इदं सुवर्णकंकणम् गृह्यताम् । ततो लोभाकृष्टेन केनचित्पान्थेन आलोचितम् भाग्येन एतत् सम्भवति ।, किन्तु अस्मिन् आत्मसन्देहे प्रवृत्तिर्न विधेया । यत: -

हिन्दी अनुवाद – मैंने एकबार दक्षिण के जंगल में विचरण करते हुए देखा कि बूढ़ा व्याघ्र स्नान करके हाथ में कुशों को लिए हुए तालाब के किनारे यह कह रहा था – हे हे पथिक !यह सोने का कंगन ग्रहण कर लो। तब लोभ से आकर्षित होकर एक पथिक ने विचार किया कि भाग्य से ऐसा भी सम्भव हो सकता है परन्तु प्राणों को संकट में डालने वाले कार्यों में साहस की प्रवृत्ति नहीं करनी चाहिए क्योंकि –

व्याख्या – इससे यह स्पष्ट होता है कि व्यक्ति को कभी भी लोभ के कारण या धन सुवर्ण क मोह के कारण बिना सोचे विचारे अपने प्राणों को संकट में नहीं डालना चाहि उस कार्य में प्रवृत्त

नही होना चाहिए जब तक कि देने वाले का उद्देश्य ज्ञात न हो जाय।

टिप्पणी - प्रवृत्ति - प्र +वृत् + क्तिन् । कुशहस्त: - कुशा: सन्ति हस्ते यस्य स: (बहुब्रीहि समास)

अनिष्टादिष्टलाभेऽपि न गतिर्जायते शुभा।

यत्राऽऽस्ते विषसंसर्गोऽमृत: तदपि मृत्यवे ।।

हिन्दी अनुवाद – दुष्ट व्यक्ति से इष्ट वस्तु की प्राप्ति होने पर भी उसका परिणाम अच्छा नहीं होता जैसे अमृत में विष का संसर्ग हो तो वह अमृत भी मृत्यु का कारण बन बन जाता है।

व्याख्या - आशय यह है कि दुर्जन व्यक्ति से इष्ट वस्तु की प्राप्ति होने पर भी वह कल्याणकारक नहीं होता है। जैसे अमृत के साथ यदि विष का सम्बन्ध हो जाता है तो उससे अमृतत्व समाप्त हो जाता है और वह विष का परिणाम अर्थात् मृत्यु देता है।

टिप्पणी - लाभ – लभ् +घञ् । इष्टलाभे – इष्टस्य लाभे (षष्ठी त0)। इस श्लोक में अनुष्टुप छन्द है।

किन्तु सर्वत्राऽर्थार्जने प्रवृत्तौ सन्देह एव। तथा चोक्तम् –

न संशयमनारूह्य नरो भद्राणि पश्यति।

संशयं पुनरारूह्य यदि जीवति पश्यति ।।

हिन्दी अनुवाद – परन्तु सभी स्थान में धन के उत्पन्न होने में सन्देह होता ही है। जैसा कहा भी है – मनुष्य संकट में बिना पड़े मंगल नहीं देखता है किन्तु संकट में पड़ने के बाद जो जीवन धारण है वही कल्याण को देखता है।

व्याख्या – उस पथिक के मन में लोभ के कारण यह विचार आया कि यदि मैं इस सोने के कंगन को ग्रहण नहीं करता हूँ तो मुझे हानि होगी और यदि ग्रहण कर लेने पर कोई कष्ट उत्पन्न हो गया तो मृत्यु भी संभव है फिर वह पुन: विचार करता है कि बिना संशय में पड़े कल्याण संभव नहीं है। संशय से उबरने के पश्चात् ही लाभ का सुख भोगता है।

टिप्पणी - पश्यति– दृश धातु लट् लकार प्रथम पुरूष एकवचन। इस श्लोक में अनुष्टुप छन्द है।

तन्निरूपयामि तावत्। प्रकाशं ब्रूते – कुत्र तव कंकणम् ? व्याघ्रो हस्तं प्रसार्य दर्शयति। पान्थोऽवदत् कथं मारात्मके त्वयि विश्वास: ? व्याघ्र उवाच – श्रृणु रे पान्थ: । प्रागैव यौवनदशायामहमतीव दुर्वत्तं आसम्। अनेक: गोमानुषाणांवधान्मे पुत्रा: मृता: दाराश्च, वंशहीनाश्चाहम्। तत: केनचिद्धार्मिकेणाहमुपदिष्ट: दानधर्मादिकं चरतु भवान् इति। तदुपदेशादिदानीमहं स्नानशील: दाता, वृद्धो गलितनखदन्त: कथं न विश्वासभूमि: ?

हिन्दी व्याख्या – इसलिए सबसे पहले निश्चय करता हूँ कि इसके हाथ में कंगन है कि नहीं ।पथिक जोर से बोला – अरे ! तुम्हारा वह कंगन कहाँ है। व्याघ्र ने हाथ फैलाकर कंगन दिखा

दिया। पथिक ने कहा , कि तू हिंसक प्राणी है तुझ पर मैं कैसे विश्वास करूँ ?व्याघ्र बोला – अरे पथिक ! सावधान होकर सुनो। मैं युवावस्था में बड़ा दुराचारी था। मैंने अनेक गाय और मनुष्यों वध किया जिसके पाप से मेरी स्त्री और सन्तान मर गये तथा मैं वंशहीन हो गया। तब किसी धर्मात्मा पुरूष ने उपदेश दिया कि " तुम दान धर्म किया करो"। उस महापुरूष के उपदेश से मैं इस समय नित्यस्नान करता हूँ एवं दान देता हूँ। मैं बूढा हो गया हूँ और मेरे नाखून और दांत भी गिर गये हैं ,फिर मैं कैसे विश्वास करने के लायक नहीं हूँ।

व्याख्या – बूढा व्याघ्र उस पथिक को समझाता है कि मेरे पापकर्मो के कारण मैं वंशहीन हो गया हूँ उसी के प्रायश्चित हेतु मैं इस दान कर्म को कर रहा हूँ। और अब मैं वृद्ध हो चुका हूँ मेरे नख और दांत भी नहीं है तब मैं तुम्हें कैसे नुकसान पहुंचा सकता हूँ।

टिप्पणी–दर्शयति – दृश + णिच् – लट् लकार प्रथम पुरूष एकवचन विश्वासभूमि: - विश्वासस्य भूमि: (षष्ठी त0)

इज्याध्ययनदानानि तप: सत्यं धृति: क्षमा।

अलोभ इति मार्गोऽयं धर्मस्याष्टविध: स्मृत: ।।

हिन्दी अनुवाद – यज्ञ करना, वेदशास्त्रों का अध्ययन करना, दान देना, उपवास करना , सत्य बोलना , धीरता, सहनशील होना, लोभ न करना, ये धर्म के आठ मार्ग कहे गये हैं।

व्याख्या – व्याघ्र कहता है कि यज्ञादि कार्यों को करना, वेदशास्त्रों को पढ़ना, सत्पात्र को दान देना, व्रत करना, सदा सत्य बोलना, धैर्य धारण करना, क्षमाशील होना, किसी वस्तु के प्रति लालच न करना ये धर्म के आठ मार्ग बताये गये हैं। व्याघ्र के अनुसार वह इस समय धर्म के बताये मार्ग में प्रवृत है।

टिप्पणी - स्मृत: - स्मृ +क्त । अलोभ: - न लोभ: अलोभ: (नञ तत्पुरूष)। इस श्लोक में अनुष्टुप छन्द है।

तत्र पूर्वश्चतुर्वर्गो दम्भार्थमपि सेव्यते।
उत्तरस्तु चतुर्वर्गो महात्मन्येव तिष्ठति ।।

हिन्दी अनुवाद - उसमें पूर्वोक्त आठ प्रकार के मार्ग में पहले चार (यज्ञ करना, वेदशास्त्रापढ़ना, दान देना, और तप करना) तो प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए पाखण्डी व्यक्ति भी करते रहते हैं किन्तु अन्त के चार (सत्य बोलना, धैर्य धारण करना, कष्ट सहना, निस्पृह होना) ये महात्माओं में ही सुलभ होते हैं।

व्याख्या – व्याघ्र पथिक को बताता है कि उपरोक्त धर्म के बताये गये मार्ग में से प्रथम चार को तो धूर्त और पाखण्डी व्यक्ति समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए अपनाते हैं किन्तु अन्तिम चार मार्गो के दर्शन महात्माओं में ही सुलभ होते हैं सामान्य व्यक्ति में नहीं।

टिप्पणी - महात्मनि – महान आत्मा यस्य स: तस्मिन् (बहुब्रीहि समास)। इस श्लोक में अनुष्टुप छन्द है।

मम चैतावांल्लोभविरहो येन स्वहस्तस्थमपि सुवर्ण कंकणं यस्मै कस्मै चिद्दातुमिच्छामि। तथापि व्याघ्रो मानुषं खादतीति लोकप्रवादो दुर्निवार:। यत: -

"गताऽनुगतिको लोक: कुट्टिनीमुपदेशिनीम्।

प्रमाणयति नो धर्मे यथा गोघ्नमपि द्विजम्।। "

हिन्दी अनुवाद – मैं तो यहाँ तक लोभरहित हूँ कि अपने हाथ का सोने का कंगन भी जिस किसी को देना चाहता हूँ। किन्तु बाघ मनुष्यों को खाता है, यह जो लोकापवाद चला आ रहा है उसको मिटाना बहुत कठिन है। क्योंकि – प्राचीन परम्परा का पालन करने वाला यह संसार धर्म के विषय में चाहे वह गोहत्या कारक ही क्यों न हो ब्राह्मण की ही बात को प्रामाणिक मानता है जैसे धर्मरता कुट्टिनी (व्यभिचारिणी स्त्री) की बात को नही मानता।

व्याख्या –तात्पर्य यह है कि संसार अन्धपरम्परा से आने वाली बात के ही पीछे चलता है।धर्म की बात चाहे वह गो हत्या जैसे घृणित कार्य की हो ब्राह्मण की ही बात को प्रामाणिक माना जायेगा। किन्तु पहले व्यभिचार में लिप्त होने पर बाद में धर्मोपदेश देने वाली स्त्री की बात को कोई भी नहीं मानेगा। इसी प्रकार पूर्वकाल में मैनें हिंसादि कार्य किया किन्तु इस समय उन दोषों से दूर रहने पर भी कोई मेरी बात का विश्वास नहीं करता।

टिप्पणी - प्रमाणयति – प्रमाण+णिच् +लट् (प्र0पु0 ए0 व0) इस श्लोक में अनुष्टुप छन्द है।

मया च धर्मशास्त्राण्यधीतानि। श्रृणु –

मरूस्थल्यां यथा वृष्टि: क्षुधार्ते भोजनं तथा।

दरिद्रे दीयते दानं सफलं पाण्डुनन्दन।।

हिन्दी अनुवाद - और मैंने धर्मशास्त्रों का भी अध्ययन किया है। सुनो (महाभारत में कोई ऋषि महात्मा युधिष्ठिर को उपदेश देते हैं) हे पाण्डुनन्दन ! जैसे रेगिस्तान में वर्षा सार्थक होती है और भूखे को भोजन देना सार्थक होता है उसी प्रकार गरीब को दान देना अत्यन्त सार्थक होता है।

व्याख्या — तात्पर्य यह है कि जहाँ पर जिस चीज की अधिकता हो वहाँ देने से कोई लाभ नहीं होता जैसे किसी स्थान पर पानी ही पानी हो कहीं बाढ़ आयी हो और वहाँ जलवृष्टि हो तो क्या लाभ ? जलवृष्टि का असली लाभ तो मरूस्थल में है जहाँ पानी का अभाव है। उसी प्रकार जिसका पेट भरा हुआ हो तो उसको और खिलाने से क्या लाभ होगा। भूखे व्यक्ति को भोजन कराना सार्थक होता है। उसी प्रकार दान हमेशा धनहीन व्यक्ति को ही देना चाहिये जिससे वह उसका उपयोग कर सके।

टिप्पणी - दीयते – दा धातु कर्मवाच्य लट् ल0 प्र0 पु0 ए0 व0।

प्राणा यथा आत्मनो अभीष्टा भूतानामपि ते तथा।

आत्मौपम्येन भूतानां दयां कुर्वन्ति साधव: ।।

हिन्दी अनुवाद — जैसे अपने प्राण स्वयं को प्रिय हैं , वैसे ही औरों को भी अपने- अपने प्राण प्रिय होते हैं ऐसा समझ कर महात्मा पुरूष जीवमात्र के ऊपर दया करते हैं।

व्याख्या- ' आत्मवत् सर्वभूतेषु य: पश्यति स: पण्डित: ' अर्थात् जो सम्पूर्ण प्राणियों को अपने ही समान समझता है वही महान है इसी भाव का वर्णन उपरोक्त श्लोक में किया गया है।

टिप्पणी - अभीष्टा: - अभि +इष् + क्त। इस श्लोक में अनुष्टुप छन्द है। अपरञ्च – और भी

प्रत्याख्याने च दाने च सुखदु:खे प्रियाप्रिये।

आत्मौपम्येन पुरूष: प्रमाणमधिगच्छति ।।

हिन्दी अनुवाद – अपना अपमान होने से, दानादिलाभ होने से, प्रिय विषय में तथा अप्रिय विषय में जैसा स्वयं को सुख दु:ख का अनुभव होता है वैसा सभी जीवों को होता है। ऐसा विचार कर साधुजन सभी जीवों पर दयापूर्ण व्यवहार करते हैं।

व्याख्या — इस श्लोक का भावार्थ यह है जैसा व्यक्ति सुख एवं दु:ख में या अन्य परिस्थितयों में स्वयं अनुभव करता है वैसा ही अन्य प्राणियों को भी अनुभव होता होगा। किसी को भला बुरा कहने से उस प्राणी को कितना कष्ट होगा इसका अनुमान मनुष्य को अपने ऊपर ही करना चाहिये।

टिप्पणी - सुखदु:खे – सुखं च दु:खं च (द्वन्द्व समास)। इस श्लोक में अनुष्टुप छन्द है।

अन्यच्च – और भी

मातृवत्परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत्। आत्मवत् सर्वभूतेषु य: पश्यति स: पण्डित: ।।

हिन्दी अनुवाद — जो परस्त्री को माँ के समान, दूसरे के धन को मिट्टी के समान और सभी जीवों को अपने समान देखता है वस्तुत: वही सच्चा ज्ञानी है।

व्याख्या — तात्पर्य यह है कि जो दूसरे की स्त्री को बुरी दृष्टि से न देखकर अपनी माँ के समान आदर दें ,दूसरे के धन को लोभ की दृष्टि से न देखें बल्कि उसको मिट्टी के ढेर के समान समझे और समस्त प्राणियों को अपने समान समझे वास्तव में वही सच्चा ज्ञानी होता है।

टिप्पणी - मातृवत् - मातृ +वति इस श्लोक में अनुष्टुप छन्द है।

त्वं चातीव दुर्गतस्तेन तन्तुभ्यं दातुं सयत्नोऽहम्। तथा चोक्तम् –

दरिद्रान् भर कौन्तेय ! मा प्रयच्छेश्वरे धनम्।

व्याधितस्यौषधं पथ्यं नीरूजस्य किमौषधै: ।।

हिन्दी अनुवाद - तुम अत्यन्त धनहीन हो अत: यह कंगन मैं तुम्हें देना चाहता हूँ। इसीलिये कहा गया है – (महाभारत में कहा गया है) हे कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर ! दरिद्रों का ही पालन –पोषण करो, धनियों को दान मत दो क्योंकि रोगी के लिये ही औषधि लाभदायक होती है पर जो नीरोग है उनको औषधि की क्या आवश्यकता।

व्याख्या - कहने का भाव यह है कि दीन-हीन निर्धन व्यक्ति को ही दान देना चाहिये क्योंकि उनके लिए वह दान उपयोगी है धनी व्यक्ति को दान नहीं देना चाहिये क्योंकि उनके लिये उसका महत्व उसी प्रकार नहीं है जिस प्रकार स्वस्थ व्यक्ति के लिये औषधि का कोई महत्व नहीं होता।

टिप्पणी - इस श्लोक में अनुष्टुप छन्द है।

अन्यच्च - और भी

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणि ।

देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं विदुः ।।

हिन्दी अनुवाद — ' देना है ' इस स्वार्थ रहित बुद्धि से जो दान तीर्थ स्थानादि में और ग्रहण आदि के पर्व के समय में तथा सत्पात्र का विचार कर ब्राह्मणादि को दिया जाता है, वह सात्विक दान कहलाता है।

व्याख्या - दान हमेशा निःस्वार्थ भाव से करना चाहिये। सुपात्र को दिया हुआ दान सात्त्विक दान कहलाता है।

टिप्पणी - दातव्यम् – दा+तव्यत्। इस श्लोक में सात्त्विक दान पर प्रकाश डाला गया है। अनुष्टुप छन्द है।

तदत्र सरसि स्नात्वा सुवर्णकंकणमिदं गृहाण । ततो यावदसौ तद्वचः प्रतीतः लोभात्सरः स्नातुं प्रविष्टः, तावन्महापंके निमग्नः पलायितुमक्षमः । 'पंके पतितं दृष्ट्वा व्याघ्रोऽवदत् - 'अहह !महापंके पतितोऽसि अतस्त्वामहमुत्थापयामि ।' इत्युक्त्वा शनैः शनैरूपगम्य तेन व्याघ्रेण धृतः स पान्थोऽचिन्तयत् –

न धर्मशास्त्रं पठतीति कारणं ,

न चापि वेदाध्ययनं दुरात्मनः ।

स्वभाव एवाऽत्र तथाऽतिरिच्यते ,

यथा प्रकृत्या मधुरं गवां पयः ।।

हिन्दी अनुवाद — इसलिये तुम इस सरोवर में स्नान करके इस सोने के कंगन को ले लो। इस प्रकार बाघ की चिकनी-चुपड़ी बाते सुनकर लोभाकृष्ट होकर जैसे ही वह पथिक स्नान करने के लिए तालाब में उतरा वह गहरे कीचड़ में फँस गया और भागने में असमर्थ हो गया। उसे कीचड़ में फँसा हुआ देखकर बाघ बोला 'अहा !हा तुम भारी कीचड़ में फँस गये हो। अच्छा रूको मैं तुम्हें बाहर निकालता हूँ"। ऐसा कहकर उसने धीरे-धीरे उस फँसे हुए पथिक के समीप जाकर उसे पकड़ लिया। तब वह पथिक सोचने लगा – नीच प्रकृति वाले पुरूष का हृदय परिवर्तन करने में धर्मशास्त्र तथा वेदादि के अध्ययन समर्थ नहीं हो सकते हैं। किन्तु हृदय परिवर्तन में स्वभाव ही कारण माना जाता है। जिस प्रकार गाय का दूध प्रकृति से ही मधुर होता है।

व्याख्या — इस श्लोक के अध्ययन से आप यह समझ सकेगें कि दुष्ट पुरूष ने भले हीधर्मशास्त्रादि का अध्ययन किया हो किन्तु उस अध्ययन से उसकी दुष्टता दूर नही होती । दुष्टता को दूर करने वाला एक स्वभाव ही होता है।

टिप्पणी — स्नातुम् – स्ना +तुमुन् । पतितम् – पत् +क्त। दुरात्मनः - दुष्टः आत्मा यस्य सः तस्य (बहुब्रीहि)। उपमा अलंकार एवं वंशस्थ छन्द है।

अवशेन्द्रियचित्तानां हस्तिस्नानमिव क्रिया ।

दुभर्गाभरणप्रायो ज्ञानं भार: क्रियां बिना ।।

हिन्दी अनुवाद – जिस पुरूष की इन्द्रिया और चित्त अपने वश में नहीं और उसकी नित्य और नैमित्तिक क्रियायें हाथी के स्नान की भाँति निष्फल होती है (जैसे हाथी स्नान के बाद पुन: पुन: धूल उड़ाकर अपने शरीर को गंदा कर लेता है) उसी प्रकार क्रिया के बिना शास्त्रीय ज्ञान भी विधवा स्त्री के आभूषण के समान भारस्वरूप ही होता है।

व्याख्या – इस श्लोक के अध्ययन से आप यह सकेगें कि जो लोग अपने ज्ञान का उपयोग नहीं करते हैं उनका ज्ञान विधवा स्त्री के आभूषण की तरह भारमात्र ही है आचरण से हीन ज्ञान केवल भार ही है।

टिप्पणी – ज्ञानम् – ज्ञा +ल्युट्। उपमा अलंकार तथा अनुष्टुप छन्द है।

तन्मया भद्रं न कृतं यदत्र मारात्मके विश्वास: कृत:। तथा ह्योक्तम् –

नदीनां शस्त्रपाणीनां नखिनां श्रृगिणां तथा।
विश्वासो नैव कर्त्तव्य: स्त्रीषु राजकुलेषु ।।

हिन्दी अनुवाद — इसलिये मैंने अच्छा नहीं किया जो इस हिंसक बाघ में विश्वास किया। कहा भी गया है – नदियों का, शस्त्रधारियों का, नखों वाले सिंहादि और सींग वाले (गाय, भैंस आदि) प्राणियों का , स्त्रियों का तथा राजकुल का कभी विश्वास नहीं करना चाहिये।

व्याख्या — आशय यह है कि प्रवाहमान नदियों का क्या विश्वास कभी भी व्यक्ति उसमें बह सकता है , शस्त्रधारी पुरूष और नख और सींग वाले पुरूष का क्या भरोसा कब प्रहार करदे। तथा राजकुल के लोग शक्तिसम्पन्न कहे गये हैं। बहुत ही अनुकूल और सरल होने पर भी उनकी मैत्री कभी भी प्रतिगामी परिणाम वाली हो सकती है। अत: ये सभी कभी भी विश्वास के योग्य नहीं होते हैं।

टिप्पणी –कर्तव्य – कृ +तव्यत् ।नखिनाम् – नखा: सन्ति येषां तेषां (बहुब्रीहि) । शस्त्रपाणिनाम् – शस्त्र पाणौ येषां तेषां (बहुब्रीहि)। अनुष्टुप छन्द है।

सर्वस्य हि परीक्ष्यन्ते स्वभावा नेतरे गुणा: ।
अतीत्य हि गुणान् सर्वान् स्वभावो मूर्ध्नि वर्तते ।।

हिन्दी अनुवाद - सभी प्राणियों के स्वभाव की परीक्षा की जाती है , अन्य गुणों की नहीं। क्योंकि सभी गुणों को अतिक्रमण कर स्वभाव ही सबके ऊपर रहता है।

व्याख्या - भावार्थ यह है कि किसी भी व्यक्ति से प्रथम परिचय में उसका स्वभाव ही देखा जाता है अन्य गुणों की पहचान नही की जा सकती है अन्य गुण तो लम्बे साथ के बाद ही पता चलते है।

टिप्पणी – परीक्ष्यन्ते – परि + ईक्ष +यक् (प्र0 पु0 ब0 व0)। अनुष्टुप छन्द है।

अन्यच्च – और भी

स हि गगनविहारी कल्मषध्वंसकारी,
दशशतकरधारी ज्योतिषां मध्यचारी।
विधुरपि विधियोगाद् ग्रस्यते राहुणाऽसौ,
लिखितमपि ललाटे प्रोज्झितुं क: समर्थ: ।।

हिन्दी अनुवाद — आकाश में विहार करने वाले, अन्धकार को नष्ट करने वाले, तथा हजारों किरणों को धारण करने वाले , सूर्य एवं नक्षत्रों के बीच भ्रमण करने वाले उस चन्द्रमा को भी जब दैवयोग से राहु ग्रस लेता है (तो कहना पड़ेगा कि) ब्रह्माने जो कुछ ललाट में लिख दिया है , उसे कौन मिटा सकता है अर्थात् कोई नहीं।

व्याख्या — अर्थात् जब सूर्यदेव एवं चन्द्रदेव को दैववशात् राहु ग्रस लेता है तब सामान्य मनुष्य की क्या बात। विधाता ने जो जिसके भाग्य में लिख दिया है उसे कोई भी मिटा नहीं सकता। इसी भाव को महात्मा भृर्तहरि ने नीतिशतक में इस प्रकार कहा है –

" पत्रं नैव यदा कीरीटविटपे, दोषो वसन्तस्य किम् ,
नोलूकोऽप्यवलोकते यदि दिवा सूर्यस्य किं दूषणम् ?
धारानैव पतन्ति चातक मुखे मेघस्य किं दूषणम् ,

यत्पूर्वं विधिना ललाट लिखितं तन्मार्जितुं कः क्षमः "।।

टिप्पणी – प्रोज्झितुम् - प्र +उज्झ् + तुमुन्। कल्मषध्वंसकारी – कल्मषध्वंस + कृ + णिनि। मालिनी छन्द है।

इति चिन्तयन्नेवासौ व्याघ्रेण व्यापादितः खादितश्च। अतोऽहं ब्रवीमि - 'कंकणस्य तु लोभेन' इत्यादि। अतः सर्वथा अविचारितं कर्मं न कर्त्तव्यं।

हिन्दी अनुवाद- इस प्रकार वह सोच ही रहा था कि बाघ ने उसे मार डाला और खा गया। इसीलिए मैं (कपोतराज) कहता हूँ कि 'कंकण के लोभ से' आदि। अतः बिना विचार किये कोई काम नही करना चाहिये।

व्याख्या - कपोतराज चित्रग्रीव निर्जन जंगल में चावल के कणों को देखकर लोभ के कारण उसको खाने की इच्छा करने वाले कबूतरों को सावधान करने के लिए बूढे व्याघ्र और लोभीपथिक की यह कथा सुनाता है कि किस प्रकार लोभ में फँसकर वह पथिक अपने प्राण गँवा बैठा। अतः बिना सोचे-समझे कोई कार्य नहीं करना चाहिए।

टिप्पणी – चिन्तयन् – चिन्त् +णिच् + शतृ।

अभ्यास प्रश्न – 1

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये।

व्याघ्र पथिक को ---------- का कंगन देना चाहता था।

अनिष्टादिष्टलाभेऽपि न गतिर्जायते ---------- ।

---------- यथा वृष्टिः क्षुधार्ते भोजनं तथा।

दवा ---------- पुरूष को ही लाभ करती है।

व्याघ्र ---------- में फँस गया।

सर्वस्य हि परीक्ष्यन्ते ---------- नेतरे गुणा: ।

दरिद्रे दीयते ---------- सफलं पाण्डुनन्दन ।

अभ्यास प्रश्न – 2

निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर हाँ या नहीं में दीजिये ।

व्याघ्र कीचड़ में फँस गया था । ( )

सरोवर के तट पर व्याघ्र कुश हाथ में लेकर खड़ा था । ( )

व्याघ्र दान में स्वर्णकंगन देना चाहता था । ( )

भूखे को भोजन एवं दरिद्र को दान देना सार्थक है । ( )

पथिक व्याघ्र से कंगन लेकर चला गया । ( )

अमृत में यदि विष का सम्पर्क हो जाये तो विष भी अमृत हो जाता है । ( )

स्वस्थ व्यक्ति को औषध से लाभ मिलता है । ( )

अभ्यास प्रश्न – 3

निम्नलिखित श्लोक का अर्थ लिखिये ।

क. दरिद्रान भर कौन्तेय मा प्रयच्छेश्वरे धनम् ।
व्याधितस्यौषधं पथ्यं नीरूजस्य किमौषधै:

ख. मरूस्थल्यां यथा वृष्टि: क्षुधार्ते भोजनं तथा ॥
दरिद्रे दीयते दानं सफलं पाण्डुनन्दन: ॥

16.4 मृगश्रृगाल कथा(मूलपाठ,अर्थ,व्याख्या एवं टिप्पणी)

अस्ति मगधदेशे चम्पकवती नामारण्यानी । तस्यां चिरान्महतां स्नेहेन मृगकाकौ निवसत: । स च मृग: स्वेच्छया भ्राम्यन्हृष्टपुष्टांग: केनचित् श्रृगालेनाऽवलोकित: । तं दृष्टवा श्रृगालोऽचिन्तयत् आ: कथमेतन्मासं सुललितं भक्ष्यामि ? भवतु विश्वासं तावदुत्पादयामि । इत्यालोच्योपसृत्याब्रवीत मित्र ? कुशलं ते ? मृगेणोक्तम् – कस्त्वम् ? स: ब्रूते – क्षुद्रबुद्धिनामा जम्बुकोऽहम् । अत्रारण्ये बन्धुहीनो मृतवन्निवसामि । इदानीं त्वां मित्रमासाद्य पुन: सबन्धुर्जीवलोकं प्रविष्टोऽस्मि, अधुना तवाऽनुचरेण मया सर्वथा भवितव्यमिति । मृगेणोक्तम् - 'एवमस्तु' ।

हिन्दी अनुवाद — मगधदेश में चम्पकवती नाम का एक विशाल जंगल था । उसमें बहुत दिनों से एक मृग और कौआ अत्यन्त प्रेम से रहते थे । स्वेच्छा से घूमते फिरते तथा हृष्ट-पुष्ट शरीर वाले उस हरिण को किसी सियार ने देखा । उसको देखकर वह सियार सोचने लगा आह ! किस

प्रकार इसका सुन्दर और मधुर माँस खाऊँ? अच्दा पहले इसे विश्वास उत्पन्न कराता हूँ। ऐसा सोचकर वह उसके समीप जाकर बोला - 'मित्र' कुशल से हो ? मृग ने कहा – तुम कौन हो ? उसने कहा – मैं क्षुद्रबुद्धि नामक सियार हूँ और इस जंगल में मित्ररहित मरे हुए के समान रहता हूँ किन्तु इस समय तुम सरीखे मित्र को पाकर फिर मित्रसहित संसार में स्थित हूँ अर्थात् मित्र सुख को पाकर जी उठा हूँ। अब मैं सब प्रकार से तुम्हारा सेवक होकर रहूँगा। मृग ने कहा – अच्छा ऐसा ही (ठीक है) हो।

व्याख्या – भावार्थ यह है कि उस चालाक क्षुद्रबुद्धि नामक सियार ने मृग को खाने के लिये उससे झूठी मित्रता का प्रस्ताव रखा जिसे सरल हृदय मृग ने स्वीकार कर लिया।

टिप्पणी – मृगकाकौ – मृगश्च काकश्च इति द्वन्द्व समास मृतवत् – मृ +क्त + वति।

ततः पश्चादस्तं गते सवितरि भगवति मरीचिमालिनी तौ मृगस्य वासभूमिं गतौ। तत्र चम्पकवृक्षशाखायां सुबुद्धिनामा काको मृगस्य चिरमित्रं निवसति। तौ दृष्टवा काकोऽवदत् – सखे चित्रांग ! कोऽयं द्वितीयः ! मृगो ब्रूते जम्बुकोऽहम् अस्मत्सख्यमिच्छन्नागतः। काको ब्रूते – मित्र अकस्मादागन्तुना सह मैत्री न युक्ता।

हिन्दी अनुवाद – इसके पश्चात् अंशुमाली भगवान सूर्य के अस्ताचल को जाने पर वे दोनों मृग के निवास स्थान पर गये। वहाँ चम्पक वृक्ष की शाखा पर मृग का अति पुराना मित्र सुबुद्धि नामक कौआ रहता था। कौऐ ने उन दोनों को देखकर कहा – मित्र चित्रांग !यह दूसरा कौन है मृग ने कहा यह सियार है। हमारे साथ मित्रता करने की इच्छा से आया है। कौआ बोला – मित्र अपरिचित के साथ सहसा मित्रता नहीं करनी चाहिये।

व्याख्या – सूर्यास्त हो जाने पर मृग सियार के साथ अपने घर गया। वहाँ पर मृग के साथ रहने वाले उसके मित्र सुबुद्धि नामक कौवे ने पूछा कि तुम्हारे साथ दूसरा कौन आया है। तब मृग ने बताया कि यह क्षुद्रबुद्धि नामक सियार है जो हमसे मित्रता करना चाहता है। तब कौवा मृग को सावधान करते हुए कहता है कि अचानक आये हुए किसी अपरिचित के साथ मित्रता नहीं करनी चाहिये। क्योंकि जिसका कुल और शील ज्ञात न हो उस व्यक्ति के साथ की गयी मित्रता कष्टदायी हो सकती है।

टिप्पणी - गतौ – गम् +क्त।

तथा चोक्तम् – कहा भी है

अज्ञातकुलशीलस्य वासो देयो न कस्यचित्।

मार्जारस्य ही दोषेण हतो गृधो जरद्गवः ।।

हिन्दी अनुवाद – जिसका वंश और चरित्र ज्ञात न हो उसको घर में कभी आश्रय नहीं चाहिये। क्योकि विडाल के दोष से जरद्गव नामक बूढ़ा गीध मारा गया।

व्याख्या – अर्थात् जिसके कुल और चरित्र की सम्यक् जानकारी न हो ऐसे व्यक्ति को कभी भी अपने घर में नहीं रखना चाहिये अन्यथा वो नुकसान पहुँचाता है।

टिप्पणी - वास: - वस् + घञ् । अनुष्टुप छन्द है ।

इत्याकर्ण्य स: जम्बुक: सकोपमाह – मृगस्य प्रथम दर्शनं दिने भवानपि अज्ञातकुलशील एव, तत् कथं भवता सहैतस्य स्नेहानु वृतिरूत्तरोत्तरं वर्धते ?

यत्र विद्वज्जनों नास्ति श्लाघ्यस्तत्राऽल्पधीरपि ।

निरस्तपादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते ।।

हिन्दी अनुवाद- यह सुनकर उस क्षुद्रबुद्धि नामक सियार ने क्रोधित होकर कहा – कि मृग के प्रथम दर्शन के दिन आप भी तो अपरिचित ही थे फिर कैसे आपके साथ उसकी मित्रता धीरे-धीरे आगे बढ़ती गयी । अथवा – जिस स्थान पर विद्वान पुरूष नहीं है वहाँ अल्प बुद्धि वाले व्यक्ति की भी प्रशंसा होती है, जैसे वृक्षविहीन देश में एरण्ड का पेड़ भी वृक्ष कहा जाता है ।

व्याख्या – अर्थात् जिस स्थान पर विद्वान पुरूषों का अभाव होता है, वहाँ कम पढ़े लिखे व्यक्ति को भी उसी प्रकार विद्वान माना जाता है जिस प्रकार वृक्षरहित प्रान्त में एरण्ड का पेड़ भी वृक्ष ही कहलाता है ।

अन्यच्च - और भी

अयं निज: परो वेति गणना लघुचेतसाम् ।

उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ।।

हिन्दी अनुवाद – यह अपना है यह पराया है ऐसी गणना (धारणा) तुच्छबुद्धि वाले करते हैं,

किन्तु उदार हृदय वालों के लिये तो सम्पूर्ण पृथ्वी ही परिवार है ।

व्याख्या – तात्पर्य यह है कि संकुचित विचार वाले व्यक्तियों के लिये अपना और पराया होता है। विशाल हृदय वाले व्यक्तियों लिये सम्पूर्ण पृथ्वी ही परिवार के समान होती है ।

टिप्पणी – उदारचरितानां – उदारं चरितं येषां तेषां (बहुव्रीहि) । अनुष्टुप छन्द है ।

यथाऽयं मृगो मम बन्धुस्तथा भवानपि । मृगोऽब्रवीत् – किमनेन उत्तरोत्तरेण ? सर्वैरेकत्र विश्रम्भाऽऽलापै: सुखमनुभवद्भि: स्थीयताम् । यत: -

न कश्चित् कस्यचिन्मित्रं न कश्चित् कस्यचिद्रिपु: ।

व्यवहारेण मित्राणि जायन्ते रिपवस्तथा ।।

हिन्दी अनुवाद – जैसे यह मेरा मित्र है वैसे तुम भी हो । मृग बोला – इस वाद-विवाद से क्या प्रयोजन ? सब एक स्थान में विश्वस्त भाव से सुखपूर्वक रहो । क्योंकि –न कोई किसी का मित्र है और न कोई किसी का शत्रु है, किन्तु व्यवहार से ही शत्रु या मित्र बनते है ।

व्याख्या - अर्थात् किसी भी व्यक्ति का व्यवहार ही उसकी शत्रुता और मित्रता का कारण हो व्यक्ति के अच्छे स्वभाव के कारण ही उसके मित्र और बुरे स्वभाव के कारण शत्रु बनते हैं ।

टिप्पणी – व्यवहारेण - वि + अव + हृ + घञ । अनुष्टुप छन्द है ।

काकेनोक्तम् – एवमस्तु । प्रातः सर्वे यथाभिमतदेशं गताः ।एकदा निभृतं श्रृगालो ब्रूते – सखे मृग! अस्मिन्वनैकदेशे सस्यपूर्णं क्षेत्रमस्ति, तदहं त्वां नीत्वा दर्शयामि । तथा कृते सति मृगः प्रत्यहं तत्र गत्वा सस्यं खादति । अथ क्षेत्रपतिना तद् दृष्ट्वा पाशो योजितः अनन्तरं पुनरागतो मृगः पाशैर्बद्धोऽचिन्तयत् - "को मामितः कालपाशादिव व्याधपाशात्त्रातुं मित्रादन्यः समर्थः ? " अत्रान्तरे जम्बुकस्तत्राऽगत्य उपस्थितोऽचिन्तयत् - " फलितस्तावदस्माकं कपटप्रबन्धः , मनोरथसिद्धिरपि बाहुल्यान्मे भविष्यति । यतः एतस्य उत्कृत्यमानस्य माँसाऽसृग्लिप्तानि अस्थीनि मया अवश्यं प्राप्तव्यानि । तानि च बाहुल्येन मम भोजनानि भविष्यन्ति । स च मृगस्तं दृष्ट्वा उल्लासितो ब्रूते – सखे ! छिन्धि तावन्मम बन्धनम्, सत्वरं त्रायस्व माम् ।

हिन्दी अनुवाद – कौवे ने कहा - 'ठीक है'। फिर प्रातःकाल सभी अपने –अपने अभीष्ट स्थान को गये । एक दिन एकान्त में सियार ने कहा – मित्र चित्रांग ! इस वन के एक भाग में धान्य से भरा हुआ एक खेत है , मैं तुम्हें ले जाकर वह दिखाता हूँ । वैसा करने पर मृग प्रतिदिन वहाँ जाकर धान्य खाने लगा । इस प्रकार कुछ दिन बीतने पर खेत के स्वामी ने हरिण को खेत में चरता हुआ देखकर खेत में फँदा लगा दिया । इसके अनन्तर जब वहाँ मृग और दिन की तरह चरने के लिये आया ,तो जाल में फँस कर सोचने लगा – "मुझे इस यमफाँस की तरह व्याध फाँस से मित्र के सिवाय दूसरा कौन छुड़ा सकता है "। इसी समय सियार वहाँ आकर उपस्थित हुआ और सोचने लगा कि मेरे कपट की चाल से मेरा मनोरथ सिद्ध हुआ । इसके जब चर्म उधेड़े जायेंगें तब माँस और रक्त से सनी हुई हड्डियाँ मुझे अवश्य मिलेंगी । वे मेरे भोजन के लिये पर्याप्त होंगी । मृग उसको देखकर प्रसन्न होकर बोला – मित्र, मेरे इन बन्धनों को शीघ्र काटो और मुझे बचाओ ।

व्याख्या – इस गद्यांश को पढ़कर आप यह समझ सकेंगे कि सियार ने किस प्रकार मृग के साथ धूर्तता की और वह मृग संकट में फँस गया ।

टिप्पणी – नीत्वा – नी + क्त्वा । बन्धनम् – बन्ध् + ल्युट् । यतः - क्योंकि

आपत्सु मित्रं जानीयात् युद्धे शूरमृणे शुचिम् ।

भार्या क्षीणेषु वित्तेषु व्यसनेषु च बान्धवान् ।।

अपरञ्च – और भी

उत्सवे व्यसने चैव दुर्भिक्षे राष्ट्रविप्लवे ।

राजद्वारे श्मशाने च यस्तिष्ठति स बान्धवः ।।

हिन्दी अनुवाद – आपत्तिकाल में मित्र, युद्ध में शूर, ऋण के लेन-देन में सच्चा व्यवहार करने वाला, धन नष्ट होने पर स्त्री और दुःख पड़ने पर अपने भाई-बन्धु परखे जाते हैं । तथा आनन्द के समय में, विपत्ति आने पर , अकाल के समय, राजपरिवर्तन के समय, राजद्वार में तथा श्मशान में जो साथ रहे वही सच्चा मित्र है ।

व्याख्या - इस श्लोक को पढ़कर आप यह समझ पायेंगे कि बुरे समय में ही सच्चे मित्र की पहचान होती है , युद्धक्षेत्र में ही व्यक्ति की वीरता का परिचय प्राप्त होता है ,पैसे के लेन-देन के समय ही ईमानदारी , धन के समाप्त हो जाने पर भी स्त्री का साथ में रहना तथा विपत्ति के आ जाने पर भाई-बन्धुओं की पहचान होती है । क्योंकि सुख के समय तो प्रत्येक व्यक्ति आपके साथ रहता है किन्तु जो दु:ख में साथ दे वही सही व्यक्ति है । और जो सुख-दु:ख में सदा साथ रहे वही सच्चा मित्र है ।

टिप्पणी - आपत्सु - आ +पद् + क्विप् । अनुष्टुप छन्द है ।

जम्बुको मुहुर्मुहु: पाशं विलोक्याचिन्तयत् – दृढ़स्तावदयं बन्ध: । ब्रूते च – सखे ! स्नायुनिर्मिता एते पाशा: तद्द्य भट्टारक वारे कथमेतान् दन्तै: स्पृशामि ? मित्र ! यदि चित्ते न अन्यथा मन्यसे,तदा प्रभाते यत्र त्वया वक्तव्यं तत् कर्त्तव्यम् इतियुक्तवा समीपं आत्मानमाच्छाद्य स: । अनन्तरे स काक: प्रदोषकाले मृगमनागतमवलोक्य येत्तस्ततोऽन्विष्य तथाविधं दृष्टोवाच – सखे ! किमेतत्? मृगेणोक्तम् – अवधीरितसुहृद्वाक्यस्य फलमेतत् ।

हिन्दी अनुवाद – सियार जाल को बार-बार देखकर सोचने लगा यह बन्धन बड़ा मजबूत है और बोला मित्र ये फन्दे तांत के बने हैं । इसलिए आज रविवार के दिन कैसे इन्हें दाँतो से स्पर्श करूँ ? मित्र यदि बुरा न मानें तो सुबह होते ही जो कहोगे वह करूँगा । ऐसा कहकर चित्रांग के समीप ही अपने को छिपाकर बैठ गया । इसके पश्चात् सुबुद्धि नामक कौवा सांयकाल मृग को न आया देखकर इधर-उधर खोजकर तथा उसे इस प्रकार बन्धन में फँसा हुआ देखकर बोला – मित्र यह क्या (यहाँ जाल में फँसना किस कारण से हुआ) । मृग ने कहा मित्र की बात को न मानने का यही फल है ।

टिप्पणी - विलोक्य – वि +लोक् +क्त्वा +ल्यप् अवधीरित: - अवधीरितं सुहृदवाक्यं येन स: तस्य (बहुब्रीहि) ।

काको ब्रूते – स वञ्चक: क्वास्ते ? मृगेणोक्तम् – मन्मांसार्थी तिष्ठत्यत्रैव । काको ब्रूते – उक्तमेव मया पूर्वम् ।

परोक्षे कार्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम् ।

वर्जयेतादृशं मित्रं विषकुम्भं पयोमुखम् ।।

हिन्दी अनुवाद – कौवा बोला – वह ठग सियार कहाँ है ? मृग ने कहा - मेरे माँस का लोभी वह यही है । कौवा बोला मैंने पहले ही कहा था । परोक्ष में काम बिगाड़ने वाले तथा प्रत्यक्ष में प्रिय बोलने वाले मित्र को मुख पर दूध वाले जहर से भरे घड़े के समान छोड़ देना चाहिए ।

व्याख्या - अर्थात् जो मित्र पीठ पीछे काम को बिगाड़ता हो और सामने मिलने पर मीठी-मीठी बातें करता हो ऐसे मित्र को उसी प्रकार त्याग देना चाहिए जिस प्रकार मुख भाग में दूध एवं अन्दर विष से भरे हुए घड़े को छोड़ दिया जाता है । वरना उसकी मित्रता कष्टदायी होती है ।

टिप्पणी– प्रियवादिनम् – प्रियं वदतीति प्रियवादी ,तम्। प्रिय + वद् +णिनि। अनुष्टुप छन्द है।

ततः काको दीर्घं निःश्वस्य - अरे वञ्चक ! किं त्वया पापकर्मणा कृतम्। अथ प्रभाते क्षेत्रपतिर्लगुडहस्तस्तं प्रदेशमागच्छन् काकेनावलोकितः। तमालोक्य काकेनोक्तम् – सखे मृग ! त्वमात्मानं मृतवत्संदर्श्य वातेनोदरं पूरयित्वा पादान् स्तब्धीकृत्य तिष्ठ, अहं तव चक्षुषी चञ्च्वा विलिखामि। यदाहं शब्दं करोमि, तदा त्वमुत्थाय सत्वरं पलायिष्यसे। मृगस्तथैव काक वचनेन स्थितः। ततः क्षेत्रपतिना हर्षोत्फुल्लोचनेन तथाविधो मृग आलोकितः। आः ! स्वयं मृतोऽसि इत्युक्त्वा मृगं बन्धनान्मोचयित्वा पाशान् गृहीतुं सयत्नो बभूव। ततः काकशब्दं श्रुत्वा मृगः सत्वरमुत्थाय पलायितः। तमुद्दिश्य तेन क्षेत्रपतिना क्षिप्तेन लगुडेन श्रृगालो हतः।

हिन्दी व्याख्या – इसके बाद कौवे ने लम्बी साँस भर कर कहा – अरे धूर्त ! पापी तुमने यह क्या किया। बाद में प्रातःकाल हाथ में लाठी लेकर आते हुए खेत के मालिक को कौवे ने देखा। उसे देखकर कौवे ने कहा – मित्र मृग ! तुम अपने को मरे हुए की तरह दिखाकर पेट को हवा से फुलाकर और पैरों को कड़ा कर बैठ जाओ। मैं तुम्हारी आँखों को कुरेदूँगा। जब मैं शब्द करूँगा तो तुम शीघ्र ही उठकर भाग जाना। मृग उसी तरह कौवे के कहने के अनुसार बैठ गया। खेत के मालिक ने प्रसन्नता से आँखे फाड़कर उस प्रकार पड़े हुए मृग को देखा। आह ! अपने आप मर गया ऐसा कहकर मृग को बन्धनों से छुड़ाकर जाल इकट्ठा करने में लग गया। तब कौवे का शब्द सुनकर मृग शीघ्र ही उठकर भागा। मृग को भागते हुए देखकर किसान ने उसको निशाना बनाकर एक लाठी फेंकी जो मृग को न लगकर सियार को लगी और वह मर गया।

व्याख्या – इसके अध्ययन से आप ने यह जाना कि दूसरे का बुरा चाहने से अपना भी बुरा ही होता है जैसे सियार धोखे से मृग को मार कर खाना चाहता था किन्तु कौवे जैसे सच्चे मित्र के कारण मृग की जान बच गयी और वह सियार स्वयं मारा गया। इसीलिये कहा जाता है कि जो दूसरों के लिये गढ्ढा खोदता है स्वयं उसी में गिर पड़ता है। भक्ष्य और भक्षक की मित्रता विपत्ति का कारण होती है।

टिप्पणी - आगच्छन् – आ +गम् + शतृ। क्षिप्तेन – क्षिप् + क्त।

अतः उक्तम् –

भक्ष्यभक्षकयो प्रीतिर्विपत्तेरेव कारणम्।

श्रृंगालात् पाशबद्धौऽसौ मृगः काकेन रक्षितः॥

हिन्दी अनुवाद – अतः कहा गया है – भक्ष्य (खाने योग्य) और भक्षक (खाने वाले) की मित्रता आपत्ति की जड़ होती है। जैसे सियार (भक्षक) के द्वारा जाल में फँसाया गया हरिण (भक्ष्य) कौवे से रक्षा किया गया। अतः मनुष्य को सोच-विचार कर ही किसी से मित्रता करनी चाहिए।

टिप्पणी - भक्ष्य – भक्ष् +यत्।

अभ्यास प्रश्न – 4

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

क* चम्पकवती वन में मृग और ----------स्नेह से रहते थे।

ख* जाल में फन्दे ---------- के बने थे।

ग* भक्ष्य और ---------- की मैत्री आपत्ति का मूल है।

घ* न कश्चित् कस्यचिन्मित्रं न कश्चित् ---------- ।

ङ* किसान द्वारा फेंकी गयी लाठी ---------- को लगी।

अभ्यास प्रश्न – 5

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर हाँ या नहीं में दीजिये।

क* चम्पकवती नामक वन मगध देश में है। ( )

ख* व्यवहार से ही मित्रता अथवा शत्रुता होती है। ( )

ग* अपरिचित के साथ सहसा मित्रता करनी चाहिए। ( )

घ* खेत के मालिक ने हिरण को डण्डे से मार दिया था। ( )

ङ* सियार हिरण से स्वार्थवश मित्रता करना चाहता था। ( )

च* कौवे ने हिरण को सियार से मैत्री करने से मना किया था। ( )

अभ्यास प्रश्न – 6

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिये।

1* हिरण का क्या नाम था ?

2* हिरण से कौन मित्रता करना चाहता था

16•5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि किस प्रकार वृद्ध व्याघ्र ने सोने के कंगन का लालच देकर अपनी मीठी-मीठी बातों से पथिक को सरोवर में स्नान करने के लिए प्रेरित किया और जब पथिक कीचड़ में फँस गया तब व्याघ्र ने उसे मार कर खा लिया। आपने इस इकाई को पढ़ कर यह भी जाना कि किसी भी प्राणी के स्वभाव में परिवर्तन कर पाना अत्यन्त कठिन है। मृग श्रृगाल की कथा को पढ़कर आप जान पायें कि किस प्रकार क्षुद्रबुद्धि नामक सियार ने झूठा

विश्वास दिलाकर चित्रांग नामक मृग से मित्रता की और उसको अपनी योजना के अनुसार किसान द्वारा बिछाये गये जाल में फँसवा दिया गया ताकि उसे मृग का माँस खाने को मिल सके। किन्तु मृग के मित्र सुबुद्धि नामक कौवे ने उसे अपने बुद्धि बल से मुक्त करवाया और वह सियार किसान की लाठी से स्वयं मारा गया। अत: आपने जाना कि भक्ष्य और भक्षक की मित्रता विपत्ति का कारण होती है और जो विपत्ति में साथ दे वही सच्चा मित्र होता है।

16•6 शब्दावली –

व्याघ्र	बाघ
सरस्तीरे	तालाब के किनारे
संसर्ग	सम्बन्ध
क्षुधार्त:	भूखा
व्याधितस्य	रोगी को
नीरूजस्य	निरोगी को
प्रकृत्या	स्वभाव से
मूर्ध्नि	शिरोभाग पर
व्यापादित:	मार दिया गया
सुजीर्णमन्नम्	अच्छी तरह पका हुआ अन्न
जम्बुक:	सियार
मरीचिमालिनी	रश्मियों की माला वाले (सूर्य)
चिरमित्रम्	पुराना मित्र
भट्टारकवासरे	रविवार के दिन
मुहुर्मुहु:	बार-बार
वञ्चक	धूर्त

16•7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1 – क* सुवर्ण ख* शुभा ग* मरूस्थल्यां घ* रोगी ङ* गाढ़े कीचड़ च*स्वभाव छ* दानं ।

अभ्यास प्रश्न 2 – क* नहीं ख* नहीं ग* हाँ घ* हाँ ङ* नहीं च* नहीं छ* नहीं।

अभ्यास प्रश्न 3 – क* उत्तर पृष्ठ संख्या 8 में देखें। ख* उत्तर पृष्ठ संख्या 6 में देखें।
अभ्यास प्रश्न 4 – क* कौवा ख* ताँत ग* भक्षक घ* कस्यचिद्रिपु: ङ* सियार ।
अभ्यास प्रश्न 5 – क* हाँ ख* हाँ ग* नहीं घ* नहीं ङ* हाँ च* हाँ।
अभ्यास प्रश्न 6 – 1* चित्रांग 2* क्षुद्रबुद्धि नामक सियार।

16•8 सन्दर्भग्रन्थ

1* नारायण पण्डित, हितोपदेश ,मोतीलाल बनारसीदास बंग्लो रोड, जवाहर नगर दिल्ली।

2* नारायण पण्डित, हितोपदेश, आचार्य गुरूप्रसाद शास्त्री आचार्य सीताराम शास्त्री , चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

16•9 उपयोगी पुस्तकें–

1* नारायण पण्डित, हितोपदेश ,मोतीलाल बनारसीदास बंग्लो रोड, जवाहर नगर दिल्ली।

2* नारायण पण्डित, हितोपदेश, आचार्य गुरूप्रसाद शास्त्री आचार्य सीताराम शास्त्री , चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

16•10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. वृद्धव्याघ्र लुब्धविप्रकथा का सारांश लिखते हुए प्राप्त शिक्षाएं बताइये।
2. मृगश्रृगाल कथा का सारांश लिखिए।

इकाई 17. चित्रग्रीव कथान्तर्गत जरद्गव विडाल कथा तथा मूषक परिव्राजक कथा

इकाई की रूपरेखा

17• 1 प्रस्तावना
17• 2 उद्देश्य
17• 3 जरद्गव विडाल कथा
(मूल पाठ, अर्थ, व्याख्या एवं टिप्पणी)
17• 4 मूषक परिव्राजक कथा
(मूल पाठ, अर्थ, व्याख्या एवं टिप्पणी)
17• 5 सारांश
17• 6 शब्दावली
17• 7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
17• 8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
17• 9 उपयोगी पुस्तकें
17• 10 निबन्धात्मक प्रश्न

17.1 प्रस्तावना

नीति कथाओं से सम्बन्धित यह अन्तिम इकाई है। इससे पूर्व की इकाईयों के अध्ययन से आप ने जाना कि नीति कथाओं का विकास किस प्रकार हुआ एवं इन कथाओं का हमारे जीवन में क्या महत्व है। द्वितीय इकाई में आप हितोपदेश की कथाओं से परिचित हुए। इन कथाओं का प्रतिपाद्य सदाचार, राजनीतिशास्त्र ,एवं व्यावहारिक ज्ञान है। इनमें प्रधान कथा के साथ ही कई अन्तर्कथाओं का भी अध्ययन किया।

इस इकाई में आप चित्रग्रीव हिरण्यक कथान्तर्गत जरद्गव विडाल कथा एवं मूषक परिव्राजक कथा का अध्ययन करेगें।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप यह बता सकेंगे कि किसी व्यक्ति के बारे में सम्यक् जानकारी न होने पर उस पर विश्वास नहीं करना चाहिए। क्योंकि जरद्गव ने दीर्घकर्ण के कुल और शील को जाने बिना ही उसकी बातों पर विश्वास कर उसे आश्रय दे दिया था और अन्तत: वह निंदोष होने पर भी मारा गया। और मूषक परिव्राजक कथा के अध्ययन से आप ने जाना कि इस संसार में धनवान व्यक्ति ही बलशाली, उत्साह-सम्पन्न और विद्वान माना जाता है और धनरहित अवस्था में उसी व्यक्ति का कोई अस्तित्व नहीं रहता।

17. 2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप बता पायेंगे कि —

- जिसका कुल शील ज्ञात न हो उसे आश्रय नही देना चाहिए।
- सहसा किसी पर विश्वास नहीं करना चाहिए।
- धनाभाव अभावों में बलवान होता है।
- दरिद्रता समस्त आपत्तियों का मूल है।

17.3 जरद्गव विडाल कथा(मूलपाठ,अर्थ,व्याख्या , टिप्पणी)

अस्ति भागीरथी तीरे गृधकूट नाम्नि पर्वते महान पर्कटी वृक्ष: । तस्य कोटरे दैवदुर्विपाकात् गलितनखनयनों जरद्गवनामा गृध: प्रतिवसति। अथ कृपया तज्जीवनाय तद् वृक्षवासिन: पक्षिण: स्वहारात् किंचिदुद्धृत्य तस्मै ददति, तेनासौ जीवति, तेषां शावकरक्षां च करोति। अथ कदाचित् दीर्घकर्णनामा मार्जार: पक्षिशावकान् भक्षयितुं तत्राऽऽगत: । ततस्तमायान्तं दृष्ट्या पक्षिशावकैर्भयार्तै: कोलाहल: कृत: । तत् श्रुत्वा जरद्गवेनोक्तम् - कोऽयमायाति ? दीर्घकर्णौ गृध्रमालोक्य सभयमाह -हा हतोऽस्मि।

हिन्दी अनुवाद- गंगानदी के किनारे गृधकूट नामक पर्वत पर एक विशाल पाकड का वृक्ष था। उसके कोटर में दुर्भाग्य से अन्धा तथा नखहीन जरद्गव नामक गृद्ध (गीध) रहता था। उस वृक्ष पर रहने वाले पक्षी दया कर अपने — अपने आहार से कुछ— कुछ निकाल उसके जीवन

निर्वाह के लिए देते थे और वह बदले में पक्षी के बच्चों की रक्षा था। एक दिन दीर्घकर्ण नामक एक बिलाव पक्षियों के बच्चों को खाने के लिए वहाँ आया। उसको आते देखकर पक्षियों के बच्चे भयभीत होकर कोलाहल करने लगे। उस कोलाहल को सुनकर जरद्गव ने कहा — यह कौन इधर आ रहा है ? दीर्घकर्ण गीध को देखकर डरकर बोला - हाय ! अब मैं मारा गया।

व्याख्या - गंगा नदी के तट पर गृध्रकूट पर्वत पर स्थित पाकर वृक्ष के कोटर में वृद्ध् एवं नेत्रहीन जरद्गव नामक गीध रहता था। जो उस वृक्ष पर रहने वाले पक्षियों के बच्चों की देखभाल करता था और इसके बदले में उनसे प्राप्त आहार के द्वारा अपना जीवन निर्वाह करता था। एक बार दीर्घकर्ण नामक बिलाव पक्षियों के बच्चों को खाने के उद्देश्य से वहाँ आया । भयभीत शावकों की आवाज सुनकर जरद्गव ने डाँट कर पूछा कि कौन इधर आ रहा है ? तब वह बिलाव भयभीत होकर सोचने लगा कि अब मैं मारा जाऊँगा।

टिप्पणी - उद्धृत्य - उत्+धृ +क्त्वा + ल्यप्। आलोक्य — आ + लोक् + क्त्वा — ल्यप्। यत:— क्योंकि

तावद्भयस्य भेतव्यं यावद् भयमनागतम्।
आगतं तु भयं वीक्ष्य नर: कुर्याद्यथोचितम्॥

हिन्दी अनुवाद — भय से तभी तक डरना चाहिए जब तक भय समीप न आये किन्तु भय को पास आया देखकर मनुष्य जैसा प्रतीकार उचित समझे वैसा करे।

व्याख्या — आशय यह है कि दीर्घकर्ण बिलाव जरद्गव गीध को देखकर भयभीत होकर मन ही मन सोचने लगता है कि उसकी मृत्यु समीप आ गयी है किन्तु वह पुन: विचार करता है कि व्यक्ति को निडर होना चाहिए। विपत्ति के आ जाने पर प्राणी को निर्भय होकर उसका यथोचित प्रतिकार करना चाहिए अर्थात भयभीत होकर भागना नहीं चाहिए।

टिप्पणी - भेतव्यम् — भी + तव्यत् । आगतम् — आ + गम् + क्त। अनुष्टुप छन्द है।

अधुनास्य सन्निधाने पलायितुमक्षम: । तद्यथा भवितव्यं तद् भवतु । तावत् विश्वासमुत्पाद्यास्य समीपं गच्छामि , इत्यालोच्यो तमुपसृत्याब्रवीत् आर्य! त्वाम् अभिवन्दे। गृध्रोऽवदत् कस्त्वम् ?सोऽवदत् मार्जारोऽहम्। गृध्रो ब्रूते — दूरमपसर। नो चेत् हन्तव्योऽसि मया। मार्जारोऽवदत् —श्रूयतां तावदस्मद्वचनम्। ततो यद्यहं वध्यस्तदा हन्तव्य:।

हिन्दी अनुवाद — अब इसके समीप से भाग नहीं सकता हूँ। इसलिए जो होना होगा वह होगा ही। प्रथम अपना विश्वास उत्पन्न कर इसके समीप जाता हूँ। ऐसा विचार कर वह उसके समीप आकर बोला – आर्य ! आपको मैं प्रणाम करता हूँ। गीध बोला – तुम कौन हो ? उसने कहा मैं विडाल हूँ। गीध बोला दूर भाग नहीं तो मेरे द्वारा मारा जायेगा। विडाल बोला – पहले मेरे वचन तो सुनो , बाद में यदि मैं मारने योग्य होऊँ तो मार देना।

व्याख्या — दीर्घकर्ण नामक विडाल गीध को देखकर अत्यन्त भयभीत हो जाता परन्तु फिर वह सोचता हैं कि जो होना होगा वो होगा सर्वप्रथम मैं इसको अपने विश्वास में लेता हूँ। तत्पश्चात्

वह गीध को प्रणाम करता है और उसके द्वारा परिचय पूछे जाने पर वह बताता है कि वह विडाल है। गीध के द्वारा भगाये जाने पर विडाल कहता है कि पहले आप मेरी बात सुन लीजिये फिर यदि मैं आपको मारने योग्य लगूँ तो मार देना।

टिप्पणी- उपसृत्य – उप+सृ+क्त्वा+ल्यप्। वचनम् – वच्+ल्युट्। हन्तव्य: - हन्+तव्यत्। यत: - क्योंकि

जातिमात्रेण किं कश्चित् हन्यते पूज्यते क्वचित्।

व्यवहारं परिज्ञाय वध्य: पूज्योऽथवा भवेत्॥

हिन्दी अनुवाद — केवल जातिमात्र से कोई क्या मारने या पूजने के योग्य होता है ?अर्थात् नहीं किन्तु व्यवहार जानकर ही मारने या पूजने योग्य होता है।

व्याख्या — विडाल स्वयं को बचाने के लिए गीध को तर्क के साथ समझाता है कि किसी भी व्यक्ति का आंकलन उसकी जाति के आधार पर नहीं किया जा सकता। जाति से कोई सम्मान या मृत्यु के योग्य नहीं होता बल्कि व्यक्ति का व्यवहार (चरित्र) ही सर्वोपरि है। यदि उसका व्यवहार श्रेष्ठ है तो वह पूजा के योग्य होता है और यदि उसका व्यवहार ठीक नहीं है तो वह मारने के योग्य होता है। इसलिए सर्वप्रथम व्यक्ति के व्यवहार को परखना चाहिए।

टिप्पणी- पूज्य: - पूज् +यत्। परिज्ञाय – परि +ज्ञा +क्त्वा +ल्यप्। अनुष्टुप दन्द है।

गृध्रो ब्रूते – ब्रूहि किमर्थमागतोऽसि ? सोऽवदत् – अहमत्र गंगातीरे नित्यस्नायी, निरामिषाशी , ब्रह्मचारी , चान्द्रायण , व्रतमाचरैस्तिष्ठामि । यूयं धर्मज्ञानरता विश्वासभूमय इति पक्षिण: सर्वे सर्वदा ममाग्रे प्रस्तुवन्ति । अतो भवद्भ्यो विद्यावयोवृद्देभ्यो धर्मं श्रोतुमिहागत: । भवनत्श्चैतादृशा धर्मज्ञा यन्मामतिथि हन्तुमुद्यता:। गृहस्थ धर्मश्च एष: -

अरावयप्युचितं कार्यमातिथ्यं गृहमागते।

छेत्तुं पार्श्वगतां छायां नोपसंहरते द्रुम:॥

हिन्दी अनुवाद - गीध बोला – कहो क्यों आये हो ? तब बिलाव बोला मैं यहाँ गंगा के किनारे नित्य स्नान कर , शाकाहारी भोजन करने वाला ब्रह्मचारी हूँ और चान्द्रायण व्रत करता हुआ यहाँ निवास करता हूँ। आप धर्मज्ञानी और विश्वास के योग्य हैं इस बात को सब पक्षी सदा मेरे सामने कहा करते हैं। इसलिए विद्या और अवस्था में आप वृद्ध हैं अत: आप से धर्म की बातें सुनने आया हूँ। किन्तु आप ऐसे धर्मज्ञानी है कि मुझ अतिथि को मारने के लिए उद्यत हैं। और गृहस्थों का धर्म यह है कि — अपने घर आये हुए शत्रु का भी उचित सत्कार करना चाहिए। जैसे – वृक्ष अपने काटने वाले के समीप गयी छाया को समेट नहीं लेता है अर्थात् धूप से सन्तप्त अपने शत्रु का सन्ताप भी दूर करता है।

व्याख्या — गीध के द्वारा विडाल के वहाँ आने का कारण पूछने पर वह कहता हे कि वह नित्य गंगा स्नान करने वाला , शाकाहारी ब्रह्मचारी है। पक्षियों के मुख से गीध की प्रशंसा सुनकर वह यहाँ आया था किन्तु विडाल कहता है कि आप कैसे धर्मज्ञानी और वृद्ध हैं कि मुझ अतिथि को

मारने के लिए उद्यत हैं। जबकि शास्त्रों में अतिथि को देवतुल्य कहा गया है। विडाल पुन: गीध को समझाते हुए कहता है कि घर आये हुए शत्रु का भी आदर सत्कार उसी प्रकार करना चाहिए जिस प्रकार वृक्ष अपने शत्रु (वृक्ष को काटने वाला) के ऊपर से छाया को दूर नहीं करता बल्कि धूप से उसकी रक्षा ही करता है।

टिप्पणी- श्रोतुम् – श्रु +तुमुन्। धर्मज्ञा – धर्मं जानन्ति इति धर्म +ज्ञा +क्त। उपसंहरते – उप +सम् +हृ +लट् (प्र0 पु0 ए0 व0) अनुष्टुप छन्द है।

यदि वा धनं नास्ति तदा प्रीतिवचसाऽपि अतिथि: पूज्य एव। यत: -

तृणानि भूमिरूदकं वाक् चतुर्थी च सुनृता।

एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन ।।

हिन्दी अनुवाद — यदि धन आदि न हो तो मधुर एवं प्रिय वचनों से भी अतिथि सत्कार करना चाहिये। क्योंकि – तृणमय आसन , बैठने का स्थान, जल और चौथी मधुर और सत्य वाणी इनका सज्जनों के घर में कभी अभाव नहीं होता।

व्याख्या — विडाल गीध से कहता है कि सज्जनों के घर में उपरोक्त चार वस्तुओं का कभी भी अभाव नहीं होता चाहे अन्य वस्तुऐं उपलब्ध हो अथवा न हो। अर्थात् घर आये हुए अतिथि को बैठने का स्थान ,आसन एवं जल प्रदान करके मधुर वचनों के द्वारा सत्कार करना चाहिए। क्योंकि अतिथि देवता के समान होता है।

टिप्पणी - इस श्लोक के माध्यम से अतिथि के महत्व पर प्रकाश डाला गया है। अनुष्टुप छन्द है। अन्यच्च – और भी

बालो वा यदि वा वृद्धो युवा वा गृहमागत:।

तस्य पूजा विधातव्या सर्वस्याऽभ्यागतो गुरू: ।।

हिन्दी अनुवाद — बालक, वृद्ध् अथवा युवा जो भी घर पर आया हुआ है , उसकी पूजा करनी चाहिए। क्योंकि अतिथि सबके लिए गुरूवत् पूज्यनीय है।

व्याख्या — भारतीय संस्कृति में 'अतिथि देवो भव ' की उदात्त भावना को प्रतिपादित किया गया है। अर्थात अतिथि देवतुल्य होता हे इसलिए घर पर आये हुए अतिथि का चाहे वह किसी भी आयुवर्ग का हो उसकी पूजा अर्थात् स्वागत –सत्कार करना चाहिए क्योंकि वह सबसे महान होता है।

टिप्पणी — आगत: - आ +गम् +क्त । विधातव्या – वि+धा +तव्य। अनुष्टुप छन्द है।
अपरञ्च – और भी

निर्गुणेष्वपि सत्त्वेषु दयां कुर्वन्ति साधव: ।

न हि संहरते ज्योत्सनां चन्द्रश्चाण्डालवेश्मन: ।।

हिन्दी अनुवाद — साधुपुरूष गुणहीन प्राणियों पर भी दया करते हैं , जैसे चन्द्रमा चाण्डाल के घर पर पडी अपनी किरणें नहीं हटाता है।

व्याख्या - बिना किसी भेदभाव के जिस प्रकार चन्द्रमा अपनी चन्द्रिका को चारो ओर फैलाता है वह चाण्डाल के घर से अपनी किरणों को समेटता नहीं है । उसी प्रकार सज्जन पुरूषों का यह स्वभाव ही होता है कि वह समस्त प्राणियों पर दया करते हैं चाहे वह गुणी हो अथवा गुणहीन।

टिप्पणी - चाण्डाल: - चाण्डालस्य वेश्मन: (ष0 त0) अनुष्टुप छन्द है।

अपरञ्च – और भी

अतिथिर्यस्य भग्नाशों गृहात् प्रतिनिवर्तते।

स तस्मै दुष्कृतं दत्वा पुण्यमादाय गच्छति ।।

हिन्दी अनुवाद — जिस गृहस्थ के घर से अतिथि निराश होकर वापस जाता है तो वह अतिथि उस गृहस्थ को अपना पाप देकर और उसका पुण्य लेकर चला जाता है।

व्याख्या — घर आये हुए अतिथि का यथाशक्ति सम्मान करना चाहिए। यदि किसी के घर से अतिथि निराश होकर लौट जाता है तो वह उस व्यक्ति (गृहस्थ) के समस्त पुण्य कर्मों का फल अपने साथ लेकर और अपने पापों को उसे देकर चला जाता है।

टिप्पणी - दुष्कृतम् – दुस् +कृ +क्त। दत्वा - दा +क्त्वा। अनुष्टुप छन्द है।

अन्यच्च – और भी

उत्तमस्यापि वर्णस्य नीचोऽपि गृहमागता।

पूज्यनीयो यथायोग्यं सर्वदेवमयोऽतिथि: ।।

हिन्दी अनुवाद — उत्तम वर्ण के घर यदि नीच वर्ण का भी अतिथि आये तो उसका उचित सत्कार करना चाहिए क्योंकि अतिथि सभी देवताओं का स्वरूप होता है।

व्याख्या — अतिथि के महत्व को बताते हुए कहा जा रहा है कि घर आये हुए अतिथि की कभी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए उसका यथायोग्य सम्मान करना चाहिए। यदि किसी उच्चवर्ण (ब्राह्मणादि) के घरा पर निम्न वर्ण (शूद्र) का अतिथि भी आये तो उसका सत्कार करना चाहिए क्योंकि अतिथि देवतुल्य होता है अर्थात् देवताओं की सेवा से जो फल प्राप्त होता है वही फल अतिथि सेवा से भी प्राप्त होता है।

टिप्पणी - आगत: - आ + गम् + क्त। पूज्यनीय: - पूज् + अनीयर्। अनुष्टुप छन्द है।

गृध्रोऽवदत् – मार्जारो हि मांसरूचि । पक्षिशावकाश्चात्र निवसन्ति,तेनाऽहमेदं ब्रवीमि। तच्छ्रुत्वा मार्जारो भूमिं स्पृष्ट्वा कर्णो स्पृशति , ब्रूते च मया धर्मशास्त्रं श्रुत्वा वीतरागेणेदं दुष्करं व्रतं चान्द्रायणमध्यवसितम् । परस्परं विवदमानानामपि धर्मशास्त्राणाम् ' अहिंसा परमोधर्म:' इत्यत्रैकमत्वम् ।

हिन्दी अनुवाद — गीध बोला – बिलाव को माँस विशेष प्रिय होता है ,और यहाँ पक्षियों के बच्चों निवास करते हैं इसलिए मैं ऐसा कहता हूँ। यह सुनकर बिलाव ने भूमि स्पर्श कर कान पकड कर बोला – मैनें धर्मशास्त्र को सुनकर और तृष्णा को त्यागकर अत्यन्त कठिन चान्द्रायण व्रत किया है। आपस में धर्मशास्त्र का मतभेद होने पर भी 'अहिंसा परम धर्म है ' इसमें सभी का एकमत है।

व्याख्या- बिलाव के वहाँ रहने की इच्छा को जानकर गीध कहता है कि तुमको माँस विशेष प्रिय होता है और यहाँ पर पक्षियों के बच्चे निवास करते हैं इस कारण यहाँ नहीं रूक सकते। तब बिलाव ने कहा कि मैनें धार्मिक ग्रन्थों को सुनकर अपनी इच्छाओं को त्याग कर अत्यन्त कठोर चान्द्रायण व्रत किया है। विभिन्न धर्मशास्त्रों का अन्य विषयों में भले ही मतभेद हो किन्तु अहिंसा सबसे बडा धर्म है इससे सभी सहमत है। बिलाव कहता है कि मैंने हिंसा को त्याग कर अहिंसा का मार्ग अपना लिया है और अब मैं माँसभक्षी नहीं हूँ अत: आप मुझे यहाँ रूकने दीजिये।

टिप्पणी - स्पृशति – स्पृश् + लट् (प्र0पु0ए0व0) वीतरागेण – वीत: राग: यस्य स: तेन (बहुब्रीहि)

यत: - क्योंकि

सर्वहिंसानिवृत्ता ये नरा: सर्वसहाश्च ये।

सर्वस्याश्रयभूताश्च ते नरा: स्वर्गगामिन: ।।

हिन्दी अनुवाद — जो मनुष्य सभी प्रकार की हिंसा से विरत है , जो सब प्रकार के सुख-दु:ख तथा मान-अपमान को धैर्यपूर्वक सहन करते हैं और जो समस्त प्राणियों को आश्रय देते हैं ,वे मनुष्य स्वर्ग को जाते हैं।

व्याख्या — अर्थात् वे ही मनुष्य स्वर्ग प्राप्त करते हैं जो किसी प्राणी को नहीं मारते या किसी भी प्रकार की हिंसा से विरत हैं जो सभी प्रकार के द्वन्द्वों को धैर्यपूर्वक सहन करते हैं और जो सभी के आश्रयभूत हैं।

टिप्पणी - आश्रय: - आ +श्रि + अच्। अनुष्टुप छन्द है।

अन्यच्च – और भी

एक एव सुहृद्धर्मो निधनेऽप्यनुयाति य:।

शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यत्तु गच्छति ।।

मर्त्तव्यमिति यद् दु:खं पुरूषस्योपजायते।

शक्यते नानुमानेन परेण परिवर्णितुम ।।

हिन्दी अनुवाद — धर्म ही एक ऐसा मित्र है जो मृत्यु के पश्चात् भी मनुष्य का साथ देता है और सब तो शरीर के साथ ही नष्ट हो जाते हैं। और 'मुझे मरना ही होगा' ऐसा सोचकर या

सुनकर जो कष्ट स्वयं को होता है वैसा ही कष्ट दूसरो को होगा ऐसा समझकर कभी किसी की हिंसा नहीं करनी चाहिए।

व्याख्या — तात्पर्य यह है कि मृत्यु के साथ ही अन्य सभी वस्तुओं का अस्तित्त्व समाप्त हो जाता है केवल धर्म ही शेष रहता है अत: वह सच्चा मित्र है। और अपनी मृत्यु को विचार कर जो कष्ट व्यक्ति को स्वयं होता है उसका दूसरे के द्वारा अनुमान से वर्णन नहीं किया जा सकता है। अत: जो कष्ट मुझे प्राप्त होगा वैसा ही कष्ट दूसरे को भी होगा यदि कोई ऐसा विचार करता है तो वह कभी किसी को कोई कष्ट नहीं पहुँचा सकता अर्थात् वह हिंसा त्याग देगा।

टिप्पणी- नाशम् – नश् + घञ् । सुहृत् – शोभनं हृदयं यस्य स: (बहुब्रीहि) मर्तव्यम् – मृ + तव्यत् परिवर्णितुम् - परि+ वर्ण +तुमुन्। अनुष्टुप छन्द है।

किञ्च – और भी

योऽत्ति यस्य यदा मांसमुभयो: पश्यतान्तरम्।

एकस्य क्षणिका प्रीतिरन्य: प्राणैर्विमुच्यते ॥

श्रृणु पुन: - फिर सुनो

स्वच्छन्दवनजातेन शाकेनाऽपि प्रपूर्यते।

अस्य दग्धोदरस्यार्थे क: कुर्यात् पातकं महत् ॥

हिन्दी अनुवाद — जो प्राणी जिस समय जिस प्राणी का माँस खाता है उन दोनों का भेद तो देखो खाने वाले को तो एक क्षण के लिए आनन्द मिलता है और दूसरा अपने जीवन से अलग हो जाता है। और जो पेट स्वयं वन में उत्पन्न होने वाले शाक – भाजी आदि से भरा जा सकता है तो उस पेट रूपी जलती हुई भट्ठी के लिए भयंकर पाप कौन करें।

व्याख्या — भक्ष्य और भक्षक के भेद को बताते हुए कह रहे हैं कि जब एक प्राणी दूसरे प्राणी को खाता है तो उन दोनों के बीच कितना अन्तर होता है। एक खाने वाले को तो क्षण भर का आस्वाद प्राप्त होता है किन्तु दूसरा हमेशा के लिए इस संसार से विदा हो जाता। यदि इस क्षुधा को वन मे उत्पन्न शाकादि से शान्त किया जा सकता है तो उसके लिए इतना पाप कर्म क्यों किया जाय अर्थात् निर्दोष प्राणी को मार कर क्यो खाया जाये।

टिप्पणी - प्रीति: - प्री +क्तिन्। जात: - जन् +क्त अनुष्टुप छन्द है।

एवं विश्वासस्य स मार्जारस्तरू कोटरे स्थित: । ततो दिनेषु गच्छत्सु असौ पक्षिशावकानाकृम्य स्वकोटरमानीय प्रत्यहं खादति । येषामपत्यानि खादितानि तै: शोकार्ते: विलपद्भिस्तिस्ततो जिज्ञासा समारब्धा । तत्परिज्ञाय मार्जार: कोटरान्नि:सृत्य बहि: पलायित: । पश्चात् क्षिभिस्तिस्ततो निरूपयद्भिस्तत्र तरूकोटरे शावकास्थीनि प्राप्तानि । अनन्तरं च ऊचु: - "अनेनैव जरद्गवेनास्माकं शावका खादिता: "इति सर्वै: पक्षिभिर्निश्चित्य गृध्रो व्यापादित: ।

हिन्दी अनुवाद - इस प्रकार विश्वास उत्पन्न करके वह बिलाव वृक्ष के खोखले में रहने लगा। कुछ दिन बीतने पर वह पक्षियों के बच्चों को मारकर खोखले में लाकर प्रति दिन खाने लगा। जिन पक्षियों के बच्चे खाये गये थे वे शोकातुर हो विलाप करते हुए इधर –उधर खोज करने लगे। यह जानकर वह बिलाव खोखले से निकल कर भाग गया। इसके पश्चात् खोजते हुए पक्षियों ने उस पेड के कोटर में बच्चों की हड्डियाँ प्राप्त की। तब वे बोले इसी जरद्गव ने हमारे बच्चों को खाया है , इस प्रकार सब पक्षियों ने निश्चय कर उस गीध को मार डाला ।

व्याख्या - उस बिलाव ने गीध के प्रति अपना विश्वास स्थापित करके उसी वृक्ष के कोटर में रहकर उन पक्षियों के बच्चों को खा लिया। और उन पक्षियों ने यह समझा कि इसी गीध ने हमारे बच्चों को खा डाला इसलिए गीध को सब पक्षियों ने मिलकर मार डाला। अत: कहा जाता है कि अज्ञात कुल और शील वाले व्यक्ति को आश्रय नहीं देना चाहिए।

टिप्पणी - नि:सृत्य - निर्+सृ +क्त्वा + ल्यप्। विलपद्भि: - वि +लप् +शतृ (तृ0 ब0 व0)

अभ्यास प्रश्न --- 1

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1- गृध्रकूट नामक पर्वत पर ---------- का वृक्ष था।
2- विडाल का नाम ---------- था।
3- आगतं तु ---------- वीक्ष्य नर: कुर्य्यात् यथोचितम्।
4- व्यवहार जानकर ही व्यक्ति ---------- या पूजने योग्य होता है।
5- तृणानि भूमिरूदकं ---------- चतुर्थी च सुनृता।
6- अतिथि सबके लिए ---------- पूज्यनीय है।
7- चन्द्रमा अपनी चन्द्रिका को ---------- के घर से वापस नहीं लौटाता है।
8- स्वच्छन्दवन जातेन ---------- प्रपूर्यते।

अभ्यास प्रश्न --- 2

निम्नलिखित का उत्तर हाँ या नहीं में दीजिये ।

1- जरद्गव नाम का एक वृद्ध् व्याघ्र था। ( )
2- गंगा नदी के किनारे गृध्रकूट नामक पर्वत है। ( )
3- दीर्घकर्ण नामक विडाल जरद्गव के समीप आया था। ( )
4- पाकड के वृक्ष पर चूहे के बच्चे रहते थे। ( )
5- दीर्घकर्ण जीर्ण नख और नेत्रहीन गीध था। ( )
6- दुष्ट व्यक्ति के घर में सुमधुर वाणी का अभाव नहीं होता। ( )
7- अतिथि देवस्वरूप होता है। ( )

8- मृत्यु के पश्चात् धर्म ही मनुष्य का साथ देता है। ( )

17.4 मूषक परिव्राजक कथा(मूलपाठअर्थ,व्याख्या, टिप्पणी)

अस्ति चम्पकाऽभिधानायां नगर्य्यां परिव्राजकाऽवसथ: । तत्र चूडाकर्णो नाम परिव्राट प्रतिवसति । स च भोजनाऽवशिष्ट भिक्षान्नसहितं भिक्षापात्रं नागदन्तकेऽवस्थाप्य स्वपिति । अहं च तदन्नमुत्प्लुत्य प्रत्यहं भक्ष्यामि । अनन्तरं तस्य प्रियसुहृद् वीणाकर्णोनाम परिव्राजक: समायात: , तेन सह कथाप्रसंगाऽवस्थितो मम त्रासार्थं जर्जरवंशखण्डेन चूडाकर्णो भूमिमताडयत् । वीणाकर्ण उवाच – सखे ! किमिति मम कथा विरक्तोऽन्यासक्तो भवान् ?

हिन्दी अनुवाद - चम्पक नामक नगरी में सन्यासियों का एक निवास स्थान था। हाँ चूडाकर्ण नामका एक सन्यासी रहता था। वह भोजन से बचे हुए भिक्षान्न सहित भिक्षापात्र को खूँटी पर टाँग कर सो जाया करता था। और मैं उस अन्न को प्रतिदिन कूद-कूद कर खाया करता था। कुछ दिनों पश्चात् उसका प्रिय मित्र वीणाकर्ण नामक सन्यासी वहाँ आया। उसके साथ अनेक प्रकार की कथाओं में आसक्त होते हुए भी वह मुझे डराने के लिए एक जर्जर बाँस के टुकड़े को जमीन पर मारता था।

वीणाकर्ण ने कहा – मित्र ! क्यों आप मेरी कथा को छोडकर अन्यत्र मन लगाते हो।

व्याख्या - मन्थर नामक कछुआ जब हिरण्यक नाम के चूहे से उस निर्जन वन में आने का कारण पूछता है तो हिरण्यक उसको चूडाकर्ण और वीणाकर्ण सन्यासियों वाली कथा सुनाता है।

टिप्पणी - भिक्षापात्रम् – भिक्षाया: पात्रम् (ष0त0)

यत: -क्योंकि

मुखं प्रसन्नं विमलां च दृष्टि
कथाऽनुरागो मधुरां च वाणी ।।
स्नेहोऽधिक: सम्भ्रमदर्शनञ्च
सदाऽनुरक्तस्य जनस्य लक्ष्म ।।

अदृष्टिदानं, कृतपूर्वनाशनममाननं दुश्चरिताऽनुकीर्तनम् ।
कथाप्रसंगेन च नाम विस्मृतिर्विरक्तभावस्य जनस्य लक्षणम् ।।

हिन्दी अनुवाद — मुख पर प्रसन्नता, स्वच्छ दृष्टि , वाणी में प्रेम, अत्यधिक स्नेह, पुन: पुन: देखना, यह सब अनुरक्त मनुष्यों के लक्षण हैं।

दृष्टि न डालना, किये हुए उपकार को न मानना, सम्मान न करना, दुराचरण को प्रकाशित करना, वार्ता प्रसंग में याद भी नहीं करना ये पाँच चिह्न मनुष्यों के विरक्त भाव को व्यक्त करते हैं।

व्याख्या — अर्थात् प्रसन्न मुख, विमल नेत्र, वार्तालाप में प्रीति, अधिक स्नेह और किसी के आने पर हडबडाकर देखना ये सभी लक्षण प्रेमी पुरूष के होते हैं और इसके विपरीत विरक्त

मनुष्यों के लक्षण होते हैं ।विरक्त पुरूष असन्तुष्ट होकर देखता है और पूर्वकृत उपकारों को भूल जाना , किसी का सम्मान न करना , दोषों को प्रकट करना और मौके पर नाम तक भी भूल जाना आदि विरक्त पुरूष के लक्षण है ।

टिप्पणी - दृष्टि – दृश+ क्तिन् । प्रसन्नम् – प्र +सद् +क्त । प्रथम श्लोक में उपजाति छन्द तथा द्वितीय में वंशस्थ छन्द है ।

चूडाकर्णेन उक्तम् – भद्रं नाहं विरक्त: , किन्तु पश्य , अयं मूषिको ममाऽपकारी सदा पात्रस्थं भिक्षान्नमुत्प्लुत्यं भक्षयति । वीणाकर्णो नागदन्तमवलोक्याह – कथमयं मूषिक: स्वल्पबलोऽप्ये – तावद् दूरमुत्पतति ? तदत्र केनाऽपि कारणेन भवितव्यम् ।

हिन्दी अनुवाद — चूडाकर्ण ने कहा – भद्र मैं तुम्हारी बातों से विरक्त नहीं हूँ । किन्तु देखो यह चूहा मेरा अपकार करने वाला है । यह सदा कूद –कूद कर मेरे पात्र में स्थित भिक्षान्न को खा जाया करता है । तब वीणाकर्ण ने खूँटी की ओर देखकर कहा यह चूहा अल्प बल वाला होते हुए भी इतनी ऊँचाई तक कैसे कूद जाता है ? इसमें अवश्य कोई कारण होना चाहिए ।

व्याख्या — वीणाकर्ण के द्वारा कथा सुनाये जाने पर चूडाकर्ण का ध्यान बार-बार खूँटी की ओर जा रहा था जिसे देखकर वीणाकर्ण ने इसका कारण पूछा । तब चूडाकर्ण ने बताया कि यह चूहा उसका भिक्षापात्र में बचा हुआ अन्न खा जाया करता है । तब वीणाकर्ण कहा कि इसमें अवश्य कोई न कोई कारण होगा क्योंकि चूहा जैसा छोटा प्राणी इतनी ऊँचाई तक कैसे कूद जाता है ।

टिप्पणी — विरक्त: - वि+रञ्ज् +क्त । उत्प्लुत्य – उत् + प्लु +क्त्वा + ल्यप् ।

क्षणं विचिन्त्य परिव्राजकेनोक्तम् – कारणं चात्र धनबाहुल्यमेव भविष्यति । यत: -

धनवान् बलवाँल्लोके सर्व: सर्वत्र सर्वदा ।

प्रभुत्वं धनमूलं हि संज्ञामप्युपजायते ।।

हिन्दी अनुवाद — कुछ देर सोचकर वीणाकर्ण ने कहा यहाँ धन का आधिक्य ही कारण होगा । क्योंकि – संसार में सभी मनुष्य धन के कारण ही पूजे जाते हैं और राजाओं के प्रभुत्व का कारण धन ही है ।

व्याख्या — इस संसार में जिसके पास धन है वही व्यक्ति बलशाली होता है । धन की अधिकता के कारण ही राजा को लोग (प्रजा) अपना स्वामी मानते हैं । अत: इस छोटे से चूहे के शक्तिसम्पन्न होने के पीछे भी धन ही कारण होगा । टिप्पणी — धनवान् – धन + मतुप । अनुष्टुप छन्द है ।

तत: खनित्रमादाय तेन विवरं खनित्वा चिरसंचितं मम धनं गृहीतम् । तत: प्रभृति निजशक्तिहीन: सत्त्वोत्साहरहित: स्वाहारमप्युत्पादयितुमक्षम: सत्रासं मन्दमन्दमुपसर्पश्च चूडाकर्णेनावलोकित: । ततस्तेनोक्तम् –

धनेन बलवाँल्लोके धनाद्भवति पण्डितः ।

पश्यैनं मूषिकं पापं स्वजातिसमतां गतम् ।।

हिन्दी अनुवाद — इसके बाद उस सन्यासी ने फावडा लेकर मेरे बिल को खोदकर बहुत दिनों से एकत्रित किया हुआ मेरा धन ले लिया । उसी दिन से मैं शक्तिहीन , पराक्रम तथा उत्साह से रहित अपने लिए भोजन ढूँढ़ने में भी असमर्थ हो गया और एक दिन मैं डर के कारण धीरे-धीरे जा रहा था कि मुझे उस चूडाकर्ण सन्यासी ने देखा और इसके पश्चात् उसने कहा – संसार में मनुष्य धन से ही बलवान होता है और धन से ही पण्डित होता है। इस दीन चूहे को तो देखो (धनहीन होने के कारण) यह अपनी जाति के समान हो गया ।

व्याख्या — सन्यासी के द्वारा उस चूहे का संचित धन छिन जाने से वह शक्तिहीन हो गया । इसलिए सत्य ही कहा गया है कि धन ही व्यक्ति को बलवान् और विद्वान बनाता है ।

टिप्पणी - खनित्र – खन् +इत्र । बलवान् – बल+ मतुप् । समता – सम + तल् + टाप् । अनुष्टुप छन्द

किञ्च – और भी

अर्थेन तु विहीनस्य पुरूषस्याल्पमेधसः ।

क्रियाः सर्वा विनश्यन्ति ग्रीष्मे कुसरितो यथा ।।

अपरञ्च – और भी

यस्यार्थास्तस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बान्धवाः ।

यस्यार्थाः स पुमांल्लोके यसयार्थाः स हि पण्डितः ।।

हिन्दी अनुवाद — जिस प्रकार गर्मियों में छोटी-छोटी नदियों का जल सूख जाता है ,उसी

प्रकार धन विहीन मन्दबुद्धि पुरूष की समस्त क्रियायें नष्ट हो जाती है । संसार में जिसके पास धन है उसी के सब मित्र हैं, जिसके पास धन है उसी के सब कुटुम्बी है , जिसके पास धन है वही बडा पुरूष है और जिसके पास धन है वही पण्डित (विद्वान) है ।

व्याख्या — दरिद्र हो जाने से अल्पबुद्धि वाले भाग्यहीन मनुष्य के सभी काम उसी प्रकार बिगड जाते हैं जैसे गर्मी में छोटी नदियाँ सूख जाती है । और इस संसार में जिसके पास धन है उसी को सब वस्तुऐं एवं रिश्ते सुलभ हैं ।

टिप्पणी - अल्पमेधस: - अल्पा मेधा यस्य स: तस्य (बहुब्रीहि) अनुष्टुप छन्द है ।

अन्यच्च – और भी

अपुत्रस्य गृहं शून्यं सन्मित्ररहितस्य च ।

मूर्खस्य च दिश: शून्या: सर्वशून्या दरिद्रता ।।

अपि च – और भी

दारिद्रयान्मरणाद्वापि दारिद्रयमवरं स्मृतम् ।

अल्पक्लेशेन मरणं दारिद्रयमति दु:सहम् ।।

हिन्दी अनुवाद — पुत्ररहित का तथा जिसके सच्चा मित्र नहीं है उसका घर सूना है , मूर्ख के लिए सभी दिशाऐं सूनी है और दरिद्रता तो सभी अभावों का स्थान है। दरिद्रता और मृत्यु इन दोनों में दारिद्रय को ही बुरा कहा गया है , क्योंकि मृत्यु थोडे कष्ट से ही हो जाती है किन्तु दरिद्रता जीवन भर कष्ट देती है।

व्याख्या —अभिप्राय यह है कि दरिद्र के लिए संसार में कहीं भी स्थान नहीं है। दरिद्र होने से तो मर जाना अच्छा है क्योंकि उसमें कुछ समय का ही कष्ट है किन्तु दरिद्रता पूरे जीवन भर कष्ट देती है। अत: धनाभाव अभावों में बलवान है।

टिप्पणी - दरिद्रता – दरिद्र +तल् +टाप्। अनुष्टुप छन्द है।

अपरञ्च — और भी

तानीन्द्रियाण्याविकलानि तदेव नाम ,

सा बुद्धिरप्रतिहता वचनं तदेव ।

अर्थोष्मणा विरहित: पुरूष: स एव,

अन्य: क्षणेन भवतीति विचित्रमेतत् ।।

एतत्सर्वमाकर्ण्य मयाऽऽलोचितम् ममात्रावस्थानमयुक्तमिदानीम्, यच्चान्यस्मै एतद् वृत्तान्तकथनं तदप्यनुचितम्।

हिन्दी अनुवाद — धन सम्पन्नता की स्थिति मे जो विकार रहित इन्द्रियाँ थी, वे ही इस समय भी है, पूर्व में जो नाम था वही इस समय भी है, पूर्व की तरह ही तीक्ष्ण बुद्धि है, वही वाणी ,वही पुरूष है किन्तु धन की उष्णता से हीन होने पर क्षण भर उसकी दशा बदल जाती है ,ये कैसी विचित्र और आश्चर्य की बात है। इस प्रकार चूडाकर्ण की सारी बातें सुनकर मैनें सोचा कि अब मेरा यहाँ रहना उचित नहीं है और दूसरे से यह समाचार कहना भी उचित नहीं है।

व्याख्या - दरिद्रता अत्यन्त कष्टकारी होती है। धनसम्पन्न व्यक्ति जब धनविहीन हो जाता है तो क्षण भर उसकी दशा ही बदल जाती है, उसी व्यक्ति को लोग पहचानते तक नहीं है। चूडाकर्ण की सम्पूर्ण बातों को सुनकर हिरण्यक (चूहा) सोचता है कि अब मेरा यहाँ रहना उचित नहीं है ,और किसी को यह समाचार बताना भी ठीक नहीं है।

टिप्पणी - वचनम् – वच् +ल्युट्। वसन्ततिलका छन्द है।

तथा चोक्तम् – और जैसा कि कहा गया है –

अत्यन्त विमुखे दैवे व्यर्थे यत्ने च पौरूषे ।

मनस्विनो दरिद्रस्य वनादन्यत् कुतः सुखम् ।।

हिन्दी अनुवाद —जिसका भाग्य अत्यन्त विपरीत हो गया है और सभी प्रयत्न भी निष्फल हो गये हैं। ऐसे मनस्वी किन्तु दरिद्र पुरूष को वन के अतिरिक्त अन्यत्र कहाँ सुख मिलेगा।

व्याख्या -अभिप्राय यह है कि भाग्य के प्रतिकूल होने पर और प्रयत्नों के विफल होने पर मनस्वी किन्तु दरिद्र व्यक्ति को वन में चले जाना चाहिये जिससे वह उपहास का पात्र न बन सके।

टिप्पणी - मनस्विन- मनस् +विनि। अनुष्टुप छन्द है।

अर्थनाशं मनस्तापं गृहे दुश्चरितानि च ।

वञ्चनं चापमानं च मतिमान्न प्रकाशयेत् ।।

हिन्दी अनुवाद — बुद्धिमान पुरूष को अपने धन का नाश, मन का दु:ख, घर की बुराई, किसी दूसरे के द्वारा ठगा जाना तथा अपमानित होना इनको प्रकाशित नहीं करना चाहिए।

व्याख्या — बुद्धिमान व्यक्ति अपने व्यक्तिगत कष्टों को दूसरों के सामने व्यक्त नहीं करते हैं। इसी बात को हिरण्यक भी सोचता है कि मुझे अपने धनविहीन होने की बात किसी से नहीं कहनी चाहिए।

टिप्पणी — वञ्चनम् – वञ्च् +ल्युट् । अपमानम् - अप +मा +ल्युट्। अनुष्टुप छन्द है।

यच्चाऽत्रैव याञ्चया जीवनं तदतीव गर्हितम्। यत: -

दारिद्र्याद् ध्रियमेति ह्रीपरिगत: सत्त्वात्परिभ्रश्यते ,

नि:सत्त्व: परिभूयते परिभवान्निर्वेदमापद्यते।

निर्विण्ण: शुचमेति, शोकनिहतो बुद्धया परित्यज्यते ,

निर्बुद्धि:क्षयमेत्यहो ! निर्धनता सर्वापदामास्पदम् ।।

हिन्दी अनुवाद — और यहाँ पर (मठ) रह कर मेरा भिक्षा माँग कर जीवन व्यतीत करना यह तो अत्यन्त निन्दित है। क्योंकि – निर्धनता से मनुष्य लज्जित होता है। लज्जित पुरूष पराक्रमहीन हो जाता है। पराक्रमहीन मनुष्य दूसरों से अपमानित होता है , और अपमान से दु:खी होता है ,दु:खी शोकको प्राप्त करता है , शोकाकुल बुद्धिरहित हो जाता है , और बुद्धिहीन मनुष्य का नाश हो जाता है। अहो! निर्धनता सभी आपत्तियों का स्थान है।

व्याख्या - अर्थात् निर्धनता ही सभी आपत्तियों का मूल स्थान है। समाज में धनवान का सम्मान और निर्धन का अपमान होता है। इस निरादर से मनुष्य दु:खी हो जाता है। क्रमश: वह बुद्धिहीन हो कर विनष्ट हो जाता है।

टिप्पणी - निर्विण्ण: - निर्+विद् +क्त। शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

इति विमृश्य त्तत् – किमहं परपिण्डेनात्मानं पोषयामि ?कष्टं भो ! तदपि द्वितीयं मृत्युद्वारम्। इत्यालोच्याऽपि लोभात्पुनरप्यर्थं ग्रहीतुं ग्रहमकरवम् ।धनलुब्धो ह्यसन्तुष्टो नूनमात्मद्रोही भवति। तथा चोक्तम् –

लोभेन बुद्धिश्चलति, लोभो जनयते तृषाम्।

तृषाऽर्त्तो दु:खमाप्नोति परत्रेह च मानव:।

हिन्दी अनुवाद - इस प्रकार विचार कर कि फिर मैं क्यों दूसरों के दिये गये भोजन से अपना पालन करूँ। अहो ! कष्ट है कि यह भी मृत्यु का दूसरा द्वार है। इस प्रकार विचार कर भी लोभ से फिर मैनें धन ग्रहण करने का विचार किया। क्योंकि धन का लोभी और असन्तोषी मनुष्य अपनी आत्मा से भी विद्रोह करने वाला होता है। जैसा कि कहा गया है – लोभ से मनुष्य की बुद्धि चंचल होती है , लोभ से ही तृष्णा उत्पन्न होती है और तृष्णा से ही मनुष्य इस लोक और परलोक में दु:ख प्राप्त करता है।

व्याख्या - अभिप्राय यह है कि लोभ की अधिकता से ही मनुष्य को कष्ट प्राप्त होता है। और लोभ के कारण ही मनुष्य अपनी आत्मा की आवाज को भी नहीं सुनता है।

टिप्पणी - लोभेन – लुभ् +घञ् (तृ0ए0व0)। अनुष्टुप छन्द है।

ततोऽहं मन्दं मन्दमुपसर्पस्तेन वीणाकर्णेन जर्जरवंशखण्डेन ताडितश्चाऽचिन्तयम् –

धनलुब्धो, ह्यसन्तुष्टोऽनियतात्माऽजितेन्द्रिय:।
सर्वा एवाऽऽवदस्तस्य , यस्य तुष्टं न मानसम्॥

तदत्राऽवस्थोचितकार्यपरिच्छेद: श्रेयान्। यत: -

को धर्मो, भूतदया, किं सौख्यमरोगिता, जगति जन्तो:।
क: स्नेह:, सद्भाव:, किं पाण्डित्यं, परिच्छेद: ॥

इत्यालोच्याहं निर्जनवनमागत:।

हिन्दी अनुवाद — इसके पश्चात् उस वीणाकर्ण ने धीरे- धीरे मुझे जाते हुए देखकर एक फटे हुए बाँस के टुकडे से मारा और मैं सोचने लगा – जो मनुष्य धन का लोभी ,असंतोषी, चंचल चित्त वाला, इन्द्रियों के वश में रहने वाला है, तथा जिसका मन सन्तुष्ट नहीं है, ऐसे मनुष्य को सब प्रकार की आपत्तियाँ आकर घेर लेती हैं। इसलिए यहाँ अब अपनी अवस्था के अनुसार कर्त्तव्य कार्य का निर्णय कर लेना ही अच्छा है। क्योंकि – धर्म क्या है ? प्राणियों पर दया करना। संसार में सुख क्या है ? नीरोग रहना। स्नेह क्या है ? सभी जीवों पर सद्भाव रखना। पाण्डित्य क्या है ? कर्त्तव्य– अकर्त्तव्य का निश्चय करना। ऐसा विचार कर मैं मठ (सन्यासियों का निवास स्थान) को छोडकर निर्जन वन में चला आया।

व्याख्या — धन के लोभी मनुष्य को आपत्तियाँ घेर लेती है ऐसा विचार कर हिरण्यक ने अपने विवेक से मठ को छोडकर वन में जाने का निर्णय लिया।

टिप्पणी- सन्तुष्टम – सम् +तुष्ट +क्त। परिच्छेद: - परि + छिद् +घञ्। अनुष्टुप छन्द है।

अभ्यास प्रश्न — 3

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1• ---------- नामक नगरी में सन्यासियों का एक निवास स्थान है।

2• चूडाकर्ण का मित्र ---------- नामक सन्यासी था।

3• क्रिया: सर्वा विनश्यन्ति ---------- कुसरितो यथा।

4• धनाभाव ---------- में बलवान है।

5• वञ्चनं चापमानं च ---------- प्रकाशयेत्।

17.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप ने जाना कि दीर्घकर्ण नामक डाल की झूठी बातों पर विश्वास करके और उसको आश्रय देकर निर्दोष जरद्गव पक्षियों के द्वारा मारा गया। मूषक परिव्राजक कथा के अध्ययन से आप ने जाना कि किस प्रकार चूहा (हिरण्यक) चूडाकर्ण के भिक्षापात्र से अवशेष् अन्न को कूद-कूद कर खा जाता था जिसके कारण चूडाकर्ण का ध्यान वीणाकर्ण की कथाओं में नही लग रहा था। तब वीणाकर्ण ने कहा कि इस अल्प बल वाले चूहे के इतने ऊपर उछलने में कोई न कोई कारण अवश्य होगा और यह कारण धन ही होगा। तब उस चूहे का संचित धन बिल से खोदकर निकाल लिया गया और धनविहीन हो जाने पर वह चूहा निर्जन वन को चला गया। इस कथा के द्वारा दरिद्र व्यक्ति की समाज में क्या स्थिति होती है एवं धन का क्या महत्व है आपने यह ज्ञान भी प्राप्त किया।

17.6 शब्दावली

वीक्ष्य	देखकर
गृध:	गीध
मार्जार:	विडाल
परिज्ञाय	जानकर
द्रुम:	वृक्ष
अभ्यागत:	अतिथि
दग्धोदरस्य	पेट रूपी जलती हुई भट्ठी
सम्भ्रमदर्शन	बार-बार देखना
नागदन्त	खूँटी
दुश्चरितानि	दुष्ट चरित्र

17.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1 — 1• पाकर 2• दीर्घकर्ण 3• भयं 4• मारने 5• वाक् 6• गुरूव7• चाण्डाल 8• शाकेनाऽपि ।

अभ्यास प्रश्न 2 — 1• हाँ 2• हाँ 3• हाँ 4• नहीं 5• नहीं 6• नहीं 7• हाँ 8• हाँ ।

अभ्यास प्रश्न 3 — 1• चम्पक 2• वीणाकर्ण 3• ग्रीष्मे 4• अभावों 5• मतिमान्न ।

17.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1• नारायण पण्डित विरचितम् हितोपदेश ,आचार्य गुरूप्रसाद शास्त्री , आचार्य सीताराम शास्त्री, प्रो0 बालशास्त्री। चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

2• नारायण पण्डित विरचितम् हितोपदेश , सम्पादक एवं व्याख्याकार डा0 शिवबालक द्विवेदी , डा0 रेखा शुक्ला , डा0 रत्ना तिवारी। ग्रन्थम प्रकाशन, कानपुर ।

17.9 उपयोगी पुस्तकें

1• नारायण पण्डित विरचितम् हितोपदेश ,आचार्य गुरूप्रसाद शास्त्री , आचार्य सीताराम शास्त्री, प्रो0 बालशास्त्री। चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

2• नारायण पण्डित विरचितम् हितोपदेश , सम्पादक एवं व्याख्याकार डा0 शिवबालक द्विवेदी , डा0 रेखा शुक्ला , डा0 रत्ना तिवारी। ग्रन्थम् प्रकाशन, कानपुर ।

17•10 निबन्धात्मक प्रश्न

1• जरद्गव विडाल कथा को निज शब्दों में लिख प्राप्य शिक्षायें बतायें।

2• मूषक परिव्राजक कथा का सारांश लिखिये।

3•मूषक परिव्राजककथा के आधार पर निर्धन व्यक्ति की क्या स्थिति होती है, इसका वर्णन कीजिये।